वर्ष 37, अंक-1, जनवरी-फरवरी, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

मलिक मुहम्मद जायसी विशेषांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	: 23378616, 23370698
महानिदेशक	: 23378103, 23370471
उप महानिदेशक (ए.एच.)	: 23370228
उप महानिदेशक (ए.ज.)	: 23379249
निदेशक (ओ.सी.डी.)	: 223370391
निदेशक (सी एण्ड एक्स)	: 223379463
निदेशक (आई.सी.सी.)	: 23370594

प्रशासकीय अनुभाग (स्थापना, प्रेषण, रखरखाव, कार्मिक)	: 23379639
विशेष परियोजना	: 23379371
सृजनात्मक संवाद व कार्यक्रम समन्वय अनुभाग	: 23379930
प्रदर्शनी अनुभाग	: 23379364
वित्त व लेखा अनुभाग	: 23370994
आने वाले सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल	: 23378079
विदेश सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	: 23379463
आने वाले व जाने वाले दर्शक अनुभाग	: 23370118
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र व भारतीय अध्ययन पीठ अनुभाग	: 23379274
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-I	: 23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-II	: 23379199
पुस्तकालय	: 23379384
बाहर जाने वाले सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल व दृश्य-श्रव्य ध्वन्यांकन अनुभाग	: 23379226
प्रकाशन विभाग	: 23379158
प्रस्तुति इकाई	: 23370633
हिंदी अनुभाग	: 23379364

गगनांचल

जनवरी-फरवरी, 2014

प्रकाशक
सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

परामर्श मंडल
प्रो. अशोक चक्रधर, रत्नाकर पांडेय, रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी, दिनेश मिश्र, ममता कालिया, हरीश नवल, अनामिका

संपादक
अनवर हलीम
उप महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली-110002

उप संपादक
अशोक कुमार जाजोरिया

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ISSN : 0971-1430

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

सहिष्णुता, समन्वय और प्रेम के कवि — 5
डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'

सूफी संत मलिक मुहम्मद जायसी — 9
डॉ. रामचंद्र राय

प्रेम की पीड़ा के कवि — 12
डॉ. वेणुगोपालकृष्ण

हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतीक — 14
डॉ. कृष्ण कुमार

लौकिक-अलौकिक के बीच आवाजाही करते रसिक भक्त — 18
हरजेंद्र चौधरी

जायसी के पद्मावत में लोक-तत्त्व — 21
डॉ. वीणा दाढे

लौकिकालौकिक साधक : मलिक मुहम्मद 'जायसी' — 25
डॉ. कर्रि. सुधा

हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर पद्मावत का विरह वर्णन — 28
डॉ. शिखा रस्तौगी

भारतीय संस्कृति और लोकमानस में पगा 'पद्मावत' का बारहमासा — 31
पुष्पपाल सिंह

महाकवि जायसी का काव्य सौंदर्य — 35
राधाकांत भारतीय

मानुष प्रेम के चितेरे — 36
डॉ. सरला शुक्ल

निर्गुण भक्ति के सशक्त हस्ताक्षर — 39
डॉ. पुष्पा सिंह विसेन

जायसी की रचनाओं में सामाजिक जीवन — 40
शिवमंगल सिंह मानव

जायसी कृत महाकाव्य पद्मावत और सूफी काव्य परंपरा — 42
डॉ. दीपक नरेश

अद्भुत कल्पना के धनी — 44
बी. एल. गौड़

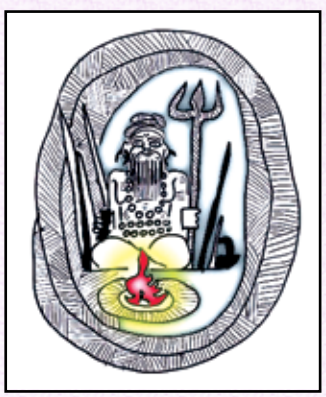

सूफी कवि जायसी के काव्य में दर्शन तत्त्व 46
डॉ. आरती स्मित

जायसी के पद्मावत में 'ईश्वरोन्मुख प्रेम तत्त्व' 50
डॉ. संगीता त्यागी

विरह और जायसी का काव्य 52
अनुराग शर्मा

पद्मावत : प्रेम, आध्यात्म और समन्वय 57
स्मृति आनंद

प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में जायसी
पद्मावत के विशेष संदर्भ में 59
डॉ. प्रदीप के. शर्मा

सूफी परंपरा के प्रतिनिधि कवि 62
वीरेंद्र कुमार यादव

प्रेम की साधना के कवि 65
डॉ. चित्रा

मानवता के पक्षधर कवि 68
डॉ. सारिका कालरा

प्रेम की पीर के कवि 70
सकीना अख्तर

भारतीय साहित्य परंपरा का अनूठा
प्रतिमान 'पद्मावत' 74
र. शौरिराजन

जायसी : लौकिक से अलौकिक की यात्रा 76
डॉ. विवेक गौतम

जायसी के काव्य में साधना के सांप्रदायिक प्रतीक 79
जागृति

लोकमंगल एवं समन्वयवाद के पक्षधर 82
अशोक कुमार जाजोरिया

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत 88
डॉ. सुनीति रावत

जायसी और उनका प्रेमकाव्य 90
सुरेंद्र कुमार

साक्षात्कार

प्रेम और समन्वय के चितेरे 95
डॉ. बी.एल. आच्छा

पुस्तक-समीक्षा

आधुनिक व पारंपरिक सोच के बीच की टकराहट 101
अमृता ठाकुर

समाचार

दो दिवसीय कथक समारोह का आयोजन 102
अश्विनी कुमार

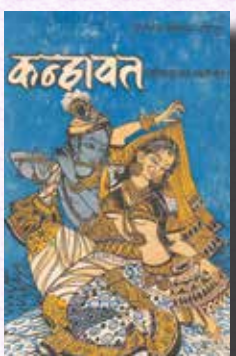

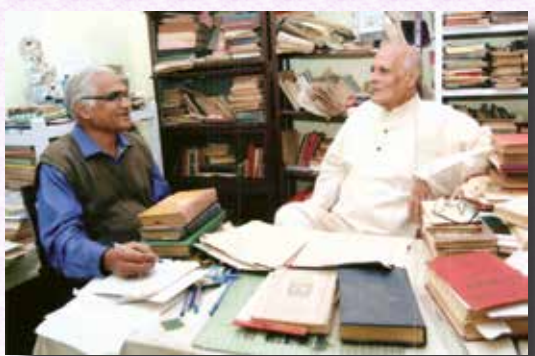

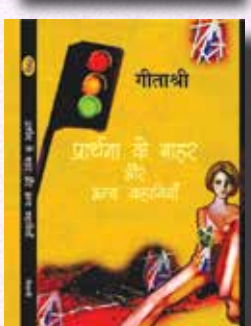

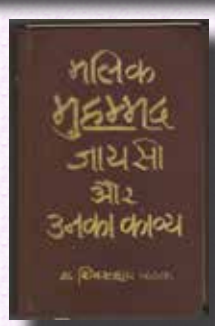

प्रकाशक की ओर से

मलिक मुहम्मद जायसी का आविर्भाव जिस युग में हुआ, यह युग हिंदी साहित्य में भले ही भक्तिकाल (स्वर्ण युग) के नाम से जाना जाता हो, लेकिन राजनीतिक रूप से यह युग अशांत और अराजकता से भी ग्रस्त था। देशी राजाओं की आए दिन की आपसी कलह, देश पर विदेशी आक्रमण आम जनता को भयातुर करते रहते थे। क्रूर शासकों के अत्याचारों से पीड़ित निरीह और शोषित जनता में आशा तथा विश्वास का संबल टूटता जा रहा था। उस समय सूफी विचारधारा से प्रेरित मलिक मुहम्मद जायसी ने शुष्क भक्ति के स्थान पर लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम (इष्ट) को पाने की कल्पना की। हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के लोगों ने भक्ति की इस नई धारा का खुले दिल से स्वागत किया। क्योंकि कोई भी व्यक्ति सच्चे मन से भक्ति की इस सरिता में डुबकी लगाकर अपने इष्ट को पा सकता था।

ऐसे ही प्रेम की पीर के कवि जायसी पर आई.सी.सी.आर. की प्रतिष्ठित पत्रिका 'गगनांचल' का यह अंक समर्पित है। इस अंक में पाठकों को जायसी के काव्य और जीवन की गहनता का विश्लेषण करने का अवसर मिलेगा। इसके अलावा उस काल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से भी वे रूबरू होंगे कि किस तरह उन्होंने उस काल की विषम परिस्थितियों के बाद भी हिंदू-मुस्लिम सद्भाव के दीये को जलाए रखा।

आशा है हमारा यह प्रयास सार्थक होगा और यह पाठकों के मन-मस्तिष्क में जायसी के प्रति एक नई अन्वेषण दृष्टि को विकसित करेगा। इसी उम्मीद के साथ यह अंक हम अपने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)

संपादक की ओर से

धर्म, समाज और संस्कृति को एक सूत्र में पिराने का काम करता है। उसका कार्य लोगों को संस्कारी बनाकर समाज में उच्च नैतिक जीवन मूल्यों की स्थापना करना होता है। लेकिन कुछ लोग धर्म का अर्थ हठधर्मिता से लगाने लगते हैं अर्थात् जो वह सोच रहे हैं, वही सही है बाकी सब गलत हैं। ये परिस्थितियां आज ही नहीं अपितु मध्यकाल में भी हिंदुस्तान को बुरी तरह से कचोट रही थी। आम जनता विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण से तो आक्रांत थी ही, ऊपर से धर्म के ठेकेदारों के फरमानों से भी भयातुर थी। ऐसी विषम परिस्थिति में मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म समाज के लिए एक ठंडे झोंके की तरह आया। उन्होंने दोनों ही धर्म के सार तत्त्व को ग्रहण करके लोक में समन्वय की भावना को विकसित किया। जायसी सूफी विचारधारा से प्रभावित थे। इसमें जीव प्रेमी और जीवात्मा प्रेमिका मानी जाती है और उस प्रेमिका को पाने की व्याकुलता जीवन को कुंदन बना देती है। जायसी का समस्त काव्य प्रेमिका के माध्यम से अपने इष्ट को पाने का है।

हिंदी साहित्य में मलिक मुहम्मद जायसी के योगदान को देखते हुए आई.सी.सी.आर. की प्रतिष्ठित पत्रिका 'गगनांचल' ने अपना यह अंक उन्हें समर्पित किया है। इससे जायसी के कीर्ति स्तंभ काव्य 'पद्मावत' से ही नहीं, बल्कि उनके ज्ञात-अज्ञात साहित्य और जीवन के अनछुए पहलुओं से पाठक रूबरू होंगे। जायसी के काव्य में लोककथा ही नहीं षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा, भारतीय लोकाचार, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि का बड़ा ही सजीव और मनोहारी चित्रण हुआ है।

आशा है हमारा यह प्रयास पाठकों को मलिक मुहम्मद जायसी को समझने की एक नई दृष्टि ही नहीं देगा, बल्कि उनके सूफी विचारों को अपना कर समाज में सर्वधर्म समभाव की भावना भी विकसित करेगा।

(अनवर हलीम)

सहिष्णुता, समन्वय और प्रेम के कवि

डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'

भक्ति काल को प्रायः सभी समीक्षकों ने एक मत से हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण काल' स्वीकार किया है। भक्ति काल के निर्गुणवादी और सगुणवादी धारा के चार प्रमुख कवियों कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास में 'सूफी मत' के अनुयायी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ही मेरी दृष्टि में ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने 'इस्लामी धर्म' में आस्था रखने के बाद भी, पूरे मनोयोग से 'हिंदू धर्म' के देवी-देवताओं का श्रद्धापूर्वक स्मरण और उल्लेख करते हुए, भारतीय दर्शन और संस्कृति को अपने काव्य में चित्रित किया। संत कबीर तत्त्ववेत्ता रामानंद के शिष्य रहे, अतः उन्हें निर्गुण रूप में 'राम-नाम' जपने के साथ-साथ समाज-सुधार की राह मिल गई। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी परोक्षतः 'रामानंद' को ही 'नरहरि दास' के माध्यम से 'गुरु' रूप में श्रद्धा देकर 'सगुण' मर्यादा पुरुषोत्तम राम के 'आदर्श चरित्र' को अपने काव्य का आधार बनाया। 'पुष्टि मार्ग' में दीक्षित महाकवि सूरदास ने लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण के 'लोक रंजक चरित्र' को केंद्र में रखकर कृष्ण की 'माधुरी' को वाणी दी।

इन तीनों ने भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और समाज को ही अपनी काव्य रचना का आधार बनाया जो नितांत सहज और स्वाभाविक कहा जा सकता है, लेकिन 'सूफी मत' और विदेशी 'इस्लाम धर्म' के अनुयायी होते हुए भी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का चित्रण जिस मनोयोग से 'पद्मावत' महाकाव्य में किया, वह महाकवि जायसी को भक्ति काल का बेजोड़ कवि बना देता है।

वस्तुतः सूफी संत महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी जहां एक ओर काव्य, संस्कृति, कला और भारतीय संत-परंपरा के प्रकाशमान नक्षत्र रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने दो पूर्णतः भिन्न संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं को पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ अपनाते हुए 'समन्वयकर्ता' और अपार सहिष्णुता-धर्मी कवि होने का परिचय भी दिया है।

मेरी धारणा यह रही है कि अपनी धरती और धर्म का गुणगान करने वाले साहित्यकार तो हर युग में, हर देश में हुए हैं, लेकिन दूसरे धर्म, दूसरी संस्कृति, दूसरे समाज की परंपराओं, मान्यताओं, भाषा-शैली और संस्कृति को पूरी आस्था के साथ आत्मसात् करके भारतीय प्रेमाख्यानक को केंद्र में रखकर 'पद्मावत' जैसा बेजोड़ महाकाव्य रचने वाले महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी निःसंदेह बेजोड़ और विलक्षण साहित्यकार हैं।

प्रख्यात दर्शनवेत्ता डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने तो 'लोक-देवता' के इस निष्ठावान उपासक महाकवि के विषय में अत्यंत भावपूर्वक लिखा है—''पद्मावत काव्य का अनुशीलन करते हुए जिस बात की गहरी छाप मन पर पड़ती है, वह यह कि इससे कवि ने भारत-भूमि की मिट्टी के साथ अपने को कितना मिला दिया था। जायसी सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे। वे भारतीय जन-मानस के कितने संनिकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गांव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसकी सीमा के भीतर हर्षित स्वर में कवि ने मान का स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियां, भावनाएं और मान्यताएं मानो स्वयं छंद में बंधकर उनके काव्य में गुंथ गईं।''

निर्विवाद रूप से महाकवि जायसी ऐसे सरस्वती-साधक महान साहित्यकार हैं, जिन्हें 'पृथ्वी-पुत्र' कहा जा सकता है।

सूफी मत के अनुयायी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी 'हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य-परंपरा' को प्रतिष्ठित करने वाले प्रमुख साहित्य-साधक हैं। विद्वान समीक्षकों की दृष्टि में यद्यपि 'प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा' के प्रथम कवि 'चंदायन' के रचयिता मुल्ला दाऊद रहे हैं, लेकिन इस काव्य-परंपरा को उच्चतम प्रतिष्ठा देने का श्रेय महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी को ही जाता है।

सहिष्णुता एवं समन्वय के कवि—महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी मूलतः 'सूफी-मत' में आस्था रखने वाले साहित्य-साधक रहे हैं। मध्यकालीन साहित्यकारों में संभवतः महाकवि जायसी ही ऐसे समर्थ रचनाकार रहे हैं, जिनकी काव्य-कृतियों में हिंदू-मुस्लिम संस्कृति और विचारधाराओं को परस्पर

समन्वित रूप देकर हिंदू-मुस्लिम एकता और सामाजिक सौहार्द्र की अभिवृद्धि का महत्तम प्रयास किया है। कहीं भी, ऐसा नहीं लगता कि महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी में धार्मिक कट्टरता है, बल्कि वे तो सर्वत्र अपार सहिष्णुता और समन्वय की भावना को ही लेकर चले हैं।

अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में महाकवि जायसी 'ब्रह्म' के लिए 'करतार', 'प्रथम ज्योति', 'सृष्टिकर्त्ता' आदि संबोधन देते हैं–

''सुमिरौं आदि एक करतारू।
जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू।
कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।।''

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी का चिंतन-क्षेत्र निश्चय ही अत्यंत व्यापक और उदार रहा है। महाकवि जायसी ने भारतीय-दर्शन की मान्यताओं को अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में ऐसी अजीब और सार्थक अभिव्यक्ति दी है कि जिज्ञासु पाठक का मन गद्-गद् हो उठता है। जीवन की 'क्षणभंगुरता' और 'अस्थिरता' को जायसी मर्मस्पर्शी प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं–

''यह संसार झूठ, थिर नाहीं।
उठाई मेघ जेउं जाइ बिलाहीं।।''

और इसी प्रकार, इस संसार के 'जीवन-मरण-चक्र' को तो महाकवि जायसी ने 'रहट' के प्रतीक के माध्यम से मानो जीवंत कर दिया है–

''मुहम्मद जीवन जल भरन,
रहंट घरी कै रीति।
धरी जो आई ज्यों भरी,
ढरी, जनम गा बीति।।''

भारतीय संस्कृति में 'गुरु' का स्थान सर्वोच्च माना गया है। महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी तो मानते हैं कि गुरु के बिना ज्ञान प्राप्ति संभव ही नहीं हो सकती, क्योंकि सच्चा मार्गदर्शक तो गुरु ही है–

''जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा।
कोटि अंतरपट बिंचहि दीन्हा।।
जब चीन्हा तब और न कोई।
तन मन जिउ जीवन सब सोई।।''

××× ××× ×××

''जियतहिं जुरै मरै एक बारा।
पुनि का मीचु को मारै पारा।।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला।
आपुहि सब औ आपु अकेला।।''

ऐसी उच्च दार्शनिक चिंतन-धारा के महाकवि जायसी ने वस्तुतः अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण से जहां धार्मिक सद्भाव पैदा किया, वहीं समाज को सहिष्णुता का अमृत भी दिया।

महाकवि जायसी ने हिंदू-मुस्लिम धर्म की अनेक स्थापित मान्यताओं में अनूठा समन्वय करते हुए एक ओर जहां अपनी सहिष्णुता एवं उदारता का परिचय दिया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक एकता और सौहार्द्र स्थापित करने में भी अप्रतिम भूमिका निभाई है।

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी बहुज्ञ रचनाकार रहे हैं, जिसे 'इस्लाम धर्म' के साथ ही 'हिंदू धर्म' की पूरी जानकारी थी। इस्लाम के अनुसार 18 हजार जगत, आठ स्वर्ग, छह समुद्र और सात आकाश माने गए हैं, तो हिंदू धर्म एवं दर्शन की अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति पांच तत्त्वों–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से मानी गई है। जायसी अपने काव्य में 'जगत', 'स्वर्ग', 'समुद्र' और 'आकाश' का वर्णन 'इस्लाम' के अनुरूप करते हैं–

'जगत'– ''कीन्हेसि सहस अठारह,
बरन-बरन उपराजि।
भुगुति विरोसि पुनि सबन कहं,
सकल साजना साजि।।''

'स्वर्ग'– ''सप्त पतार खोजि जस,
काढ़े वेद गरंथ।
सात सरग चढ़ि धावौं,
पद्मावत जेहि पंथ।।''

'समुद्र'– ''मिले समुंद वे सातौ,
बेहर बेहर नीर।।''

'आकाश'–''सात सरग जो कागद करई।''

उक्त सभी वर्णन महाकवि जायसी जहां 'इस्लाम' की मान्यताओं के अनुरूप करते हैं, वहीं हिंदू-धर्म की मान्यताओं को भी उतनी ही आस्था के साथ चिंतन करते हैं–

''नौ पौरी पर दशम दुआरा।
तेहि पर बाजराज घरियारा।।''

यहां 'नौ रंध्र' और दसवें 'सहस्रार कमल' का चित्रण हुआ है।

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में यत्र-तत्र हमें भारतीय वैदिक विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि वैदिक दर्शन वस्तुतः भारतीय आत्मा का ही दर्शन है, जिससे भारत में पनपने वाला कोई भी धर्म, कोई भी मत और कोई भी दर्शन अछूता नहीं रह सका है। वेदों, उपनिषदों का अत्यंत गहरा और व्यापक प्रभाव 'सूफी संतों' की साधना, विशेषतः महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी की साहित्य-साधना पर पड़ा है। अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में जायसी चारों वेदों का उल्लेख करते हुए उनकी महत्ता को रूपायित करते हैं–

''चतुर वेद मत सब ओहि पाहां।
रिग, जजु, साम अथर बन माहां।।
××× ××× ×××
वेद वचन मुख सांच जो कहा।
सो जुग अस्थिर होइ रहा।।''

वैदिक चिंतन-धारा के साथ ही महाकवि जायसी के काव्य सृजन पर 'बौद्ध-साधना'

का भी गहरा प्रभाव रहा है। बौद्ध दर्शन के 'अहिंसा-सिद्धांत' का प्रतिपादन करते हुए महाकवि जायसी कहते हैं–

''निठुर होइ जिउ बधसि परावा।
हत्या केर न तेहि उरु आवा।।
निठुर तेइ जे पर मस खावा।।''

'हिंसा' करने वाले को तो जायसी 'निष्ठुर' कहते ही हैं। इसी के साथ 'मांसाहार करने वाले' के लिए भी कवि ने यही 'निष्ठुर' शब्द प्रयुक्त करके 'अहिंसा' में अपनी भरपूर आस्था प्रकट की है। बौद्धों के 'शून्यवाद' का चित्रण देखिए–

''सुन्नहि तै उपजै सब कोई।
पुनि मिलाप सब सुन्नहि होई।।''

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी भले ही सूफी-मत के अनुयायी रहे हों, लेकिन भारतीय दर्शन और हिंदू धर्म के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण निर्विवाद रूप से जायसी को 'समन्वयवादी' साहित्य-साधक सिद्ध कर देता है। अपने महाकाव्य 'पद्मावत' के 'सिंहल द्वीप वर्णन खंड' में तो जायसी ने 'नाथ पंथियों' तथा 'हठयोगियों' के व्यापक प्रभाव का परिचय करा दिया है–

''गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया।
पुरुख देखि ओ ही के छाया।।
नौ पौरी तेहि गढ़ मंझियारा।
औ तहं फिरैं पांच कोतवारा।।
दसवें द्वार गुपुत एक ताका।
अगम चढ़ाव बांक सो बांका।।
भैदै जाइ सोई वह घाटी।
जो लहि भेद चढ़ै होइ चांटी।।
गढ़तर कुंड सुरंग तेहि मांहा।
तहें बह पंथ कहौ तोहि पांइ।।

मस मर जिया समुद्र धंसि,
हाथ आव तब सीप।
ढूंढ लेहि जो सरग दुआरी,
चढै सो सिंहल दीप।।''

प्रख्यात समीक्षक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी के विलक्षण दर्शन, चिंतन से प्रभावित होकर लिखा है– ''ब्रह्म से सूक्ष्म चित् में जीवात्माओं की उत्पत्ति और सूक्ष्म अचित् से उनके शरीर और जड़ जगत की उत्पत्ति हुई। विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है। जायसी ने इस चिंतन को अत्यंत बारीकी से समझा और उसे इतनी सुंदर अभिव्यक्ति दी कि हम चकित हो जाते हैं। सूफी-मत में आस्था रखते हुए भी, भारतीय धर्म और दर्शन की ऐसी गहरी पकड़ के कारण ही जायसी हिंदी साहित्य के बेजोड़ कवि हैं।''

यह निर्विवाद सत्य है कि महाकवि जायसी के काव्य में सहिष्णुता और समन्वय ने ही उन्हें कालजयी बनाया है।

प्रेम भावना के बेजोड़ कवि–सूफी मत में प्रेम को सर्वोपरि तत्त्व माना गया है और इस मत के अनुयायी 'इश्क माशूकी' के माध्यम से ही 'इश्क हकीकी' तक पहुंचते हैं। महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी निःसंदेह 'प्रेम' के अनूठे कवि हैं, जिन्होंने 'पद्मावत' महाकाव्य में राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम गाथा का चित्रण करके हिंदी साहित्य में एक अनूठी 'प्रेमाख्यानक काव्य धारा' को उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित किया है।

वस्तुतः सूफी मत की धारणा है कि प्रेम ही एक ऐसा तत्त्व है, जिसके माध्यम से उस परम सौंदर्यशाली परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। प्रख्यात समीक्षक डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है–''प्रेम मार्ग का अध्यात्म रूप क्या है? नायिका या प्रेमिका तो प्रतीक मात्र है। उसके साथ अस्थूल भोग प्रेम मार्ग की भावना नहीं बन सकता। अध्यात्म में से वासना को त्यागना पड़ता है। अतःएव प्रेममार्गी साधना का तात्पर्य है अध्यात्म के प्रति वैसा ही तीव्र आकर्षण जैसा कामी को नारी के प्रति होता है। आकर्षण में मन, हृदय दोनों अपने प्रेम तत्त्व से तन्मय, एक या अभिन्न हो जाते हैं। यह मिलन शरीर-सुख के लिए क्षणिक नहीं होता, किंतु सदा-सदा के लिए, कवि के शब्दों में, जन्म-जन्म के लिए होता है। देश और काल इस सम्मिलन में अध्यात्म-तत्त्व के साक्षात् दर्शन के आनंद को किसी प्रकार तिरोहित नहीं कर सकते। यही आत्म-दर्शन सच्चा है।''

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'प्रेम' की इसी भावना को व्यंजित करते हुए लिखा है–

''तीन लोक चौदह खंड,
सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छांड़ि कछु और न लेना,
जो देखो मन बूझि।।''

सूफी मत के अनुरूप जायसी का परम प्राप्य तो 'प्रेम' ही है।

महाकवि जायसी के विद्वान अध्येता डॉ. निजामुद्दीन अंसारी ने लिखा है–''प्रेम मानव-जीवन की दिव्यतम विभूति है। मानवीय चेतना के स्फुरण के साथ ही प्रेम का आविर्भाव मान्य है। सूफी साधकों ने प्रेम को ईश्वर का रूप स्वीकार किया है। जायसी 'प्रेम' के मर्मी कवि हैं। उन्होंने प्रेम का अत्यंत ऊंचा आदर्श प्रस्तुत किया है। 'पद्मावत' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने प्रेम के आदर्श को मूर्त करने की चेष्टा की है।''

महाकवि जायसी 'प्रेम' के विषय में लिखते हैं–

''ज्ञान-दिष्टि सों जाइ पहूंचा।
प्रेम अदिस्ट गगन ते ऊंचा।।
धुव ते ऊंच प्रेम-धुव ऊआ।
सिर देइ पांव देइ सो छूआ।।''

'प्रेम' के आध्यात्मिक प्रभाव को व्यंजित करते

हुए जायसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण संकेत देते हुए कहते हैं–

''जेहि के हिये पेम रंग जामा।
का तेहि भूख नींद बिसरामा।।''

महाकवि जायसी ने सूफी मत के अनुसार 'प्रेम-तत्त्व' की प्राप्ति को ही मानव जीवन का सर्वोच्च प्राप्य माना है। जायसी कहते हैं–

''मुहम्मद चिनगी पेम के
सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया,
तह अस अगिनि समाइ।।''

निःसंदेह इस 'प्रेम' के वास्तविक मर्म और रहस्य को तो वही जान सकता हे, जो 'आत्म-बलिदान' की भावना से परिपूर्ण होकर स्वयं को इसके लिए समर्पित कर देने की क्षमता रखता हो।

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'प्रेम-गाथ' रचकर हिंदी साहित्य में स्वयं को अमर बना लिया है। अपने ग्रंथ 'पद्मावत' में नायिका पद्मावती के माध्यम से प्रेम के व्यापक रूप का चित्रण किया है–

''बरुनि का बरनौ इमि बनी।
साधे बान जान दुई अनी।।
उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहा सगरो संसारा।।
गगन नखत जो जाहिं न गने।
वे सब बान ओहि के हने।।''

डॉ. निजामुद्दीन अंसारी ने लिखा है–''सूफी कवि लौकिक सौंदर्य से परम सौंदर्य की ओर अग्रसर होता है। क्या संयोग और क्या वियोग, दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक रूप का आभास देने लगता है, जगत् के समस्त व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते हैं।''

निर्विवाद रूप से, मैं कह सकता हूं कि हिंदी के भक्ति काव्य में प्रेममार्गी निर्गुण धारा के अप्रतिम कवि मलिक मुहम्मद जायसी 'प्रेम' के तो अनूठे चितेरे हैं ही, साथ ही काव्य-साधना के माध्यम से संसार को सच्ची मानव-चेतना के दर्शन कराने वाले कालजयी शब्द-साधक भी हैं। महाकवि जायसी की धार्मिक सहिष्णुता आज भी प्रासंगिक बनी हुई है। संकीर्ण धार्मिक चिंतन से ऊपर उठ कर व्यापक मानवीय-संवेदनाओं से ओतप्रोत महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य निश्चय ही प्रेरणा के दिव्य अमृत का अनूठा सागर है।

पूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष (हिंदी विभाग)
74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667

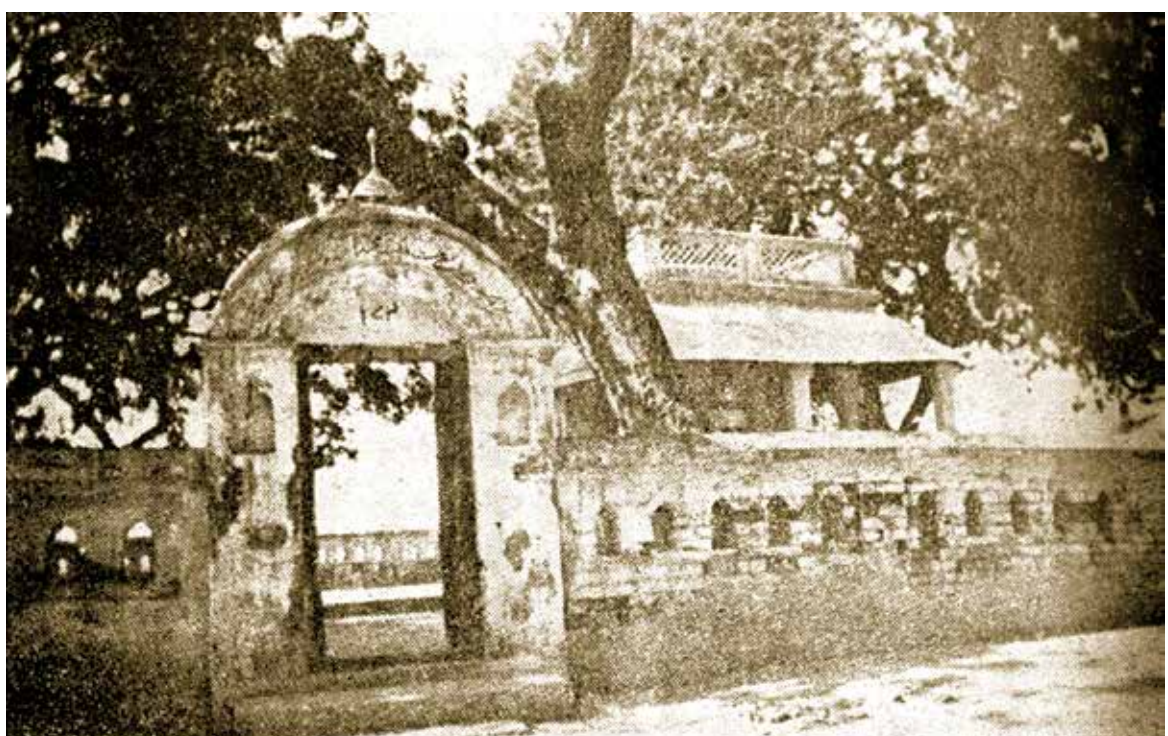

२—जायसी का घर

सूफी संत मलिक मुहम्मद जायसी

डॉ. रामचंद्र राय

किसी वस्तु या विधा से किसी विशेष प्रवृत्ति, विचारधारा आदि की प्रचुरता का समावेश हो जाने पर, उसका वर्गीकरण, विशेष प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता है। उदाहरणस्वरूप आज के वैज्ञानिक युग को सूचना प्रौद्योगिकी के युग से अभिहित किया जा रहा है। उसी प्रकार विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का विभाजन भी युग या काल में प्रचलित विशेष विचारधारा को लेकर वर्गीकृत किया गया है।

हिंदी भाषा में उपलब्ध साहित्य के आधार पर आलोचकों ने आरंभिक काल या आदि युग, मध्य काल एवं आधुनिक काल के रूप में विभाजित किया है। मध्य काल में उपलब्ध साहित्य की विचारधाराओं का विभाजन पूर्व मध्य काल एवं उत्तर मध्य काल के रूप में किया गया है। पूर्व मध्य काल में भगवद् भक्ति से संबंधित रचनाओं की प्रचुरता के कारण, इसे भक्तिपरक साहित्य के काल की संज्ञा दी है। पुनः भक्तिपरक साहित्य को भी सगुणोपासना एवं निर्गुणोपासना परक साहित्य के रूप में विभाजित किया है। उसी प्रकार सगुणोपासना परक साहित्य को रामोपासना एवं कृष्णोपासना परक साहित्य के रूप में विभाजित किया है तथा निर्गुणोपासना परक साहित्य को ज्ञान एवं प्रेमपरक साहित्य के रूप में विभाजित किया है।

पूर्व मध्य काल के प्रेमपरक साहित्य के पुरोधा सूफी संत कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी अपने 'पद्मावत' जैसे प्रेमपरक रचनाकार के रूप में सर्वख्यात हैं। मलिक मुहम्मद का जन्म उत्तर प्रदेश के जायस इलाके में हुआ था। इसलिए इनके नाम के आगे जायसी उपनाम जुड़ गया। फलस्वरूप मलिक मुहम्मद जायसी के नाम से विख्यात हो गए। इनकी छोटी-सी एक पुस्तक 'आखिरी कलाम' है जो फारसी लिपि में है। उस छोटी-सी पुस्तक में इनके जन्म के संबंध में ये पंक्तियां मिलती हैं–

''भा अवतार मोर नौ सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।।''

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि इनका जन्म नवमी सदी में हुआ है एवं इसके तीस वर्ष के बाद इन्होंने कविताओं की रचना करना आरंभ किया। जायसी रचित तीन पुस्तकें मिलती हैं–अखरावट, आखिरी कलाम और पद्मावत। अखरावट में एक-एक अक्षर के आधार पर रचनाएं की गई हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में ईश्वर, जीव, ईश्वर प्रेम आदि के संबंध में विचार प्रकट किए गए हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'पद्मावत' इनकी प्रमुख रचना है। इस पुस्तक के अवगाहन से ज्ञात होता है कि इनके हृदय में किस प्रकार प्रेम का प्याला लबालब भरा हुआ था। जिसे लोक प्रचलित कथाओं के आधार पर लौकिकता एवं आध्यात्मिकता की गूढ़ता-गंभीरता एवं सरसत्ता का विलक्षण स्वरूप दृष्टिगत होता है। 'पद्मावत' की रचना के संबंध में निम्न पंक्तियां मिलती हैं–

''सन नौ सै सत्ताइस बहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।।''

जायसी अपने समय के प्रमुख सूफी कवि रहे हैं। सूफी शब्द का प्रयोग इस्लाम धर्म के रहस्यवादियों के लिए किया जाता है। उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति, विश्वास, मान्यताएं, जीवनचर्या आदि को ध्यान में रखकर ही सूफी कहा जाता है।

सूफी आंतरिक शुद्धि पर अधिक बल देते हैं। उनका कहना है कि धार्मिक सिद्धांतों का सत्य के साथ सामंजस्य होना चाहिए। उनके लिए सत्य का अर्थ परम सत्य के ज्ञान से है जिसे रहस्यवादी अपनी साधना के द्वारा प्राप्त करता है। वे लोग रहस्यवाद को आंतरिक सामंजस्य स्थापित करने की कला मानते हैं जिसके माध्यम से मानव विश्व ब्रह्मांड को संपूर्ण एवं अखंड समझता है। रहस्यवादी साधक की मान्यता है कि दिव्यदृष्टि के द्वारा ही आत्मा के लिए उसका दर्शन पाना संभव है। किंतु वह बुद्धि एवं तर्क से नहीं बल्कि अंतःकरण को साधना के द्वारा शुद्ध करना होता है। सभी प्रकार की वासनाओं एवं स्वार्थों को त्याग देना होता है। परमात्मा को जानने के लिए प्रेम का होना आवश्यक होता है। प्रेम के द्वारा ही अहं पर विजय प्राप्त कर परमात्मा को पाता है एवं उसके साथ उसका मिलन होता है। रहस्यवादी परमात्मा को प्रियतम कहते हैं। प्रेमी-प्रियतम का संबंध रहस्यवादियों में बराबर से चलता आ रहा है। इस प्रकार

इस्लाम के रहस्यवादी ही सूफी हैं एवं उनके दर्शन को 'तसव्वूफ' कहा जाता है।

सूफी शब्द की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से की है। किंतु अबू नसर अल सर्राज ने अपनी पुस्तक 'किताब अल-लुका' में सूफी शब्द पर विचार करते हुए कहा है कि सूफी शब्द अरबी के सूफ शब्द से निकला है जिसका अर्थ ऊन होता है। भाषा वैज्ञानिक भी इस शब्द को ठीक मानते हैं। अल सर्राज का कहना है कि उनका व्यवहार पैगंबर, संत आदि करते आए हैं। इसका पता विभिन्न हदीसों से मिलता है। सूफ से ही सूफी बना है इसे अधिकांश भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है।

सूफियों के परमात्मा एक एवं अद्वितीय तथा निरपेक्ष हैं। इसके बावजूद, इस दृश्यमान जगत में परिव्याप्त एकमात्र वही सत्य है। जो पहले भी रहा है और भविष्य में भी रहेगा। सूफियों के अनुसार परमात्मा को छोड़कर किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। वह निखिल विश्व परमात्मा के साथ तथा इस प्रतीतमान जगत में जितनी भी सत्ताएं हैं उसी में वे अंतर्निहित हैं। सूफियों का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ एकमेक होना होता है। जब सूफी साधकों को यह अनुभूत होता है कि समस्त क्रियाकलापों का एकमात्र कारण परमात्मा की शक्ति है तथा समस्त दृश्यमान जगत उसकी अभिव्यक्ति मात्र है। वह उस रहस्य को जानना चाहता है। उस रहस्य को तर्क एवं बुद्धि से भेद नहीं किया जा सकता है। इसे जानने के लिए साधना की आवश्यकता है। इसके लिए अपने आपको तैयार करना पड़ता है। उस ज्योति की एक किरण को हृदय से ग्रहण करे और उसके आलोक में 'अल हक' को देख सके। सूफियों का कहना है कि परमात्मा को वहीं जान सकता है जिसने अपने आपको जान लिया है।

प्रायः सभी धर्मों में परमात्मा के प्रति प्रेम को बड़ा स्थान दिया गया है। परमात्मा को पाने के लिए जितने साधन एवं मार्ग सुझाए गए हैं उनमें प्रेम का स्थान सर्वोपरि है। प्रेम के माध्यम से ही मानव के हृदय में श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है। रहस्यवादी भी उसी प्रेम को लेकर अग्रसित होते हैं। इसी के बल पर परमात्मा को पाने की आशा करते हैं। उनकी मान्यता है कि प्रेम के द्वारा ही सब कुछ संभव हो सकता है। कबीर ने भी कहा है—

''प्रेम न खेती नीपजे न हाटि बिकाय।
राजा परजा जिस रुचे सिर दे सो ले जाय।।''

सूफियों का विश्वास है कि जब तक भगवत कृपा नहीं होती है तब तक साधक के हृदय में प्रेम नहीं उपजता है। उसकी कृपा से ही यह प्रेम साधक के लिए सुलभ हो जाता है। साधक चाहे जितनी भी चेष्टा क्यों न करे। वह अमूल्य वस्तु तब तक प्राप्त नहीं होती है जब तक भगवान की दया नहीं होती है।

सूफियों की मान्यता है कि परमात्मा प्रेम-स्वरूप है। वह उन मनुष्यों को इसका रहस्य नहीं बतलाता है जो इस प्रेम का अधिकारी नहीं है जिसने समस्त कलुष एवं सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन को त्याज्य कर दिया है। जो भगवान से प्रेम करते हैं, उनसे भगवान भी प्रेम करते हैं। विशुद्ध आत्मा ही परमात्मा की प्रतिछवि है। प्रेम का अधिकार देकर परमात्मा अपने को ही अधिकार देता है। परमात्मा के प्रति उसी के हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है जिससे परमात्मा प्रेम करते हैं। सूफियों का कहना है कि भगवान ही प्रेम है और वह अपने आनंद के लिए उसे मानव के हृदय में उत्पन्न करता है। इस प्रकार सूफी साधना के आरंभ में भी प्रेम रहता है और उसकी परिणति में भी प्रेम होता है।

सूफी परमात्मा को प्रियतम कहते हैं। परमात्मा ही उनका प्रिय पात्र 'माशूक' है जिसके प्रेम में वे व्याकुल बने रहते हैं। सांसारिक प्रेम को वे उस परम प्रियतम तक पहुंचने का साधन मानते हैं। वे मानवीय प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम तक पहुंचने की सीढ़ी मानते हैं। सूफी साधक प्रेम के द्वारा सांसारिक माया-मोह त्यागने की बात कहता है। जब साधक के हृदय में इस प्रेम का उदय होता है तब उसके सामने सांसारिक वस्तुएं उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं। किंतु संसार के जीवों के लिए उसका हृदय दया और प्रेम से भरपूर रहता है।

सूफी सिद्धांत में प्रेम के समान ज्ञान का भी महत्त्व है। उनका कहना है कि बिना ज्ञान के मानव कुछ भी करने में संभव नहीं हो सकता है। बिना ज्ञान के परमात्मा, सृष्टि, साधना आदि का होना संभव नहीं है। आध्यात्मिक जीवन को सूफी एक यात्रा समझते हैं और परमात्मा को पाने वाले साधक को 'सालिक' कहते हैं। साधक परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करता हुआ क्रमशः अपने चरम लक्ष्य तक पहुंचता है। इस साधना के पथ पर अग्रसर होने को ही सूफी मार्ग 'तरीका' कहते हैं।

भारतीय सूफी भी सूफी मार्ग की चार मंजिलें और उन मंजिलों की चार अवस्थाएं मानते हैं। उनमें पहली 'नासूत' है। इसमें साधक को 'शरीअत' के कायदे-कानूनों और पाबंदियों को मानना पड़ता है। दूसरी अवस्था को 'मलकूत' कहते हैं। इसमें साधक को तरीका अर्थात् पवित्रता का सहारा लेना पड़ता है। इस अवस्था में साधक को भौतिक जगत की तुच्छताओं और आवर्जनाओं से ऊपर उठना होता है और वह पवित्र हो जाता है। वह इसमें देवदूतों के गुण को प्राप्त करता है। तीसरी अवस्था 'जबरूत' की है। जब साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है जिससे परमात्मा के मिलन के मार्ग की बाधाएं नष्ट

हो जाती हैं। वह मंजिल 'मारिफ' अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की है। राग-विराग से ऊपर उठकर साधक को ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे वह चौथी अवस्था 'लाहूत' के लिए प्रस्तुत होता है। इस अंतिम मंजिल को सूफियों ने 'हकीक' कहा है। हकीक से तात्पर्य परम सत्य से है।

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी संत महीउद्दीन के शिष्य होने के कारण, इनकी रचनाओं पर सूफी दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'पद्मावत' इनका लोकप्रिय प्रबंध काव्य है जिसकी रचना सूफी दर्शन के आधार पर फारसी की मसनवी शैली पर की है। इसमें लोक प्रचलित प्रेम कथा के साथ-साथ ऐतिहासिक प्रसंग का समन्वय किया गया है। 'पद्मावत' की कहानी लोक प्रचलित कहानी है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन एवं सिंहल देश की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा है। इस प्रेम कहानी को सूफी दर्शन के अनुसार वर्णन किया गया है। इसमें पद्मावती प्रिया है और रत्नसेन प्रियतम है। सुआ के मुंह से पद्मावती के रूप-गुण का वर्णन सुनते ही राजा रत्नसेन उससे मिलने के लिए आतुर हो जाता है। इसके लिए उसे सूफी दर्शन की चार मंजिलों—नासूत, जबरूत, मारिफ और लाहूत की चार सीढ़ियां पार करनी होती हैं। इसके बाद, उसे पद्मावती का दर्शन होता है। इसके साथ ही ऐतिहासिक प्रसंग को संयोजित करने के लिए अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण की कहानी आई है। इस आक्रमण का कारण भी पद्मावती का रूप-लावण्य ही है। इसमें अलाउद्दीन का चित्रण एक धोखेबाज बादशाह के रूप में किया गया है। चित्तौड़ के राजा ने भी उसे उत्तर देने के लिए कला का आश्रय लिया है। इस प्रकार 'पद्मावत' के कथानक के दो भाग हैं। राजा की पहली पत्नी नागमती का विरह वर्णन, लोक काव्य की परंपरा के अनुसार बारहमासा के द्वारा वर्णित हुआ है। दूसरा लोक प्रचलित कथा में ऐतिहासिक प्रसंग जोड़कर जायसी ने भारतीय साहित्य के प्रेमोपाख्यान काव्य का विलक्षण एवं अद्भुत रूप स्थापित किया है।

'पद्मावत- की रचना जायसी ने फारसी की मसनवी शैली के आधार होने के कारण मसनवी के प्रत्येक सिद्धांत का अनुकरण इसमें किया गया है। मसनवी छंद का प्रत्येक शब्द अपने आप में स्वतंत्र और पूर्ण होता है और वह तुकांत होता है। इसका प्रयोग प्रेमाख्यान, धार्मिक एवं उपदेशात्मक काव्य की रचना के लिए किया जाता है। मसनवी अपने आप में एक पूर्ण ग्रंथ होता है। प्रेमोपाख्यान काव्य की रचना करते समय रचनाकार रचना का शीर्षक सामान्यतः नायक-नायिका के नाम पर होता है। जायसी ने भी अपने काव्य ग्रंथ की कथा-नायिका पद्मावती के नाम ही अपने काव्य ग्रंथ का नाम 'पद्मावत' रखा है। मसनवी सर्गबद्ध होता है। पहले सर्ग में परमात्मा का गुणानुवाद रहता है। दूसरे में ईश को स्मरण किया जाता है तीसरे पर ईश के सेवक की चर्चा रहती है। उसके बाद समकालीन बादशाह की प्रशंसा रहती है जिसे रचनाकार अपना ग्रंथ समर्पित करता है। इसके बाद मूल रचना का आरंभ होता है। इस प्रकार की रचना के विभाग या खंड होते हैं और फिर वे खंड या विभाग सर्गबद्ध किए जाते हैं। प्रत्येक सर्ग के ऊपर उस सर्ग में वर्णित विषय का संकेत दिया जाता है। अंत में रचनाकार एक उपसंहार से रचना को समाप्त करता है और उस रचना के लिखे जाने की तारीख का उल्लेख करता है। मलिक मुहम्मद जायसी ने मसनवी के उपर्युक्त लक्षणों का प्रतिपादन अपने काव्य ग्रंथ 'पद्मावत' में किया है।

इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य ग्रंथ 'पद्मावत' में सूफी सिद्धांत, दर्शन एवं इसकी रचना शैली का भरपूर प्रतिपादन किया है जो भारतीय सूफी साहित्य विशेषकर हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हो गई है।

सचिव, शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा,
रूपांतर परिसर, रतनपल्ली नार्थ,
शांतिनिकेतन-731235 (पश्चिम बंगाल)

प्रेम की पीड़ा के कवि

डॉ. वेणुगोपालकृष्ण

उत्तर प्रदेश के जायस (रायबरेली) में जन्मे मलिक मुहम्मद जायसी की संपूर्ण जिंदगी मुसीबतों व संकटों से गुजरी। छोटी अवस्था में ही वह महतारी व जन्मदाता से बिछुड़ गए और साधु-संतों के साथ रहने लगे।

जायसी की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उन्होंने प्रत्येक मजहब, संप्रदाय, पंथ के फकीरों और पंडितों के साथ सत्संग किया। विचित्रता, विविधता व विशिष्टता से युक्त उनकी बातों को न केवल सुना अपितु ग्रहण भी किया और उनमें अतिशय समन्वय भी कराया।

चाहे बहुचर्चित, बहु प्रशंसित व देश-विदेश की भाषाओं में रूपांतरित मनोरम महाकाव्य 'पद्मावत' हो कि लघु पुस्तक 'अखरावट' अथवा लघु सी किताब 'आखिरी कलाम' महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी की कृतियों का अध्ययन करने से जान पड़ता है कि वह कोई मामूली मुसलमान फकीर नहीं थे।

''जायसी ने इस्लामी भावनाओं के साथ हिंदू भावनाओं का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण किया कि लोग यह सोच कर दांतों तले अंगुली दबाकर रह जाते हैं कि उस काल में जब मुस्लिम आक्रमण हो रहे थे और इस प्रकार के कट्टरपंथी कड़वाहट उत्पन्न करने के लिए हर प्रकार की हिंसा फैला रहे थे, किस प्रकार जायसी ने न सिर्फ हिंदुओं के गुणों को उजागर किया, वरन् हिंदू त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश का आदरपूर्वक जिक्र अपने काव्यों में किया। निश्चित रूप से इसके लिए उनको विरोध का सामना करना पड़ा होगा और कभी पीड़ा भी सहनी पड़ी होगी। इस प्रकार के कवि का दृष्टांत दूसरा मिलना कठिन है।''—(विनोद कुमार मिश्र)

कबीर सहित बहुश्रुत जायसी की संगति साधु-संतों की रही। सूफी मुसलमान फकीरों के अलावा वेदांती, गोरखपंथी, रसायनी आदि अनेक हिंदू साधुओं समेत उन्होंने सत्संग किया। उनसे भी जानकारी के अपरंपार मोती संचित किए। जायसी, कुतुबन, उसमान, नूर मुहम्मद जैसे प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों के पास पहुंचकर मानव के बीच प्यार बांटने की कोशिश में लगे रहे। विनोद कुमार जी के ही शब्दों में जहां कबीर और अन्य ज्ञानमार्गी शाखा के कवि अपनी सादगी, ज्ञान ओर प्रेम से मुसलमानों को राम कहानी सुनने पर राजी करते थे और हिंदुओं को दास्तान हमजा। इसका आम हिंदू मुसलमान नागरिकों पर इतना प्रभाव डाला कि वे प्रेम से एक-दूसरे के साथ रहने के लिए तैयार हो गए।

भक्ति काल के अप्रतिम कविवर जायसी द्वारा प्रणीत 'पद्मावत' महाकाव्य का स्थान प्रेम गाथाओं में प्रथम है तथा प्रबंध काव्यों में द्वितीय। प्रस्तुत कृति में कुशल रचयिता ने चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन का सिंहल

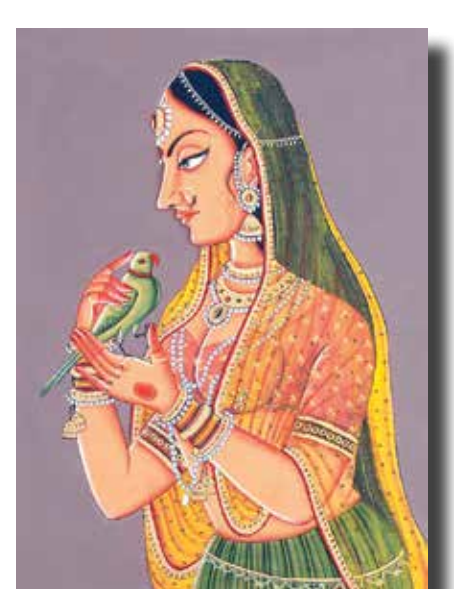

देश की अप्सरा सम राजकुमारी पद्मावती से प्रेम का वर्णन किया है। उक्त पुस्तक को पढ़ लेना विलक्षण अनुभव से गुजरने जैसा है। भारतीय साहित्य के मील के पत्थरों में से एक जायसीकृत 57 खंडों वाला 'पद्मावत' सूफी परंपरा पर ग्रामीण अवधी भाषा मे विरचित अप्रतिम महाकाव्य है। इसमें राजा की प्रथम रानी नागमती का विरह वर्णन, उसका उन्माद, उसके प्रति पशु-पक्षियों की सहानुभूति आदि का वर्णन असीम सहजता व स्वाभाविकता के साथ उन्होंने किया है। 'पद्मावत' में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त होती है। कवि ने उन तमाम कथानक रूढ़ियों को अपनाया जो भारतीय कथाओं में परंपरा से चली आ रही थी। साथ ही फारसी 'मसनवी' पद्धति को भी अपनी प्रेमगाथाओं का आधार बनाया। कवि ने रत्नसेन को नायक और पद्मावती को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तु यथार्थ ऐतिहासिक है, प्रत्यक्ष रूप से उसमें गौणिक प्रेम का ही वर्णन है, पर यह लौकिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना करने वाला है। 'पद्मावत' में जायसी ने विरह व प्रेम आदि जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया।

महाकाव्य का सृजन मौलिक 'रामचरितमानस' की दोहा-चौपाई पद्धति पर हुआ है। उसमें लोक जीवन की शिक्षाप्रद सूक्तियों, भौतिक तत्वों, मुहावरों तथा किंवदंतियों की प्रधानता है।

'पद्मावत' में महाकवि जायसी ने प्रेमोपासना के जरिए परमेश्वर प्राप्ति का मार्ग दर्शाया है। भौतिक प्रेम के साथ ही साथ उसमें आध्यात्मिक प्रेम की भी स्पष्ट झलक मिलती है। कवि ने प्रस्तुत कथा को आध्यात्मिक रूप दिया है। चित्तौड़ जिस्म का प्रतीक है, राजा अंतरंग का, सिंहल हृदय का, पद्मिनी तृष्णा की, हीरामन गुरु का, नागमती जग-धंधे की, अलाउद्दीन माया का और राघव शैतान का।

दरअसल 'पद्मावत' ने ही जायसी को इतना महान बना दिया जितना उनके समस्त काव्यों ने भी नहीं बनाया। महाकाव्य में औरत के

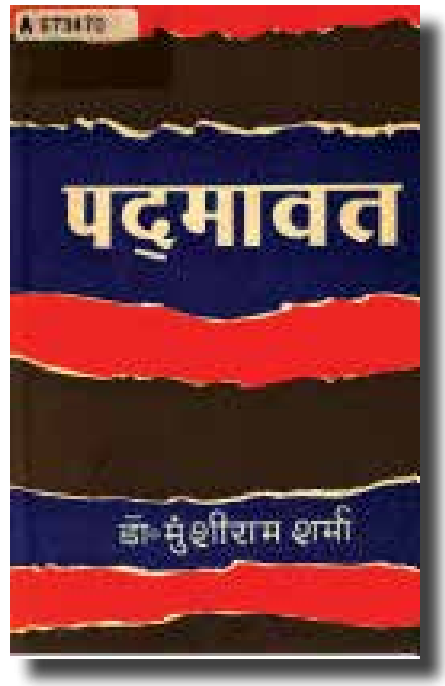

उद्दीपक स्वरूप को अधिक प्रदर्शित किया गया है। तोते के मुंह से पद्मावती की रूप चर्चा का उद्घाटन। उसके रूप मधु का पान करने की खातिर रत्नसेन विभिन्न विघ्नों को झेलकर भी उसे प्राप्त करता है।

बकौल आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'पद्मावत' हिंदी के प्रबंधकाव्यों में 'रामचरितमानस' के पश्चात् दूसरा स्थान रखता है।

लब्धप्रतिष्ठित सूफी संत शेख मुबारक शाह बोहने और शेख महीउद्दीन के शार्गिद जायसी ने अपने परम सम्माननीय गुरुवरों की वंदना करके दोनों का उल्लेख महाकाव्य में किया है—

''सैयद उत्सरम पीर पियारा
जेहि मोहि पंथ दीन्ह् उजियारा।।''

××× ××× ×××

''गुरु मेहंदी सेवक में सेवा
चकै उताइन जोदिवूंरु सेवा।।''

स्वभाव से जायसी काफी विनीत थे। निहायत ही सरलता से कठिन काम करने और अजीबोगरीब रूप धारण करने की क्षमता रखने वाले उस महानुभाव को विकलांगों के प्रति विशेष ममता थी। दीक्षित होने से पहले जायसी खेतिहर थे। खेतों में काम करते वक्त वह अपना भोजन भी उधार ही मांग लेते थे ओर परायों के साथ खाते थे। एक दिन की बात है कि उन्हें एक कुष्ठ रोगी दिखाई दिया। कवि ने उस कोढ़ी को बुलाया और दोनों खाना खा रहे थे कि पीप कवि के ग्रास में चू गई। यह देखते ही कोढ़ी ने अथाह दुःख के साथ जायसी से आरजू की—

''क्षमा कीजिए, उस ग्रास को मत खाइए।'' परंतु अनमना करके उन्होंने मैली खुराक को सप्रेम खाया। सनातन आश्चर्य नहीं तो और क्या कि कपूर मानिंद अकस्मात् वह कोढ़ी गायब हो गया। साईं-अल्लाह ताला परमपिता परमेश्वर ही परमार्थ में जायसी की परीक्षा लेने पहुंचा था।

जिंदगीभर खुद-ब-खुद पीड़ित रहे कवि के सातों सुत एक दुर्घटना में चल बसे। हां उनका अवसान भी एक आखेटक द्वारा अनजाने में हुआ। शीतला के कारण उनकी एक आंख खराब हो गई। कवि ने लिखा है—''मुहमद बाई दिसि तजा एक सखन एक आंखि।'' बदसूरत कवि को देखकर बादशाह शेरशाह सूरी हंसने लगा तो एकाएक उनके मुंह से शब्द निकले—''मो कहं हससि कि को अरहि।'' (तुम मुझ पर हंस रहे हो कि इस बेचारे को बनाने वाले उस ईश्वर प्रजापति पर?)। जवाब सुनते ही बादशाह का मुख पीला पड़ गया और तुरंत ही माफी मांगी।

महाकवि जायसी ने समस्त मजहबों से जानकारी हासिल की। तमाम देवताओं के प्रति उन्होंने आस्था प्रकट की। पारस्परिक प्यार और विश्वास के साथ जिंदगी बिताने के लिए शकले सरबस से अपनी कृतियों के जरिए उन्होंने प्रार्थना की। पीड़ा मानव मन को कितना स्वच्छ व शुद्ध बनाती है, यह कोई उस विश्वविख्यात सौंदर्योपासक, सौंदर्य गायक से ही ग्रहण कर सकता है।

इंदीवरम्, पोस्ट-मायानाड, कालीकट-673008 (केरल)

हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतीक

डॉ. कृष्ण कुमार

हिंदी साहित्य में सूफी कवि जायसी की पहचान पद्मावत के रचयिता के रूप में स्थापित है। किंतु हिंदी साहित्य के इतिहास में डॉ. नगेंद्र तथा विजयदेव नारायण साही ने अपनी पुस्तक 'जायसी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वह सूफी कवि नहीं थे। नगेंद्र जी ने[1] जायसी को सूफी मत का न मानते हुए 'भारतीय साधना-पद्धति' के कवि के रूप में स्थापित किया तो साही[2] ने इनको पूरे भक्ति-चक्र से ही बाहर निकाल कर, आचार्य शुक्ल[3] जी का खंडन करते हुए, केवल एक विशुद्ध कवि के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। कितना अच्छा होता कि ऐसी भ्रामक स्थितियों को जन्म न देकर उन तथ्यों को आलोकित किया जाता जो वास्तव में जायसी चाहते एवं मानते थे, जैसे हिंदू-मुस्लिम समन्वयवाद। जायसी भक्तिकाल के अप्रतिम कवि हैं तथा उनकी काव्यकृति पद्मावत प्रेमाख्यानों में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में एक है। सोलहवीं शताब्दी के इस अद्भुदकर्मा अद्भुत कवि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आलोचकों के विवाद व्यूह में घिरा रहा है। दुर्भाग्यवश रचना के नैसर्गिक स्वरूप को तोड़ने या मरोड़ने की पता नहीं क्यों, आलोचकों की आदत सी बन गई है। जायसी जब अपने आपको स्वयं सूफी संप्रदाय का घोषित करते हैं तो इसे इसी रूप में स्वीकार न करके क्यों वाद-विवाद करने की जरूरत पड़ जाती है? रचना एवं रचनाकार काल-परिवेश तथा सामयिक राजनीतिक, धार्मिक और प्रशासनिक बंधनों से मुक्त न रहा है न रह ही सकता है। यह सिद्धांत शाश्वत रहा है। जायसी इस निकष पर खरे उतरते हैं। भक्तिकाल (सं. 1375-1700) में जायसी के अलावा अन्य पांच कवियों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। कबीर (1398-1518) को छोड़ कर अन्य सभी आयु में जायसी से छोटे रहे हैं। ये हैं सूर (1478-1581), तुलसी (1497-1623), रसखान (1548-1628) एवं अब्दुल रहीम खानखाना (1556-1626)। अनुमानतः मलिक मुहम्मद जायसी का समय (1477-1542) का रहा है। यह राजनीतिक एवं धार्मिक दृष्टि से भारत में उथल-पुथल का समय था, जिसमें लोदी एवं मुगल वंश के साम्राज्य थे। जायसी ने बाबर के समय से पहले पद्मावत कृति की शुरुआत कर शेरशाह सूरी के शासनकाल में इसको पूरा किया था। जायसी के जन्म एवं मृत्यु के समय के बारे में साहित्य समाज में विचारकों के मत भिन्न हैं किंतु जन्म या निवास स्थान के बारे में जायसी ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है। आखिरी कलाम के माध्यम से ये बातें सामने आ जाती हैं–

''भा अवतार मोर नौ सदी।
तीस बरिख ऊपर कवि बदी।।''
–(आखिरी कलाम 4)

इस चौपाई के माध्यम से दो बातें सामने आती हैं–पहली तो यह कि जायसी का जन्म हिजरी की नौवीं सदी में हुआ था। हिजरी वर्ष में 593 जोड़ देने से अंग्रेजी वर्ष सन् की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार जायसी का जन्म 1393 ई. से लेकर 1493 ई. के मध्य कहीं भी हो सकता है। अन्य साक्ष्यों के आधार पर 1477 ई. को मान्यता मिल गई है। दूसरी बात यह सामने आती है कि जायसी ने 30 वर्ष के हो जाने पर ही काव्य साधना की शुरुआत की थी। अतः जायसी की रचनाओं का समय 1507 से लेकर 1542 तक का स्थापित होता है क्योंकि काजी नसरुदीन हुसैन के अनुसार इनकी मृत्यु 949 हिजरी (1542) में हुई थी। इनके पिता का नाम मलिक राजे अशरफ माना जाता है, जो रायबरेली (उत्तर प्रदेश) के पास जायस के निवासी थे और खेती करते थे। जायसी के शब्दों में–

''जायस नगर मोर अस्थानू।
नगरक नांव आदि उदयानू।।
तहां देवस दस पहुने आयऊं।
भा वैराग बहुत सुख पायऊं।।''
–(आखिरी कलाम 10)

प्रतीक रूप में जायसी लिखते हैं कि जायस में वह केवल दस दिन के लिए अतिथि होकर आए थे अर्थात् स्थूल शरीर पा जन्म लिया था किंतु वहीं के होकर रह गए। इस जगह का पुराना नाम उदयान नगर या उज्जालिक नगर था। ऐसा माना जाता है कि जायस के कंचानाखुर्द नामक मुहल्ले में जायसी का जन्म हुआ था। एक दुर्घटना के बाद, जिसमें इनके पुत्रों का देहांत हो गया था, उन्होंने गृहस्थाश्रम छोड़ कर वैराग्य ले लिया और पास के जंगल में रहने लगे थे, जहां बाद में उनका देहांत भी हो गया था। अमेठी के पास रामनगर से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर जायसी का मकबरा है। यह स्थान भी जायस के पास ही है।

जायसी की भाषा एवं कृतियां—जायसी ने अपने क्षेत्र की अवधी भाषा को ही अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। भक्तिकाल में तुलसी ने भी अपनी अधिकतर रचनाएं अवधी में ही की थीं। रामचरितमानस की अवधी एवं जायसी की अवधी में मुख्य अंतर यह है कि जायसी ने बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया तो तुलसी की अवधी में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का अधिक प्रयोग है। तुलसी ने नागरी लिपि का प्रयोग किया तो जायसी ने फारसी का। यद्यपि कुछ विद्वानों ने जायसी की रचनाओं को भी नागरी लिपि में बद्ध बताया है किंतु प्राप्त प्रमाण इस धारणा का अनुमोदन नहीं करते हैं। जायसी की भाषा में अवधी की अरघान होने के कारण तुलसी की अपेक्षा अधिक मिठास है। उदाहरण के लिए रामचरित मानस के बालकांड की बहुचर्चित चौपाई ''बंदउं गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।'' को ही ले लीजिए। इसमें से अवधी मिठास लगभग पूर्णतया लुप्त है। इसी प्रकार के अनेकानेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे जायसी-तुलसी की अवधी की भिन्नता स्थापित हो जाती है। जायसी की लगभग सारी कृतियों में अवधी की मिठास का बोध होता है, पद्मावत का तो कहना ही क्या। जायसी अपनी कहानी के लिए उन शब्दों का प्रयोग करते हैं जो गांव-गिरांव के छप्परों, झोपड़ियों, त्योहारों एवं सामान्य स्त्री-पुरुष के प्रयोग में आते हैं। कृत्रिमता से कोसों दूर रहते हुए जो जैसा पाया वैसा ही जायसी ने लिखा। तुलसी ऐसा नहीं करते हैं। तुलसी की अपनी तत्कालिक मजबूरियां थीं। बनारस के पंडितों के विरोध को उन्हें झेलना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति जायसी के साथ नहीं थी। तुलसी की शब्द-संपदा 'नाना-पुराण निगमागम' से आती है, जिसमें अवधी को संस्कृत का संस्कार दिया जबकि जायसी ने अपनी अवधी को अवध के जनपद का संस्कार दिया। जायसी-तुलसी की भाषा के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने स्पष्ट किया है कि यदि तुलसी की रचनाओं की भाषा वैसी होती जैसी कि मंथरा-कैकई संवाद के समय रही है तो रामचरितमानस की भाषा भी जायसी के पद्मावत की तरह 'अवधी अरघान' लिए होती। देखिए अयोध्या कांड की कुछ चौपाइयों को—

''करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा।
बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरी छाड़ि अब होब कि रानी।।
जारै जोग सुभाउ हमारा।
अनभल देभि न जाइ तुम्हारा।।
तातें कछुक बात अनुसारी।
छमिअ देखि बड़ि चूक हमारी।।
—(अयोध्याकांड/15/5-8)

यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने[3] जायसी ग्रंथावली के आधार पर जायसी की केवल तीन कृतियों, पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम का ही उल्लेख किया है किंतु अब बच्चन सिंह[2] के अनुसार विभिन्न विद्वानों एवं शोधार्थियों की खोजों के आधार पर 24 ग्रंथों की बात की है। कविता कोश[4] में इनकी सूची इस प्रकार है—पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, सखरावत, चंपावत, इतरावत, भटकावत, चित्रावत, सुर्वानामा, मोराईनामा, मुकहरानामा, मुखरानामा, पोस्तीनामा, होलीनामा, बारहमासा, धनावत, सोरठ, जपजी, मैनावत, मेखरावटनामा, कहारनामा, लहतावत, सकरानामा एवं मसला या मसलानामा। संक्षेप में अखरावट का रचनाकाल 1504 ई. का माना जाता है, जो जायसी के अपने कथन के अनुसार ठीक नहीं लगता है। यह सिद्धांत प्रधान ग्रंथ है, जिसमें कुल मिलाकर 54 दोहे, 54 सोरठे और 317 अर्द्धालियां हैं। यह गुरु-चेला संवाद पर आधारित है। 'आखिरी कलाम' का रचनाकाल, 1529, आते आते दिल्ली में मुगल साम्राज्य की स्थापना बाबर द्वारा हो चुकी थी। बाबर की प्रशंसा में जायसी ने अनेक पद इसमें दिए है। रचना के शीर्षक को ध्यान में रखते हुए कुछ आलोचकों ने इसको जायसी की अंतिम रचना कहा है, किंतु वास्तव में ऐसा है नहीं। इस ग्रंथ में अवतार ग्रहण करने तथा भूकंप एवं सूर्य ग्रहण का भी उल्लेख किया है। इसके अलावा इसमें मुहम्मद स्तुति, सैय्यद अशरफ की वंदना, जायस नगर का परिचय आदि बड़ी सुंदरता से किया है। इसमें उन्होंने भारतीय मान्यताओं के अनुसार सृष्टि के समाप्त होने एवं पुनः मानव जाति के उद्भव का सुंदर चित्रण किया है। जायसी समन्वयवादी कवि थे।

जायसी की काव्य चेतना—जायसी की पहचान उनके सूफी प्रेमाख्यान पद्मावत से हुई और वह अमर हो गए। यह कृति मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' के समान ही श्रेष्ठ एवं जलाल मुहम्मद रूमी के मसनवी सिद्धांतों पर आधारित प्रबंध काव्य है। मसनवी मोहम्मद रूमी के 6 ग्रंथों के संग्रह का नाम है, जिसको उनके पुत्र-शिष्य ने तैयार किया था। ये सूफी परंपरा के अनुसार मनुष्य को ईश्वर से जोड़ने का मार्ग बताते हैं। मसनवी की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें रूमी ने मूल कथानक के साथ-साथ अन्य छोटी-छोटी रोचक प्रभावशाली कहानियों को भी बड़ी ही खूबसूरती के साथ बुना है और अंत में वह पुनः अपनी मूल कहानी पर पहुंच जाते हैं। पद्मावत भी ऐसी ही एक उत्कृष्ट रचना है, जिसमें रत्नसेन एवं पद्मावती की प्रेमगाथा के अलावा अन्य अनेकानेक कहानियों को बुना गया है। वास्तव में यह एक प्रबंध काव्य है, जिसको डॉ. नगेंद्र[1] ने 'रोमांचक शैली का काव्य' कहा। इसमें प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त मिलती है, जिसमें कल्पना और इतिहास का सुंदर योग भी विद्यमान है। अवधी भाषा की फारसी लिपि में बद्ध इस रचना में हिंदी साहित्य के लगभग सभी रसों का आस्वाद मिलता है। शृंगार, प्रेम और विरह का इतना सुंदर समन्वय अन्यत्र नहीं दिखता है। सूफी कवि होते हुए जायसी ने भारतीय परंपरा का पूरा निर्वाह करते हुए अपनी रचनाओं के लिए सारे कथानक हिंदू चुने हैं। मूलतः प्रबंधकाव्य निबद्ध शैली के अंतर्गत

आता है, जिसमें अनेकानेक बंधनों का निर्वाह करना पड़ता है जिसमें सुसंबद्धता, पूर्वापर संबंध तथा तारतम्यता का होना अनिवार्य होता है। विभिन्न विद्वानों ने प्रबंध काव्य के आवश्यक तत्वों की विवेचना करते हुए भिन्न-भिन्न मत रखे हैं जैसे आचार्य शुक्ल ने केवल इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का ही उल्लेख किया है। सबका समन्वय करते हुए निम्नलिखित 5 बातें आवश्यक प्रतीत होती हैं–

1. आदि, मध्य एवं अवसान सहित एक मुख्य कथा का होना।
2. प्रासंगिक अंतर्कथाओं की सुसंबद्ध योजना का होना।
3. रसात्मक वस्तु-वर्णनों का प्राणान्य होना।
4. मुख्य कथा के साथ अन्य कथाओं का यथोचित संबंध का होना।
5. 'कार्य', उद्देश्य की दृष्टि से समस्त इतिवृत्त में एकरूपता का होना।

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना[5] ने पद्मावत को पांचों तत्वों के निकष पर परखने के बाद इसको आद्योपरांत प्रबंध काव्य पाया। हिंदी साहित्य में जो मान्यता एवं स्थान रहस्यवाद का है, वही इस्लाम में 'सूफी' का है। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है पवित्र या ऊन। पवित्र इसलिए कि यह आत्मा से परमात्मा के मिलने का रिश्ता दर्शाता है और अधिकतर सूफी ऊनी चोगे पहनते हैं। इसकी व्युत्पत्ति के अन्य कारण भी बताए जाते हैं किंतु उनमें से कोई भी तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतर पाता है। सूफी ऐसे साधक होते हैं जो विरक्त, संसार-त्यागी, परमात्मा के प्रेम में बेसुध रहते हुए प्रेम को ही सर्वोच्च स्थान देते हैं। लौकिक प्रेम को आधार बनाते हुए वे पारलौकिक प्रेम, परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग खोजते हैं। सूफीमत की इस विशिष्टता का निर्वाह जायसी ने पद्मावत में बड़ी ही सुंदरता के साथ आध्यात्मिक रूपक बांधते हुए किया है। भारतीय दर्शन के अनुसार इसमें अध्यात्म है तो सूफियों को इसमें विशुद्ध लौकिक-पारलौकिक प्रेम नजर आता है। ग्रंथ के अंत में देखिए जायसी किस दक्षता के साथ इसको प्रस्तुत करते हैं–

''तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा।
बिनु गुर जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा।
बांचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू।
माया अलाउदीं सुलतानू।।''

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार चित्तौड़ की सुख-सुविधाओं का त्याग कर मनरूपी (आत्मा का प्रतीक) राजा रत्नसेन गुरु (हीरामन सुग्गा) के निर्देश से सिंघल द्वीप बुद्धि (ब्रह्म-परमात्मा) पद्मावती को प्राप्त करने के लिए जाता है। इस लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम का एकाकार आध्यात्मिक रूप से भी जायसी ने करा दिया, जब पद्मावती रत्नसेन के शव के साथ ही सती हो जाती है। आत्मा का परमात्मा से परम मिलन हो जाता है। यही सूफी मत की मान्यता है। इस रूपक में जायसी ने एक विरोधाभास को भी जन्म दिया है। आत्मा को रत्नसेन का प्रतीक मानकर स्त्रीलिंग एवं पुरुषलिंग में टकराव की स्थिति ला दी है। जायसी संभवतः यह बताना चाहते हैं कि विशुद्ध प्रेम में इस प्रकार के भेदभाव के कोई अर्थ नहीं होते हैं।

भारतीय सोच के अनुसार सूफीमत में भी अद्वैतवाद (एकेश्वरवाद) तथा द्वैतवाद की झलक दिखाई देती है। इसके आधार पर सूफियों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है–वुजूदिया और शुहूदिया। वुजूदिया में विश्वास रखने वालों के अनुसार परमात्मा की ही एकमात्र सत्ता है जो 'हमावुस्त' अर्थात् 'सब कुछ वही है' के सिद्धांत को मानते हैं। मुहिउदीन इब्नुक अरबी को इस मत का प्रवर्तक माना जाता है। शुहूदिया मत के प्रवर्तक के रूप में शेख करीमी जीली को स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार परमात्मा एवं जीव की सत्ता को जुदा-जुदा माना गया है। किंतु जीव की सत्ता को पूर्णतया परमात्मा की सत्ता पर निर्भर मानते हैं। जीव की सत्ता को शून्य जैसी होते हुए वे इसे परमात्मा की सत्ता पर आधारित मानते हैं। इनके अनुसार परमात्मा परम सत्ता है और सृष्टि असत् है। इस मत को मानने वाले असत् के दर्पण में परमात्मा की सत्ता को प्रतिबिंब के रूप में देखते हैं। इस धारणा के लोग इसे पानी में दिखने वाले सूर्य के प्रतीक से समझाने का प्रयास करते हैं। सूर्य का प्रकाश जल में पड़ता है और जल में पड़ने वाले उसके प्रतिबिंब से सूर्य की सत्ता को देखा और समझा जाता है। अतः प्रतिबिंब को अपने होने के लिए सूर्य की अपेक्षा होती है। जल में उथल-पुथल या परिवर्तन आने से प्रतिबिंब बनता-बिगड़ता रहता है किंतु इससे सूर्य की सत्ता या उसके अस्तित्व को कोई फरक नहीं पड़ता है। यहां पर सूर्य परम सत्ता परमात्मा है तथा जल असत् के दर्पण जैसा।

सूफी मत की उत्पत्ति कब और कहां हुई, इसके बारे में एकमतता नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि इस्लाम के साथ ही सातवीं सदी में इसका आविर्भाव हो गया था किंतु ज्यादातर विद्वान यह मानते हैं कि इसका जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में ईरान में हुआ था। भारत में सूफी संप्रदाय का जन्म बारहवीं शताब्दी में हुआ तथा इसकी चार प्रमुख धाराएं–चिश्तिया, कादिरया, सुहरवर्दिया और नक्शबंदिया बनीं। इन चारों के प्रवर्तक के रूप चार पीरों के नाम आते हैं किंतु वे चार कौन हैं इसमें लोगों के मतों में भेद है। भारत में चिश्ती समुदाय फैला तथा इसका विशेष महत्त्व रहा जो ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (1142, अफगान-1236, अजमेर) के कारण ही विस्तार पा सका।

भारत में गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार शिष्य अपने गुरु का प्रतिबिंब अपने आप में देखने का प्रयास करता है तथा उसमें एकाकार होना चाहता है। जायसी इस परंपरा को तोड़ना नहीं

चाहते थे और तोड़ा भी नहीं। वह भारत में फैले सूफी संप्रदाय के दो मतों से प्रभावित हुए और दोनों में अपने गुरु की छवि देखी। इसी कारण हिंदी साहित्य में इनके गुरु के बारे में एकमतता नहीं हो पाई है। पद्मावत (18, 19), अखरावट (26) और आखिरी कलाम (9) में दिए गए आत्मसाक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती (1302-1425) जायसी के गुरु थे। किंतु यदि जायसी के जीवनकाल को परखा जाय तो ऐसा हो पाना संभव नहीं लगता। हो सकता है कि वह सैयद अशरफ के परिवार के ही शेख मुबारक या शेख कलाम (कहीं-कहीं जलाल भी लिखा पाया जाता है) के शिष्य रहे हों। किंतु यह विचार भी ठीक से समझ में नहीं आ पाता है जब जायसी एवं 'मोहदी' संप्रदाय के शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान के संबंधों को देखने का प्रयास करते हैं। जायसी के ही शब्दों में, ''मैंने खेनेवाले महदी की सेवा की है, जिनका सेवक वेग के साथ चला करता है।'' लगता है कि शेख बुरहान (1465-1563) ने जायसी का पथ प्रदर्शन कर ज्ञान प्रदान दिया और गुरु की कृपा से कर्म की योग्यता प्राप्त करते ही उनकी वाणी खुल गई और प्रेम का वर्णन करने लगे (पद्मावत 18)। जायसी ने अन्यत्र अखरावट (27) में कहा है, जो (6) से उद्धृत किया जा रहा है—''मैंने 'मीठा' महदी गुरु पा लिया, जिनका प्रिय नाम शेख बुरहान है और जिनका गुरु-स्थान कालपी नगर है। उन्होंने गोसाई (परमात्मा) के दर्शन पा लिए हैं और उन्हें अलहदाद गुरु ने पंथ लखाया था। अलहदाद 'नवेला' सिद्ध थे और वे सैयद मुहम्मद के शिष्य थे, जिन्हें अमर ख्वाजा खिज्र से सहायता पाने वाले दानियाल ने दीक्षित किया था।'' इसी बात की पुष्टि जायसी ने 'चित्ररेखा' (पृष्ठ 74) कुछ इस प्रकार की है—''शेख बुरहान महदी गुरु हैं, जिनका जन्म स्थान कालपी है, जिन्होंने चार बार मक्के की यात्रा की है तथा जो किसी को भी स्पर्श करके उसके पाप दूर कर देते हैं। वे ही मेरे गुरु हैं और मैं उनका चेला हूं तथा उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर मेरा पाप धो दिया है और प्रेम के प्याले को स्वयं चखकर उसकी बूंद मुझे भी चखा दी है।''

अन्यत्र तमाम खोजों के बाद निष्कर्ष यह निकलता प्रतीत होता है कि जायसी सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती के घराने से घनिष्ठ संबंध रखते हुए उनके सिद्धांतों से अधिक प्रभावित हुए थे किंतु गुरु के रूप में शेख बुरहान को ही अपना गुरु स्वीकार किया जो सूफी मत के अंतर्गत 'महदी' धारा के समर्थक थे। 'महदवी' आंदोलन की शुरुआत सैयद मुहम्मद जौनपुरी ने 1500 में की थी। गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत अलहदाद और बाद में बुरहान सैयद मुहम्मद जौनपुरी के शिष्य हुए। चिश्तियों के अंतर्गत पहले 'अलाई' नामक उपशाखा का जन्म 'मनकपुर' हुआ था। कहा जाता है कि जब जायसी केवल सात वर्ष के थे, तब इन्हें चेचक निकली थी और इनकी मां इन्हें मनकपुर लेकर गई थीं और मनौती की थी। जायसी ठीक तो हो गए किंतु एक आंख जाती रही और कुरूप हो गए। इन सब तथ्यों से यह तो स्थापित हो ही जाता है कि जायसी सूफी मत के अनुयायी सूफी प्रेमाख्याना के अंतर्गत प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'पद्मावत' के अमर रचयिता थे। प्रेम के विभिन्न भावों का चित्रण जिस कुशलता से जायसी ने इस ग्रंथ में किया है, वह अन्यत्र नहीं मिलता है। प्रेम और रहस्यवाद को इन्होंने भारतीय परंपरा के अंतर्गत नहीं वरन् ईरान की सूफी धारा के अनुसार वर्णित किया है।

यद्यपि जायसी ने पद्मावत की रचना महाकाव्य के सिद्धांतों को आधार बना कर नहीं की थी किंतु इसमें महाकाव्यत्व के सभी गुण विद्यमान हैं, जिसको 58 विभिन्न खंडों में विभाजित किया जा सकता है। इन सबके आधार पर हम यह कहने के अधिकारी तो हो ही जाते हैं कि जायसी अमर प्रबंधकाव्य पद्मावत के साथ अनेकानेक अन्य ग्रंथों के सृजनहार महदवी परंपरा के अनुयायी सूफी संत थे और पद्मावत महाकाव्य कहलाने का अधिकारी प्रतीत होता है। इनकी रचनाएं आद्योपरांत रूमी की मसनवी विचार धाराओं के अनुसार बुनी गई हैं।

अंत में मैं बर्मिघम् की डॉ. वंदना मुकेश शर्मा तथा लंदन की डॉ. अरुणा अजितसारिया के सुझावों के लिए उन्हें हृदय की गहराइयों से धन्यवाद देना अपना नैतिक धर्म समझता हूं। दोनों ने बड़ी ही बारीकी से सब कुछ समझकर जो बातें बताईं, उनसे यह आलेख अधिक ग्राह्य बन सका है। पत्नी चित्रा की छाया मेरी सभी रचनाओं में तो रहती ही है।

संदर्भ–

1. डॉ. नगेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर प्रकाशन, तेंतीसवां संस्करण 2007, पृष्ठ 165-168
2. बच्चन सिंह, 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण 1997, पृष्ठ 108-120
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर प्रकाशन, तेंतीसवां संस्करण 2007, पृष्ठ 80-84
4. www.kavitakosh.org.
5. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 'हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि' विनोद मंदिर प्रकाशन, आगरा, 1977, पृष्ठ 129-164

   धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी एवं रघुवंश द्वारा संपादित, 'हिंदी साहित्य कोश', भाग 2 (नामवाची शब्दावली), ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी प्रकाशन, संवत् 2020

लौकिक-अलौकिक के बीच आवाजाही करते रसिक भक्त

हरजेंद्र चौधरी

मध्यकालीन हिंदी काव्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों में जायसी का विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'प्रेम की पीर के कवि' के रूप में विख्यात जायसी के जीवन काल के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद होने के बावजूद पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम दशक से लेकर सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान उनका होना मान्य है।

अपने अन्य समकालीनों की तरह रचनाकार जायसी भी अपने समय की उपज कहे जा सकते हैं। उनके जन्म से पहले की अढ़ाई-तीन सदियां भारतीय राजनीति और संस्कृति में अनेक उतार-चढ़ावों और मूलभूत परिवर्तनों की साक्षी बनीं। 1206 ई. से 1526 ई. के बीच अनेक राजवंशों ने दिल्ली पर (यानी उत्तर भारत के एक बड़े भू-भाग पर) राज किया। इस कालखंड को दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना जाता है। दिल्ली सल्तनत का यह दौर मोहम्मद गौरी के गुलाम कुतुब-उद-दीन ऐबक के राजा बनने से शुरू हुआ और फिर क्रमशः खिलजी (1290 से 1320), तुगलक (1320 से 1414), सैय्यद (1414 से 1451) तथा लोदी राजवंश (1451 से 1526) के आधिपत्य का दौर रहा। दिल्ली सल्तनत के नाम से विख्यात इस कालखंड के दौरान हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म से जुड़ी संस्कृतियों के बहुविध-बहुरूपेण मिश्रण व समन्वय का श्रीगणेश व परिपाक हुआ। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि अनेक संतों-भक्तों ने बहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा का निषेध करते हुए इस्लाम के प्रभाव के फलस्वरूप एकेश्वरवाद का प्रचार किया। इनमें कबीर और गुरु नानक देव का प्रमुख स्थान रहा। जिस मिली-जुली संस्कृति को आज हम भारत की गंगा-जमुनी तहजीब कहते हैं, उसकी मजबूत आधारशिला इसी अवधि में रखी गई थी।

गंगा-जमुनी संस्कृति का एक विशिष्ट आध्यात्मिक अंश, सूफीमत, इसी दौर में अंकुरित-पुष्पित हुआ। भक्ति के नए पुराने बीजों से उत्पन्न काव्य की पृष्ठभूमि भी इसी काल में निर्मित हुई। जब सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि जायसी का जन्म हुआ, तब तक भक्ति और उससे निःसृत काव्य की उदार-उदात्त सांस्कृतिक भावभूमि तैयार हो चुकी थी। सूर वंश के शेरशाह सूरी और हुमायूं के बीच हुए संघर्ष के दौर को परवर्ती घटनाक्रम की रोशनी में देखें तो कह सकते हैं कि दिल्ली सल्तनत के बाद (1526 में) मुगल काल की शुरुआत हुई। जायसी ने मसनवी शैली की रूढ़ि का पालन करते हुए अपनी रचना 'आखिरी कलाम' में शासक शेरशाह सूरी की तथा सुविख्यात प्रेमाख्यान 'पद्मावत' में बादशाह बाबर की प्रशंसा की है। इससे स्पष्ट होता है कि जायसी की रचनात्मकता सल्तनत काल के अंतिम दशक तथा मुगल काल के प्रारंभिक दशकों के दौरान सामने आई। उन्हें तत्कालीन उत्तर भारत में चल रही उथल-पुथल का न्यूनाधिक अनुभव जरूर हुआ होगा। उनके सामने एक ओर युद्धों और राजनैतिक अनिश्चितता से उत्पन्न धुंधलका था तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता और भक्ति का उजला परिवेश भी था।

हिंदी भक्ति काव्य की चार धाराओं में से एक, प्रेमाख्यानक सूफी काव्य-धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में मान्य मलिक मुहम्मद जायसी की रचनाओं में उनका देश-काल खूब झलकता है। जायसी की रचनाओं पर पूर्ववर्ती परंपरा तथा युगीन परिवेश की स्पष्ट छाप है। प्रेममार्गी काव्य के रचनाकार जायसी ने 'पद्मावत' में दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया है तो उनके कुछ दशक बाद के, रामभक्ति काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में मूलतः उसी शैली को अपनाया है। अपनी-अपनी कथात्मक काव्य-कृतियों के लिए दोनों को अपने पूर्ववर्ती, आदिकालीन जैन कवियों द्वारा अपनाई गई यह शैली उपयुक्त जान पड़ी होगी। इन दोनों कवियों पर शास्त्र और लोक, दोनों का प्रभाव है। इन दोनों कवियों की रचना भाषा अवधी है। जायसी ने तो ठेठ अवधी में रचनाएं की हैं। उनके 'कहारनामा' में कहारों द्वारा डोली ले जाने की लोक परंपरा से कथासूत्र मिल गए हैं। यों तो उन्हें छोटी बड़ी कुल इक्कीस रचनाओं के लेखन का श्रेय दिया जाता है, पर उनकी प्रमुख रचनाएं एक हाथ की उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। उनकी रचनात्मकता की पराकाष्ठा 'पद्मावत' में दृष्टिगोचर होती है। इसके अलावा 'आखिरी कलाम', 'अखरावट', 'कहारनामा' तथा 'चित्ररेखा' आदि उनकी अन्य प्रमुख रचनाएं हैं। आत्म प्रचार से दूर रहने वाले अधिकतर भक्त कवियों ने अपने निजी जीवन के बारे में केवल प्रसंगवश ही थोड़ी-बहुत सूचनाएं दी हैं। जायसी भी इसके अपवाद नहीं हैं।

उनका नाम 'जायसी' उनके गृहनगर जायस (पूर्वी उत्तर प्रदेश) के नाम पर पड़ा है। प्रलय की इस्लामी अवधारणा पर आधारित साठ पदों वाली कृति 'आखिरी कलाम' के दसवें पद में उन्होंने अपना और अपने नगर का संक्षिप्त-सा परिचय दिया है कि उनका

'स्थान' जायस नगर है, जिसका पुराना नाम 'उदयान' है। पूरा पद इस प्रकार है–

''जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर क नांव आदि उदयानू।।
तहां दिवस दस पहुने आयउं।
भा बैराग बहुत सुख पायउं।।
सुखभा सोचि एक दुख मानौं।
ओहि बिनु जिवन मरन कैं जानौं।।
नैन रूप सो गयउ समाई।
रहा पूरि भर हिरदय छाई।।
जहंवं देखैं तहंवं सोई।
और न आव दिस्टि तर कोई।।
आपुन देखि देखि मन राखौं।
दूसर नाहिं सो कासौं भाखौं।
सबैं जगत दरपन कै लेखा।
आपन दरसन आपुहि देखा।
अपने कौतुक कारन, मीर पसारिन हाट।
मलिक मुहम्मद बिहनै, होई निकसिन तेहि बाट।''
–('आखिरी कलाम' का दसवां पद)

कवि ने जायस नगर में अपने जन्म व आवास को, अपने भौतिक जीवन को अपना दस दिन का 'आतिथ्य काल' माना है। कुछ समय बाद ही मोह-माया से वैराग्य उत्पन्न होने के उपरांत उसे वास्तविक आनंद की प्राप्ति होती है। आत्मा इस विश्व में 'पहुने' (अतिथि) की तरह आई है और अंततः उसे अपने 'घर' लौट जाना है। जायसी सहित सभी भक्त कवियों ने इस संसार को तदर्थ रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि उनकी मान्यतानुसार उनका स्थाई ठिकाना तो परम सत्ता के सान्निध्य में ही है।

'कहारनामा' नामका काव्य रचना में भी जायसी ने इस तदर्थ संसार से उस स्थाई संसार में आत्मा के स्थानांतरण को अपना विषय बनाया है। इस रचना का मूल स्रोत उत्तर प्रदेश की लोक संस्कृति–कहरवा या कहार गीत–से निःसृत है। इसमें भौतिक संसार से डोली जाने का मर्मस्पर्शी प्रसंग है। बिटिया को विवाहोपरांत अपने घर जाना ही है। आत्मा का अंतिम गंतव्य 'यह संसार' न होकर 'वह लोक' है, अध्यात्म का, परम सत्ता का लोक।

जायसी ने 'आखिरी कलाम' में कयामत के प्रसंग को आधार बनाया है तो अपने प्रेमाख्यान 'चित्ररेखा' में सृष्टि की उत्पत्ति को विषय बनाते हुए सृष्टिकर्ता का यशोगान किया है। यह अलग बात है कि 'चित्ररेखा' मूल रूप से 'पद्मावत' की तरह एक प्रेम कथा ही है, जिसे अंततः आध्यात्मिक रंग दे दिया गया है।

स्पष्ट है कि भौतिक विश्व की जीवन-स्थितियां और मानवीय संबंधों को आधार बनाकर ही जायसी ने अपनी रचनाओं में आध्यात्मिकता को वाणी दी है। जायसी ने अपनी रचनाओं की शुरुआत परम सत्ता के स्मरण और गुणगान से की है। 'पद्मावत' का पहला खंड 'स्तुति खंड' है, जिसमें सृष्टि के आदि रचयिता 'करतार' की प्रशंसा व स्तुति की गई है–

''सुमिरौं आदि एक करतारू।
जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू।
कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।।
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल खेहा।
कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा।।
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू।
कीन्हेसि बरन बरन औतारू।।
कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि, राती।
कीन्हेसि नखत, तराइन पांती।।
कीन्हेसि धूप, सीउ औ छांहा।
कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि मांहा।।
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा।
कीन्हेसि भुवन चौदहों खंडा।।
कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि।
पहिले ताकर नावं ले कथा करौं औगाहि।।''
–('पद्मावत' का प्रारंभिक अंश)

दोहा-सोरठा शैली में रचित 'अखरावट' के प्रारंभ में भी सृष्टिकर्ता व पैगंबर का गुणगान किया गया है कि उसने अंधकूप में इस विश्व को प्रकाशित किया। उसी ने इस ब्रह्मांड के अस्तित्व को संभव बनाया है। उसकी कृपा से ही पृथ्वी, गगन, चंद्रमा और सूर्य अस्तित्व में आए। कवि को वाणी का वरदान भी उसी ने दिया है। कवि निम्नलिखित शब्दों में अत्यंत अनंत कृतज्ञता के साथ उसका स्मरण करता है–

''गगन हुला नहिं महि हुली,
हुत चंद नहिं सूर।
ऐसइ अंधाकूप महं,
रचा मुहम्मद नूर।। (दोहा)

साईं केरा नांव, हिया पूर, काया भरी।
मुहम्मद रहा न ठांव, दूसर कोइ न समाइ अब।।
आदिहु ते जो आदि गोसाईं।
जेइ सब खेल रचा दुनियाई।।
जस खेलेसि तस जाइ न कहा।
चौदह भुवन पूरि सब रहा।।
एक अकेल न दूसर जाती।
उपजे सहस अठारह भांती।।
जौ वै आनि जोति निरमई।
दीन्हेसि ज्ञान, समुझि मोहिं भई।
औ उन्ह आनि बार मुख खोला।
भई मुख जीभ बोल मैं बोला।।
बै सब किछु, करता किछु नाहीं।
जैसे चले मेघ परछाहीं।।
परगत गुपुत बिचारिसो बूझा।
सो तजि दूसर और न सूझा।।'' (सोरठा)
–('अखरावट का प्रारंभिक अंश)

इसी प्रकार 'आखिरी कलाम' के प्रारंभ में भी 'प्राणदाता', 'वाणीदाता' व 'दृष्टिदाता'... सर्वस्रष्टा-सर्वदाता... का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण किया गया है–

''पहिले नावं दैउ कर लीन्हा।
जेंइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा।।
दीन्हेसि सिर जो संवारै पागा।
दीन्हेसि कया जो पहिरै बागा।।
दीन्हेसि नयन जोति, उजियारा।
दीन्हेसि देखै कहं संसारा।।
दीन्हेस वनबात जेहि सुनै।
दीन्हेसि बुद्धि, ज्ञान बहु गुनै।।

दीन्हेसि नासिक लीजै बासा।
दीन्हेसि सुमन सुगंधा बिरासा।।
दीन्हेसि जीभ बैन रस भाखै।
दीन्हेसि भुगुति, साधा सब राखै।।
दीन्हेसि दसन, सुरग कपोला।
दीन्हेसि अधार जै रचैं तंबोला।।
दीन्हेसि बदन सुरूप रंग, दीन्हेसि माथे भाग।
देखि दयाल, 'मुहम्मद', सीस नाइ पद लाग।।''
—('आखिरी कलाम' का प्रारंभिक अंश)

इसके साथ-साथ 'आखिरी कलाम' के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि साठ पदों में रचित इस कृति के प्रत्येक पद की अंतिम पंक्ति में 'मुहम्मद' शब्द अवश्य आया है।

भक्त कवि एक ओर तो इस संसार को 'माया' मानते हुए इसके बंधनों से मुक्ति की बात करते हैं तथा दूसरी ओर इसके रचयिता की प्रशंसा भी करते हैं। यह बात कुछ अंतर्विरोधपूर्ण लग सकती है। परंतु निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस भौतिक संसार को पूरी तरह से नकारना भक्त कवियों के लिए कभी भी संभव नहीं रहा। भौतिक संसार में रहते हुए ही उन्होंने भौतिकता का अतिक्रमण किया। भव-बंधनों के बीच रहकर भी उन्होंने उन बंधनों से मुक्त होने की अलख जगाए रखी। जायसी हों या तुलसीदास, गुरु नानक हों या कबीर, यह बात सभी भक्त कवियों पर लगभग समान रूप से लागू होती है। लौकिकता का यह आंशिक स्वीकार ही संभवतः भक्ति साहित्य को कालातीत प्रासंगिकता प्रदान करने वाला तत्त्व है।

मलिक मुहम्मद जायसी मूल रूप से कवि हैं। प्रेम उनकी मूल प्रवृत्ति है। सूफी मत उनके कवि-स्वभाव से मेल खाता है। स्वाभाविक है कि जायसी के काव्य में लौकिक और अलौकिक तत्त्वों का समावेश हुआ है। प्रेम में लौकिकता का मर्यादित स्वीकार्य अनिवार्य है। यह भौतिक जगत को प्रेम का मूल आधार है। अमूर्त्त-निराकार हवाओं में किसी वायवीय पात्र से प्रेम करना और करते रह सकता संभव नहीं है। वह ठोस रूपाकार की मांग करता है। जहां इस भौतिक जगत के संपूर्ण अस्वीकार की सैद्धांतिकी हावी होती है, वहां कवि और काव्य का भावावेग मंद पड़ने लगता है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि कवि आत्मा-परमात्मा के संबंध के वर्णन के लिए भौतिक जगत की स्थितियों और जीते-जागते लौकिक पात्रों को माध्यम बनाए। जायसी की ख्याति के प्रमुख रचनात्मक आधार 'पद्मावत' में यही किया गया है। जायसी का आग्रह है कि इस प्रेम कथा को इसके आध्यात्मिक अर्थ में ही पढ़ा व समझा जाए। पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो कवि द्वारा 'पद्मावत' के 'उपसंहार' में दी गई 'रूपक प्रतीक व्याख्या' इस प्रेमाख्यान की पूरी कथा के साथ पूरी तरह न्याय नहीं कर पाती—

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल, बुद्धि पदमावति चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा।
बांचा सोई न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोई सैतानू।
माया अलाउदीन सुलतानू।।
प्रेम कथा एहि भांति बिचारहु।
बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।''
—('पद्मावत' का उपसंहार खंड)

व्यक्ति-पात्रों, पक्षी-पात्र (तोता) और स्थानों (चित्तौड़, सिंहल द्वीप) को प्रतीकों में ढाल कर यदि हम इस कथा को पढ़ते हैं तो बात ठीक से बनती नहीं है। इन पंक्तियों में 'पद्मावत' की आध्यात्मिक अंतर्वस्तु के प्रति जो आग्रह—'प्रेम कथा एहि भांति बिचारहु'—व्यक्त किया गया है, उसको मान लेने पर पाठक को उलझन होती है और रसास्वादन में बाधा पड़ती है। एक अच्छी-भली प्रेम कथा पहेली में परिवर्तित होने लगती है।

भक्ति काव्य भी तो काव्य रसिकों के लिए काव्य पहले है, भक्ति का उपादान बाद में। असल में भक्त कवियों ने इस लौकिक जगत को पूरी तरह कभी नहीं नकारा। यदि वे नकारते तो इसके सुधार की बात नहीं करते। यह बात इक्कीसवीं सदी के पाठकों के लिए बहुत महत्त्व रखती है। समाज की चिंता और उसके सुधार की उत्कट इच्छा के संदर्भ में निर्गुण और सगुण भक्ति में कोई भेद नहीं है। समाज-सुधार की बात कबीरदास भी करते हैं और तुलसीदास भी। हां, भक्ति काव्य में भौतिक जगत का आंशिक नकार जरूर मिलता है। इस आंशिक नकार के सहारे ही भक्त कवि इस सांसारिकता का अतिक्रमण करते हैं। लौकिकता के सोपानों के सहारे ही वे अलौकिक तक पहुंचने का उपक्रम करते हैं; पारलौकिक को प्राप्त करते हैं।

'पद्मावत' में जायसी के द्वारा लौकिकता के सहारे अलौकिक और पारलौकिक को पाने का प्रयास किया गया है। पर रूपक और प्रतीकों का आग्रह यदि समाने न हो तो यह आख्यान उतार-चढ़ावों से भरा एक भावावेग युक्त प्रेमाख्यान ही ठहरता है। बीच-बीच में आध्यात्मिक संदर्भों और विवरणों का आना जायसी के अपने समय के काव्यात्मक और भाव बोधात्मक रुझानों के कारण हुआ है। परम सत्ता को पाना भक्त कवियों की सैद्धांतिकी का प्राथमिक तत्त्व रहा है। आत्मा-परमात्मा के संबंध को प्रेमी-प्रमिका या प्रेमिका-प्रेमी के उतार-चढ़ाव भरे मिलन-विरह-मिलन के रूप में वर्णित करने के अलावा कवियों के लिए संभवतः दूसरा कोई विकल्प उपलब्ध हो ही नहीं सकता था। जायसी के लिए भी नहीं था। यही कारण है कि जायसी लौकिक-अलौकिक के बीच आवाजाही करने वाले रसिक कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं।

ई-1/32, सेक्टर-7, रोहिणी, नई दिल्ली-110085

जायसी के पद्मावत में लोक-तत्त्व

डॉ. वीणा दाढे

किसी रचनाकार को जब भी जनता के निकट जाने की आवश्यकता पड़ी है या उसने लोक जीवन को किसी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक अथवा कोई अन्य उपदेश देना चाहा है, तो उसने अपने साहित्य को लोक-तत्त्वों से अभिमंडित करके उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है। लोकतत्त्वों के अल्पाधिक संयोग से अभिजात साहित्य के सृजन की परंपरा 'रामायण' और 'महाभारत' से लेकर हिंदी के मध्यकालीन साहित्य तक अबाध रूप से आगे बढ़ती रही है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि भाषाओं के साहित्य ने लोक प्रचलित साहित्य रूपों एवं अन्य लोक तत्त्वों से प्रेरणा ग्रहण की थी। हिंदी साहित्य का भक्तियुग अंध-विश्वास, तंत्र-मंत्र, पूजा-अनुष्ठान और नाना मत-वादों का युग था। उस जमाने के लोग अल्पशिक्षित थे और उन्हें कुछ उसी प्रकार के साहित्य की अपेक्षा थी, जो अभिजात और लोक-साहित्य के बीच की वस्तु जान पड़े और अपने इस अर्धपरिनिष्ठित रूप में उनका अनुरंजन कर सके। मध्ययुगीन सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि जायसी ने पद्मावत में इसी लोकतत्त्व का आश्रय लेते हुए अपनी बात जनमानस तक पहुंचाई है। एक लोकप्रिय प्रेमकथा के माध्यम से सूफी मत की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति 'पद्मावत' को बेजोड़ बनाती है। इसमें अनेकानेक प्रथाएं, परंपराएं, रीति-रिवाज, आचार-विचार और लौकिक मान्यताएं समाविष्ट हो गई हैं, जो इसे लोक-विश्वास के समीप ले जाती है।

लोक-साहित्य की तुलनात्मक पृष्ठभूमि के अभाव में इस साहित्य का अध्ययन अधूरा रह जाता है। मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति-साहित्य के संबंध में यहां आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक मंतव्य उल्लेखनीय है—''निर्गुण भाव से भजन करने वाले भक्तों की वाणियों के अध्ययन के लिए शास्त्र बहुत कम सहायक है। अब तक इनके अध्ययन के लिए जो सामग्री व्यवहृत होती आ रही है, वह पर्याप्त नहीं है। हमें ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस प्रकार की सामाजिक अवस्थाओं के भीतर भक्ति आंदोलन शुरू हुआ था। इस बात को जानने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन लोकगीत, लोककथानक और लोकोक्तियां हैं और उतने ही महत्त्वपूर्ण विषय हैं—भिन्न-भिन्न जातियों और संप्रदायों की रीति-नीति, पूजा पद्धति और अनुष्ठानों तथा आचारों की जानकारी।''[1] लगभग सभी सूफी कवियों ने कथा का चयन, प्रचलित लोक कथाओं से किया है। पद्मावत की मुख्य कथा का आधार इतिहासाश्रित कम, लोक-कथा के अधिक निकट है। रत्नसेन, पद्मावती और अलाउद्दीन जैसे दो-चार नामों और अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़गढ़ पर किए गए लोक-प्रसिद्ध आक्रमण को छोड़कर इस कथा में किसी अन्य ऐतिहासिक तथ्य को प्रामाणिक रूप से ढूंढ सकना बड़ा कठिन है। इस देश के कवियों ने इतिहास-प्रसिद्ध पात्रों को अपनी रचना का आधार बनाया है तो उनके सम्मुख कवि-कल्पना का पथ काफी प्रशस्त रहा है। परिणामस्वरूप वे पात्र या तो देवत्व की भूमिका में प्रतिष्ठित हो गए हैं या लौकिक कथा-नायकों के रोमानी प्रतीक बन गए हैं।[2] इस दृष्टि से 'पद्मावत' की कथा पौराणिक देवताओं की कहानी तो नहीं बन पाई है। लेकिन उसे लोक-प्रचलित कथा-कहानियों से भिन्न नहीं माना जा सकता।

संपूर्ण उत्तरी भारत में पद्मावती की कथा कई रूपों में प्रचलित रही है। इनमें तीन रूप विशेष हैं—

1. पद्मिनी-जौहर की कहानी
2. गोरा-बादल की कहानी
3. पद्मिनी और हीरामन सुआ की कहानी

इनमें प्रथम दो कहानियां इतिहास का विकृत रूप हैं और तीसरी कहानी एक परंपरागत लोक कथा है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि जायसी पद्मावती कथा के इन विविध लोक प्रचलित रूपों से प्रचलित थे। उनके 'पद्मावत' में ये तीनों ही खंड-कथाएं एक सूत्र में पिरोई हुई हैं और उन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है।

इसमें लोक तत्त्व का अनूठा मिश्रण रामकथा के रूप में भी है। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने इसे जायसी-रामायण का नाम देते हुए कहा है—''यह रामायण, सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी के परमोदात्त मानस में रचे-पचे भारतीय लोकतादात्म्य का दिग्दर्शन कराती है। 'पद्मावत' महाकाव्य के नाना खंडों में आए रामकथा प्रसंगों के सम्यगनुशीलन से इस बात की पूरी परख हो जाती है कि जायसी भारतीय जनमानस के बिल्कुल सन्निकट है। जायसी की रामकथा में जन सामान्य के स्तर पर सुनी-सुनाई रामकथा की प्रतिष्ठापना लक्षित होती है। लोक प्रचलित

राम कथा का संग्रह कर उन्होंने उसे अपने अमर महाकाव्य में संदर्भानुसार प्रतिष्ठित किया है।''[3] पद्मावत में अनेक स्थलों पर रामकथा के विविध प्रसंगों का समाहार इसे अप्रतिम बना देता है। यथा नख-शिख खंड में सुआ हीरामन, पदमावती की बरौनियों का वर्णन इन शब्दों में करता है–

''जुरी राम रावन कै सैना
बीच समुद्र भए दुई नैना।''[4]

बरौनियों के प्रति सम्मुखता ऐसी बन पड़ी है, मानो राम और रावण की सेनाएं आमने सामने खड़ी हैं।

प्रेमखंड में पद्मावती के नखशिख पर्यंत व्याप्त अनिंद्य सौंदर्य का वर्णन सुन प्रेमाभिभूत राजा रत्नसेन मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छित राजा की दशा कैसी है? लक्ष्मण जैसी। रोग भयंकर है, औषध उपलब्ध नहीं। उपचार कैसे हो, विकट समस्या है। राम यहां उपस्थित नहीं हैं। हनुमान भी बहुत दूर हैं। संजीवनी बूटी लाए कौन?–

''राजहिं आहि लशन कै करा।।
सकति बान मोहा है परा।।
नहिं सो राम हनिवँत बड़ि दूरी।
को लेइ आव सजीवन मूरी।।''[5]

जोगी खंड में जब पद्मावती के प्रेम में राजा जोगी हो जाता है। वह प्रेमोत्ताप में संतप्त है उसकी परणीता रानी नागमती उसके साथ जोगिनी बनकर चलने के लिए हठ करती है– जहां राम रहेंगे, वहीं सीता रहेगी। राम और सीता विलग नहीं रह सकते–

''तुम्ह अस बिछुरै पीउ पिरीता।
जहंवां राम तहां संग सीता।।''[6]

रामकथा के इन प्रसंगों को चित्रित कर जायसी लोक तत्त्व से ही जुड़े हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि मानस की रचना से पूर्व लोकमानस में यह कथा कितनी प्रचलित थी। वस्तुतः निर्गुण भक्ति साहित्य के अंतर्गत सूफियों के प्रेमाख्यानकों का मूल स्रोत इस देश की पारंपरिक लोक कहानियां रही हैं। जायसी ने पद्मावत में कतिपय अन्य प्रेम कथानकों की ओर भी संकेत किया है–

''बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला।
तू जोगी कित आहि अकेला।
विक्रम धंसा प्रेम कै बारा।
सपनावति कहं गएउ पतारा।
मधूपाछ मुगुधावति लागी।
गगनपूर होइगा बैरागी।
राजकुंवर कंचनपुर गयउ।
मिरिगाबती कहं जोगी भएऊ।
साध कुंवर खंडावत जोगू।
मधुमालति कर कीन्ह बियोगू।
प्रेमाबति कहं सुर सर साधा।
उषा लागि अनिरुद्ध बर बांधा।।''[7]

यहां स्पष्ट रूप से सपनावती, मुगुधावती, मिरिगावती, मधुमालती और प्रेमावती का नामोल्लेख किया गया है। जिस संदर्भ में दृष्टांत स्वरूप इन नामों का उल्लेख हुआ है, उसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये नाम प्रेम कथाओं की नायिकाओं के हैं और इन नामों से संबद्ध प्रेम कहानियां जायसी के समय में काफी लोक प्रचलित रही होंगी।

कथानक-रूढ़ियां–लोक कथाओं में बार-बार प्रयुक्त होने वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारों को कथानक रूढ़ि कहा जाता है। यह अंग्रेजी के 'फिक्शन मोटिफ' का पर्याय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने हिंदी साहित्य का आदिकाल में इसे 'अभिप्राय' कहा है। उनके शब्दों में हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे 'अभिप्राय' बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गए हैं।[8]

पद्मावत की खूबी इस बात में है कि कथा-वस्तु, कथा रूप और कथानक रूढ़ियां सभी इसमें अकृत्रिम रूप में समाहित हो गए हैं। लोकगाथा को अक्षुण्ण बनाए रखने में इसका बहुत बड़ा योगदान है। लोक कथाओं में प्राकृतिक और अतिमानवीय शक्तियां पर्याप्त मात्रा में देखी जाती हैं। पद्मावत में पक्षी (तोता–हीरामन) का बातचीत करना और रत्नसेन को गुरु के रूप में मार्गदर्शन करना अनहोनी प्रतीत नहीं होता क्योंकि लोककथाओं में पशु-पक्षियों को मानव की तरह वर्णित करना आम बात मानी गई है। लोक कथाओं का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए मिल्टन रूगफ कहते हैं कि इनमें ''कालीनों को उड़ना चाहिए, पंछियों को भविष्यवाणी करनी चाहिए, मेजपोश को भोजन प्रस्तुत करना चाहिए, झोले में हवा बंद रहे, आईना सच्ची बात बतला दे, सेब और कंघियों में जादुई शक्ति हो और बत्तख सोने का अंडा दे, मृत मनुष्य जीवित हो जाए, तीन बार उच्चारित शब्द मंत्र बन जाए, दीपक प्रेत को बुला दे और प्रेत मनचाही वस्तुएं प्रस्तुत करने लगे।''[9] लोक कहानियों के कुछ अन्य अभिप्रायों के रूप में घोड़े का मार्ग भूल जाना, राजकुमार का किसी निर्जन स्थान में पहुंचना, किसी राजकुमारी से साक्षात्कार और उससे प्रेम, स्वप्न द्वारा भावी दुर्घटनाओं की सूचना मिलना आदि अन्य बातें भी ली जा सकती हैं। इस संदर्भ में पद्मावत में अनेक प्रसंग वर्णित हैं। जैसे–

1. पद्मावती का रात-दिन हीरामन (सुआ) से अपने विवाह के संबंध में बात करना और सुए का कहना कि यदि कहो तो देश-देशांतर में फिरकर तुम्हारे योग्य वर ढूंढूं। बाद में रत्नसेन को पद्मावती के रूप का बखान करना। एक अन्य प्रसंग में–

2. जब रत्नसेन को बांधकर सूली देने की तैयारी की जाती है, तब महादेव और पार्वती का भाट-भाटिनी का रूप धरकर वहां पहुंचना।

3. गंधर्वसेन की सेना के हाथियों का समूह जब आगे बढ़ता है, तब हनुमान जी अपनी लंबी पूंछ में सबको लपेटकर आकाश में फेंक देते हैं।

4. साक्षात् शिव का युद्ध स्थल में प्रकट होना।

5. फिर नागमती की वियोग दशा में आधी रात को एक पक्षी का उसके दुःख का कारण पूछना। पक्षी का नागमती का संदेशा लेकर सिंहल द्वीप पहुंचना।

6. समुद्र का याचक का रूप धरकर रत्नसेन के सम्मुख दान मांगने के लिए आना।

7. राक्षस का सब जहाजों को एक भयंकर समुद्र में ले जाना।

8. लक्ष्मी द्वारा मृत साथियों को अमृत से जिलाना।

कथानक रूढ़ियां मूलतः लोक साहित्य और मुख्यतः लोक कथाओं की देन है। ऐसी रूढ़ियां कम ही मिलेंगी, जिनकी परंपराओं का लोक कथाओं से कोई संबंध न हो। कथानक रूढ़ियों के आदिस्रोत के रूप में नाना प्रकार के लोकाचारों, लौकिक विश्वासों और लोक चिंता द्वारा उत्पन्न आश्चर्यजनक कल्पनाओं को भी स्वीकार किया जा सकता है। इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि कथा-कहानियों में आवृत्ति पाने वाले ये 'व्यापक विचार' 'लोक' की विविध परंपराओं से प्रकाशित होने के पश्चात् ही शिष्ट या अभिजात साहित्य में ग्रहण किए जाते हैं।

लोकभाषा—जायसी की भाषा ठेठ ग्रामीण अवधी है। उसमें पंडिताऊपन के लिए कोई स्थान नहीं है। ठेठ बोली भाषा का मिजाज पाठकों पर जादू-का सा असर करता है और पढ़ने वाला सहज प्रवाह में बहता चला जाता है। अपनी काव्य-भाषा पर उन्हें पूरा यकीन है। इसीलिए पद्मावत के उपसंहार खंड में वे कहते हैं—

''केइं न जगत जस बेचा
केइं न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी
हस सँवरे दुइ बोल।''[10]

पद्मावत एक सशक्त और सफल कृति बनी है तो भाषा के कारण। लोक कथा की प्रस्तुति के लिए लोक भाषा का चयन उपयुक्त है। भाषा की सहजता और मिठास जायसी की प्रशंसा में दो बोल कहने के लिए विवश जरूर कर देते हैं। साथ ही उन्हें अन्य सूफी कवियों से अलग भी लाकर खड़ा कर देती है। उनकी रचना की प्राण-शक्ति इसी भाषा में छिपी हुई है। अधिकांश सूफी कवियों ने चौपाई का उपयोग किया है। उनके यहां इस छंद ने लोकभाषा में ढलकर अपनी सहजता अक्षुण्ण रखी है। ठेठ ग्रामीण अवधी के शब्द, लोकोक्तियों और मुहावरों के समुचित संयोग से सूफियों के प्रेमाख्यान, लोक-प्रचलित कथा-गीतों से बहुत भिन्न नहीं हो सके हैं और उनमें प्रयुक्त दोहा तथा चौपाई छंद, लोकगीतों की सहज सांगितिकता के बहुत निकट हैं—

''कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई।
रकत आंसु घुंघची बन बोई।।
भई करमुखी नैन तन राती।
को सेराव बिरहा दुख ताती।।
जहं जहं ठाढ़ि होइ बनवासी।
तहं तहं होई घुंघचि कै रासी।
बूंद-बूंद महं जानहुं जीऊ।
गुंजा गूंजि करै पिउ पीऊ।।
तेहि दुख भए परास निपाते।
लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।
राते बिंब भी जितेहि लोहू।
पखर पाक फाट हिय गोहूं।।
देखौं जहां होइ सोइ राता।
जहां सो रतन कहै को बात।।
नहिं पावस ओहि देसरा,
नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा,
जेहि सुनि आपै कंत।।''[11]

जायसी और तुलसी द्वारा लिखित चौपाइयों में यह अंतर है कि जहां जायसी ने लोकछंद को लोकभाषा में ही बांधा है। इसके विपरीत तुलसी ने अभिजात भाषा या तत्सम शब्दों के प्रयोगाधिक्य से उस छंद की लोकरूपता को आच्छादित कर दिया है। तुलसी की अपेक्षा जायसी की अर्धालियां अधिक सहज और स्वाभाविक जान पड़ती हैं। इसका मूल कारण यही है कि चौपाई एक लोकप्रिय छंद है और जायसी ने उसे लोकभाषा में ढालकर उसके लौकिक स्वरूप की रक्षा की है।

मुहावरे—जायसी के पद्मावत में तत्कालीन लोक समाज में प्रचलित मुहावरों का समावेश अत्यंत स्वाभाविक रूप से हुआ है। पद्मावत में प्रयुक्त मुहावरें दृष्टव्य हैं—

1. दूध-पानि सब करै निनारा।
2. पिता हमार न आंख लगावहिं।
3. जिउ लै उड़ा ताकि बन ढांखा।
4. आइ बात ओहि आगे चली।
5. हिये लोन अस लाग।
6. अस बड़ बोल जीभ मुख छोटे।
7. जेइ तिल देखि सो तिल-तिल जरा।
8. तुम राजा जेई घर पोई।
9. देखै किछु न आग नहिं पानी।
10. राजै दीन्ह कटक कहं बीरा
11 तस ए दुवौ जीउ पर खेलहिं।
12. राघव बिजुरी मारा।
13. परबत उड़हिं सूर के फूंके।
14. नमक दिये होइ लोन बिलाई।
15. पिय बिनु भइ कौड़ी बर बारी।

इन पंक्तियों में क्रमशः दूध और पानी अलग कर देना, आंख न लगाना, प्राण लेकर उड़ना या भागना, बात चलना, नमक लगना, छोटे मुंह बड़ी बात, तिल-तिल जलना, पकी-पकाई खाना, आग-पानी न देखना, बीड़ा देना, प्राण पर खेलना, बिजली मार जाना, फूंक से पहाड़ उड़ाना, नमक की तरह बिला जाना या गलना और कौड़ी के मोल हो जाना आदि प्रयोग स्पष्ट रूप से लोक-प्रचलित मुहावरे हैं। यदि हिंदी के प्रेमाख्यानकों में प्रयुक्त समस्त मुहावरों की एक सूची तैयार की जाए तो वह अवधी के एक आदर्श मुहावरा कोश के लिए आधार ग्रंथ हो सकती है।

कहावतें—कहावतों का प्रचुर प्रयोग पद्मावत में हुआ है। उदाहरण के लिए पद्मावत का यह दोहा विचारणीय है—

''माथे नहिं बैसारिय
जौ सुठि सुआ सलोन।
कान टुटैं जेहि पहिरे का
लेइ करब सो सोन।''[12]

दूसरी पंक्ति में प्रचलित कहावत का छंदोबद्ध रूप है। यह कहावत लोक-कंठ में निम्नलिखित रूप से प्रचलित है—

''ओहि सोना पर फाट परै
जाके पहिरे कान टुटै।।''

लोकोक्तियों या कहावतों के प्रयोग से रचना की प्रभावोत्पादकता द्विगुणित हुई है। पद्मावत में प्रयुक्त अन्य कहावतें इस प्रकार हैं—

1. मेटि न जाइ लिखी जस होनी।
2. सत्रु अहै जो करिया, कबहुं सो बोरै नाव।
3. कौन पानि जेहि पौन न मिला।
4. लोनी सोइ कंत जेहि चहै।
5. निकसैं घिउ न बिना दधि मथे।
6. जहवां राम तहां संग सीता।
7. फूल सोइ जो महेसुर चढ़ै।
8. साहस जहां सिद्धि तह होई।
9. नग कर मरम सो जड़िया जाना।
10. रोगिया की को चालै वैदहि जहां उपास।
11. दरब रहै भुइं दिपै लिलारा।
12. सोइ सिंगार कंत जो चहा।
13. जहं वीरा तहं चून है, पान सोपारी काथ।
14. पाहन कर रिपु पाहन हीरा।
15. लोक पखान पुरुष कर बोला।
16. छोड़ी राम अयोध्या, जो भावै सो लेव।

इस प्रकार की उक्तियां लोकभाषा की स्थायी निधि है। निष्कर्षतः पद्मावत का वैशिष्ट्य उसके लोक-परक गुणों के कारण है। लोक साहित्य की परिधि में आनेवाले सभी तत्त्वों का समाहार जायसी ने अत्यंत स्वाभाविक एवं सरल ढंग से किया है। जायसी ने लोक में प्रचलित कथा को चुना और उसे अपने अनुरूप गढ़ लिया। ठेठ अवधी भाषा में रचित पद्मावत में ग्रामीण रूप की प्रधानता, सरलता, श्रुति मधुरता और लालित्य हैं। पद्मावत की काव्य कथा में कथानक रूढ़ियां (फिक्शन मोटिफ), लोकप्रचलित गीत शैली, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग उसको अधिक प्राणवान और जीवंत बना देता है।

संदर्भ—

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म साधना, इलाहाबाद, 1952, पृ. 94
2. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य, दिल्ली 1952, पृ. 68-71
3. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी—पद्मावत में रामकथा का स्वरूप, सम्मेलन पत्रिका—भाग 96 : संख्या—4, पृ. 84
4. सं. आ. रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, नख-शिख-खंड, 10/6, पृ. 226
5. वही, प्रेम खंड, 11/2, पृ. 233
6. वही, जोगी खंड, 12/6, पृ. 238
7. वही, राजा-गढ़-छेका खंड, 23/17, पृ. 280
8. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी-साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना 1952, पृ. 74
9. मिल्टन रूगफ : ए हारवेस्ट आव वर्ल्ड फोकटेल्स, यू.एस.ए., 1949, पृ. 16
10. सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथवली, पद्मावत्, विउपसंहार/पृ. 462
11. सं. आ. रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, नागमती-वियोग खंड, 30/19, पृ. 332
12. वही, नागमति सुआ संवाद खंड, 8/5, पृ. 220

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज,
नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

लौकिकालौकिक साधक : मलिक मुहम्मद 'जायसी'

डॉ. कर्रि. सुधा

रवि किरण से कवि मन महान् शक्तिमान है। कोमल कलम हथियार के सहारे कवि काल्पनिक विश्वांतराल में विमुक्त विचरण करता है, साथ-साथ सहृदय पाठक को भी घुमाता फिराता है। अपने मनोबल से तादात्मय की संस्थापना करता है। यह कार्य केवल ईश्वरीय कृपा से प्राप्त जन्मजात 'काव्यात्मक प्रतिभा' से ही साध्य हो सकता है। जायसी इस ईश्वरीय संपत्ति के वारिस हैं। इनका मन प्रेम की निधि है। वे अपने इस ज्ञान एवं प्रेम की विरासत संपत्ति की वृद्धि करके भावी पीढ़ी तक पहुंचाने के प्रयास में सफल रहे। परंपरागत भारतीय लौकिक प्रेमकथाओं को अरबी फारसी की मसनवी शैली से रंगाकर अलौकिक धरातल पर नवरंग का सुरंगीन रंगोली का रूप दिया।

कविवर जायसी तत्कालीन जनमानस के प्रतिनिधि हैं, प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के शिरोमणि हैं। इनका जन्म सन् 1495 में हुआ। कहा जाता है कि जायसी कुरूप थे। इनके रूप को देखकर बादशाह शेरशाह ने हंसी मजाक उड़ा दी। तब उन्होंने कहा—''मो कहं, हंससि कि कोहरहिं।'' अर्थात् आप मुझ पर हंस रहे हैं मानो आप उस कुम्हार रूपी ईश्वर पर हंसी मजाक कर रहे हैं। इनके शब्दों को सुनकर बादशाह लज्जित हो गए। इन शब्दों में ही आध्यात्मिकता का आभास है। जनता की मान्यता है कि गुरु सैयद अशरफ पीर के प्रभाव से वे बैरागी बन गए। तत्पश्चात सुप्रसिद्ध सूफी फकीर शेख महीउद्दीन चिश्ती से सूफी धर्म को स्वीकार किया।

सूफी भक्ति पद्धति में 'इश्क मजाजी' अर्थात् 'सांसारिक प्रेम' के माध्यम से 'इश्क हकीकी' अर्थात् 'ईश्वरीय प्रेम' को साध्य करने की प्रक्रिया होती है। इनकी कविता लौकिक एवं अलौकिक भावनाओं का सुंदर सामंजस्य है। निर्गुण ब्रह्म साधना का प्रयास जायसी के काव्यों में उपलब्ध है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथकार डॉ. रमेश चंद्र शर्मा के अनुसार 'पद्मावत', 'सखरावट', 'चंपावत', 'इतरावत', 'मटकावत', 'खुर्बानामा', 'मोराईनामा', 'पोस्तीनामा', 'होलीनामा', 'आखिरी कलाम', 'घनावत', 'सोरठ', 'जपजी', 'मैनावत', 'मेखरावटनामा', 'कहारनामा', 'स्फुट-कविताएं', 'लहलावत', 'सकरानामा', 'मसलनमा', 'आखिरी कलाम', 'चित्रलेखा', 'कहरनामा', 'अखरावट' आदि इनके काव्य हैं। जायसी की रचनाएं आध्यात्मिक तत्त्व की व्यापकता से आपूरित हैं।

निर्गुण ब्रह्म की साधना में गुरु को पथ प्रदर्शक मानते हैं। इनकी दृष्टि में गुरु के बिना निर्गुण ब्रह्म का ज्ञाान प्राप्त करना असंभव है। गुरु के बिना कोई भी सही रास्ते पर नहीं जा पाता है। ''गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा, बिन गुरु निर्गुण पावा।'' इन्होंने गुरु की महिमा को स्वीकार किया है। गुरू-शिष्य संबंध बताते हुए जायसी कहते हैं कि ''गुरु विरह चिनगी जो मेला, जो सुलगाइ लोइ से चेला।'' सच्चा गुरु वही है जो शिष्य के हृदय में विरह की चिनगारी को डाल दे। सही शिष्य वही जो उसे सुलगा दे। जायसी गुरु को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं।

'जायसी 'प्रेम के पीर' माने जाते हैं। उनकी भक्ति की साधना केवल प्रेम ही है। प्रेम की पीड़ा का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं— ''प्रेम पहार कठिन विधि गढा, सो पैं चढे जो सिर पै चढा।'' प्रेम ही सर्वस्व है। बिना प्रेम के कुछ भी नहीं है। ''मनुष्य प्रेम भयो वैकुंठी, नाहिं त कहा छार एक मूठी।'' ''तीन लोक चौदह खंड, सब परै मोंहि सूझि, प्रेम छांडि नहिं लोन किछु, जौ देखा मन बूझि।'' इस सृष्टि में वे प्रेम को ही सबसे उत्तम साधन मानते हैं।

जायसी आत्मा को प्रिय और भगवान को प्रियतम मानते हैं। आत्मा रूपी रत्नसेन परमात्मा रूपी पद्मिनी को पाने के लिए कितने कष्टों को सहता है ये सब सूफी भक्ति में साधकों के समक्ष आने वाली कठिनाइयां हैं। इनका सामना करके उनको आगे बढ़ना है। 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' ग्रंथकार डॉ. रामकुमार वर्मा जी की मान्यता है कि आत्मा 'बन्दे' के रूप में प्रकट होती है और बन्दा इश्क—प्रेम के सूत्र में बंधकर 'हक' तक पहुंचाने का प्रयत्न करता है। जैसे किसी पथिक को अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कुछ मंजिलों या मुकामत को पार करना पड़ता है। वैसे ही आत्मा भी 'हक' तक पहुंचने के लिए चार मुकामत या मंजिलें पार करती है। जो सूफी मतानुसार 'शरीअत', 'तरीकत', 'हकीकत', 'मारिफत' कहलाती है। इनमें से अंतिम 'मारिफत' मुकाम पर पहुंचकर आत्मा 'वका'—जीवन प्राप्त करने के लिए फना होती है और फना होते ही 'अनहलक' अधिकारिणी हो जाती है अर्थात् परमात्मा से मिलने के लिए शुद्ध एवं पवित्र हो जाती है। अब उसे परमात्म-भाव प्राप्त करने से पहले तीन लोक और पार करने पड़ते हैं, जो आलमें-नासूत—सत्-भौतिक लोक, अलम मलकूत—चित-लोक और आलम-जबरूत—आनंद-लोक कहलाते हैं। इन्हें पार करके आत्मा अंतिम संसार 'आलमे-लाहूत'—माधुर्य-भाव में पहुंचती है, जहां आत्मा एवं परमात्मा का एकीकरण हो जाता है और 'अनहलक' की सिद्धि हो जाती है।

पद्मावत की कथा के अंत में राजा रत्नसेन

के साथ उसकी दोनों रानियां पद्मावती और नागमती सती हो जाती हैं। इस तरह राजा रत्नसेन रूपी आत्मा 'फना' होकर 'अनहलक' की अधिकारिणी होती हुई पद्मावत् रूपी 'हक' या 'परमात्मा' के साथ एकाकार हो जाती है। पद्मिनी में भी रत्नसेन के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। सूफियों की मान्यता है कि साधक की तड़प से ईश्वर भी उससे मिलने को तड़पता है। अंत में दोनों का मिलन होता है। आध्यात्मिकता के धरातल पर इन दोनों का मिलन आत्मा और परमात्मा का मिलन है। इनके काव्य की प्रतीकात्मकता ही इसका ज्वलंत प्रमाण है।

''चौदह भुवन जो तर उपराहीं।
ते सब मानुष के घट माहीं।।
तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।।
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा।
बिन गुरु जगत् को निर्गुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा।
बंचा सोई न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानु।
माया अलाउदीन सुलतानू।।
प्रेम कथा ऐहि भांति विचारहु।
बूझि लेहु जौ बूझे पाटहुं।।''

अर्थात् चौदह भुवन मानवीय शरीर में ही विद्यमान हैं। क्योंकि पिंड में ही ब्रह्मांड निहित हुआ है। पद्मावती ईश्वरीय शक्ति है, रत्नसेन की प्रियमिलन की व्याकुलता सूफियों की व्याकुलता की जैसी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की मान्यता यह है कि ''एक प्रबंध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबंधों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखाई पड़े, जायसी का मुख्य लक्ष्य है।'' जायसी की कविता संयोग और वियोग शृंगारों का सुंदर सम्मिलन है। संयोग शृंगार के अंतर्गत इन्होंने नायिका के नख-शिख का वर्णन किया है। षड्-ऋतु वर्णन, हाव-भाव चित्रण, रतिक्रीड़ा का अनुभव, इन सब का वर्णन मिलता है। लेकिन इसमें कहीं भी अश्लीलता का द्योतन नहीं होता है। पद्मावत महाकाव्य के 'मानसरोदक खंड' इसका ज्वलंत प्रमाण है। पद्मावती के अंगांग वर्णन में प्रायः एक-एक अंग का वर्णन किया गया है।

''सरवर तीर पद्मिनी आई।
खोंपा छोरि केस मोकराई।।
ससि मुख अंग मलै गिरिरानी।
नागन्ह झांपि लीन्ह अरघानी।।
ओनए मेघ परी जग छाहां।
ससि की सरन लीन्ह जनु राहां।।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा।
लै निसि नखत चांद परगसा।।
भूलि चकोर दृष्टि तहं लावा।
मेघ घटा महं चांद दिखावा।।
दसन दामिनी कोकिल भाषीं।
भौंहें धनुक गगन लै राखीं।
नैन खंजन दुई केलि करेहिं।
कुच नारंग मधुकर रस लेहीं।।
सरवर रूप विमोहा हिएं हिलोर करेइ।
पाय छुवै मकु पावौं तेहि मिसु लहरैं देइ।।''

पद्मावती के नेत्रों से सरोवर में कमलों की सृष्टि होते हुए, उसके निर्मल शरीर से सरोवर के निर्मल जल की सृष्टि होते हुए, उसके उज्ज्वल हास से सरोवर में हंसों की सृष्टि होते हुए तथा उसके दांतों की ज्योति से सरोवर में नग और हीरों की सृष्टि होते हुए दिखाया है। ऐसी अद्भुत सौंदर्यराशि यहां 'हक' का प्रतीक है। सूफीमत में ईश्वर एक है, इसका नाम 'हक' है, उसमें और आत्मा में कोई अंतर नहीं है। पद्मावती के नेत्रों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

''नयन जो देखा कंवल भा।
निर्मल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा,
दसन जोति नग हीर।''

जायसी की कविता में निर्गुण ब्रह्म के प्रति मार्मिक संकेत पाये जाते हैं। प्रकृति के कण-कण में जायसी भगवान को देखते हैं। अद्वैत सिद्धि के लिए हठयोग की साधना के बारे में बताते हुए जायसी कहते हैं कि दसवां द्वार ऊंचे पर है और उलट कर दृष्टि लगाने वाला ही उसे देख सकता है। सिंहलगढ़ को कवि ने ब्रह्म लोक का प्रतीक माना है। इसीलिए ''नित गढ बांचि चलै ससि सूरू'' तथा ''सो गढ देखु गगन में ऊंचा, नैनन्ह देखा कर न पहुंचा'' तथा ''चांद सुरुज और नखत तराई, ओहि डर आंतरिख फिरहिं सवाई'' आदि कहा है। हठयोग की साधना का संकेत देते हुए 'नौ पौरी', 'पांच कोटवार', 'दसवां द्वार', 'कुंड', 'सुरंग' आदि को प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया है।

''गर तस बांकि जैसी तोरी काया।
पुरुष देखु ओही की छाया।।
नौ पोरी तेहि गढ मझियारा।
ओ तहं फिरहिं पाँच कोटवारा।।
दसवां दुआर गुपुत एक ताका।
अगम चढाव बाट रउठि बांका।।
गढ तर कुंड सुरंग तेहि माहां।
तहं वह पंथ कहौं तोहि पाहां।।''

योग साधना प्रक्रिया का वर्णन करते हुए जायसी ने कई पदों की रचना की। योग साधना में बताया जाता है कि ''नासिकाग्र में दिख पड़ने वाली ज्योति पर दृष्टि लगाकर, भौहों को ऊपर उठाकर ध्यान लगाने वाला उन्मनी अवस्था को प्राप्त होता है। भ्रुवों के बीच शिव का स्थान है, वहां जाकर मन लीन हो जाता है। यह तुरीयावस्था है, यहां मृत्यु नहीं पहुंच सकती।'' इसे ही जायसी ने उलटकर दृष्टि लगाना कहा है।

''दसवें दुआर ताल के ले खा।
उलटि दुष्टि लाव सो देखा।।
जेहि दिन दसन जोति निरमई।
बहुतै जोति जोति ओहि भई।।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहं जहं विहंसि सुभावहिं हंसी।
तहं तहं छिटकि ज्योति परगसी।।''

साधक के हृदय में जब ईश्वर के प्रति भक्ति जगती है तब उसका व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। उसकी समस्त पीड़ाएं नष्ट होकर मन शांति और आनंद से भर जाता है। समस्त सृष्टि में वह ईश्वर को ही देखता है। हार खोजने के लिए पद्मावती मानसरोवर में उतरती है। तो सरोवर ने कहा कि मेरी जो इच्छा थी, वह आज पूर्ण हो पाई है, पारस-रूप में पद्मावती स्वयं मेरे पास आ गई है। उसके

चरणों का स्पर्श कर मैं पवित्र हो गया और उसके दर्शन से मैं भाग्यवान हो गया।

''कहा मानसर चाह से पाइ।
पारस रूप इहौं लगि आई।।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे।
पावा रूप-रूप के दरसे।।
मलय समीर बास तन आई।
भा सीतल, मैं तपनि बुझाई।।''

जायसी की भावनाएं अद्वैत भावना से भरे हुए है। 'आखिरी कलाम' की पंक्ति ''सबै जगत दरपन कर लेखा, आपन दरसन आपहि देखा।'' इनकी अद्वैत भावना का ज्वलंत उदाहरण है। यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद् में निहित 'अहं ब्रह्मास्मि' शब्द का समानार्थी शब्द 'सूफियों का 'अनहलक' शब्द है। जब हममें अहंकार की भावना मिट जाती है तब परमात्मा की प्राप्ति होती है। 'अखरावट' में परमात्मा की महानता का वर्णन करते हुए जायसी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासौ कहौं।'' जायसी अनंत आलोक की ओर संकेत करते हुए ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता की ओर लक्ष्य करते हैं। ''जो हेरा सो हिरान, मुहम्मद आपुहिं आप महं।'' इनकी दृष्टि में ईश्वर के सिवा इस सृष्टि में कोई भी नहीं है। सब कुछ भगवान ही है।

''आपहिं गुरु सो आपुहिं चेला।
आपुहिं सब औ आप अकेला।।''

भगवान ही गुरु हैं, भगवान ही शिष्य हैं। 'अखरावट' में जायसी 'सोहं' तत्त्व की महानता को बताते हैं—''सोहं सोहं बसि जो करई। सौ बूझै, से धीरज धरई।।'' आप ही कागज हैं, स्याही हैं, कृतिकार हैं, आप ही पाठक हैं आप ही पंडित हैं सब कुछ आप ही हैं—

''आपुहि कागद, आपु मसि,
आपहि लेखनहार।
आपुहि लिखनी आखर,
आपुहि पंडित अपार।''

जायसी भारतीय पद्धति के अनुसार सत्ता का ज्ञान कराने के लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों को लेकर बड़े ही प्रभावोत्पादक रूप उपस्थित करते हैं। पद्मावती के सौंदर्य वर्णन के साथ ही साथ अलौकिक सौंदर्य की यह झांकी प्रस्तुत करते हैं—कविवर जायसी इस लोक को नैहर और उस लोक को प्रियतम का लोक मानते हैं। पद्मावत के मानसरोदक खंड के माध्यम से—

''ऐ रानी मन देखु विचारी,
ऐ नैहर रहना दिन चारी।
जौ लागी अहै पिता वर राजू,
खेल लेहू जो खेलहूं आजू।।
मुक्ति सासुर हक गवमन काली,
कित हम कित यह सरवर पाली।।
कित आवत पुनि अपने हाथा।
कित मिलकें खेलव एक साथा।।''

श्रीमद्भागवत् निष्काम कर्म का समर्थन करता है। जायसी पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इनके अनुसार गृहस्थ होने पर भी पारिवारिक बंधनों से परे रहकर संन्यासी के रूप में रहने का उपदेश देते हैं। वह निस्वार्थ की भावना का समर्थन करते हुए 'अखरावट' में इस प्रकार कहते हैं—

''जोगि उदासी दास तिन्हहि,
न दुख और सुख हिया।
घर ही मांह उदास,
मुहमद सोई सराहिये।''

कुछ भक्त प्रभु से प्रेम करके मुक्त होते हैं पर कुछ ऐसे भक्त भी हैं जो प्रभु का, प्रभु के प्रेमियों का विरोध करके भी मुक्त हो जाते हैं। 'नारद' को जायसी ने शैतान माना है जो विरोधी रूप में भगवान का भक्त है। रामायण की शबरी और रावण दोनों ही अंत में मुक्ति के अधिकारी बने, ऐसा अनेक संतों का मत है—

''विधना के मारग हैं ते ते।
सरग नखत तन रोवां जेते।।
जेइ हेरा तेइ तहंवा पावा।
भा संतोष समुझि मन गावा।
तेहि महं पंथ कहौं भल गाईं।
जेहि दूनो जग छाज बडाई।
सो बड पंथ मुहम्मद केरा।
है निरमल कविलास बसेरा।
लिखि पुरान विधि पठवा सांचा।
भा परबांन, दुवौ जग बांचा।
सुनत ताहि नारद उठि भागै।
छूटै पाप पुन्नि पुनि लागै।''

जायसी का हृदय प्रेम का सागर है। इन्होंने ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेम को माध्यम के रूप में चुना है। क्योंकि प्रेम मानव जीवन का स्थिर मूल्य है। प्रेम से ही मानवता का विकास होता है। वह मानव को महामानव के रूप में परिवर्तित करता है। तभी भावनाएं लौकिक स्तर से अलौकिक स्तर की दिशा में अग्रेषित होती हैं। यही आध्यात्मिक भावना तथा चिंतन को पुष्टि देती है। फारसी और अरबी मसनवियों में कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना होने के कारण बीच-बीच में नायिका के प्रति बातें कही जाती हैं। इसके माध्यम से ईश्वरीय रूप झलकता है। जायसी की भावाभिव्यंजना लौकिक जीवन से संबंधित होने पर भी वह अलौकिकता के धरातल को छूता है। इन्होंने सुंदर प्रेम कथाओं के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का आभास देने का प्रयास किया है। सांसारिक व्यक्तियों के प्रेम की बाह्य चर्चा में ईश्वरीय प्रेम निहित है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इनकी कविता लौकिक एवं अलौकिक भावनाओं का सुंदर सामंजस्य है। जायसी के काव्य उनके सहृदय-लता से विकसित सुंदर, सुगंधित, सुकोमल भाव पुष्प हैं जो निर्गुण निराकार अनंत अगम्य अगोचर ईश्वर को श्रद्धा और प्रेम से समर्पित हैं।

**जी-11, रघु एन्क्लेव, मकान नं.–49-12-2,
ललिता नगर, विशाखापतनम्-530016 (आ.प्र.)**

हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर पद्मावत का विरह वर्णन

डॉ. शिखा रस्तौगी

हिंदी साहित्य में विभिन्न रसाभिव्यक्ति के साथ-साथ श्रृंगार रस का भी रस राजत्व रहा है। श्रृंगार रस के संयोग पक्ष के साथ वियोग का भी सर्वोच्च स्थान रहा है। इस विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन ही विरह व्यंजना रूप में होता है। इसका अवसर पूर्ण राग के अंतर्गत ही निकलता है। प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न प्रेम जब प्रिय और प्रिया के मिलन से पुष्ट नहीं होता तो वह दोनों को विरह की स्थिति में डाल देता है। यह विरह पुरुष और नारी दोनों में होता है।

जायसी अपने को उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के अंतर्गत आने वाले जायस नगर का बताते थे । इनका असली नाम 'मुहम्मद' था 'मलिक' इनकी वंश परंपरागत उपाधि रही है और जायस नामक स्थान से संबंधित होने के कारण वह 'जायसी' कहलाए इसलिए वह मलिक मुहम्मद जायसी नाम से प्रसिद्ध हुए। मुसलमान कवियों में यह सामान्य प्रवृत्ति रहती है कि वे अपनी जन्मभूमि को दृष्टि में रखकर ही अपना नाम रखते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने विरह का जितना विशद् व्यापक, उत्कृष्ट प्रतिपादन अपने सुप्रसिद्ध महाकाव्य प्रबंध काव्य 'पद्मावत' में किया है उतना हिंदी साहित्य साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता जिसमें स्वाभाविकता व मार्मिकता का समावेश है। वेदना का जितना निरीह, निरावरण, गम्भीर, मार्मिक, निर्मल एवं पावन रूप हमें जायसी के विरह में मिलता है उससे हिंदी साहित्य धन्य हो उठा है ।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने जिन प्राचीन प्रतियों के आधार पर 'पद्मावत' का संपादन किया उनमें निम्न पंक्तियां इनके 'जायस नगर' के होने को प्रकट करती है–

''जायस नगर धरम अस्थानु
वहां अबनि कवि कीन्ह बखानूं।''

मलिक मुहम्मद जायसी के पिता का नाम 'मलिक शेख ममरेज' था तथा गुरु का नाम 'फकीर शेख मोहिदी' (मुहीउद्दीन) था। इनका जन्मकाल इनके रचित काव्य 'आखरी कलाम' की निम्नलिखित पंक्तियों के अनुसार 966 हिजरी बैठता है–

''भौ अवतार मोर नौ सुदी ।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।।''

जायसी के नाम से अब तक 66 रचनाएं उपलब्ध हैं जिसमें मुख्यतः प्रकाशित हैं– आखरी कलाम, चित्ररेखा, अखरावट, पद्मावत, कहरनामा, सखरावत, मटकावत, चित्रावत, होलीनामा, पोस्तीनामा इत्यादि। मसनवी शैली पर लिखे 'पद्मावत' का वर्ण्य विषय 'रत्नसेन और पद्मावती' की प्रेमकथा है। इसमें पद्मावती और नागमती से संबंधित दो कथाएं एक साथ चलती हैं। राजा रत्नसेन के प्रवासी हो जाने पर रानी नागमती की विरह व्यथा का जैसा अश्रुपूर्ण, मार्मिक वर्णन जायसी ने किया है वह अप्रतिम है। बारहमासा पद्धति पर आधारित यह विरह गाथा हिंदी साहित्य में जायसी को अमर कर गई।

विरह को प्रेम का तप्त स्वर्ण एवं जीवन का चिर सहचर कहा जाता है। वेदना की अग्नि में प्रेम का वासनात्मक रूप गल जाता है और रह जाता है विशुद्ध एकांतिक प्रेम। विरह की अग्नि में तपा हुआ प्रेम एकांत, शुद्ध निर्मल होता है। उसमें प्रियतम के मिलन की उत्कंठा एवं प्रतीक्षा होती है इसलिए कवि समाज में विप्रलंभ श्रृंगार का महत्त्व अधिक होता है कवि समाज प्रेम के अश्रुमय स्वरूप पर अधिक रीझा हुआ है। इसी से प्रत्येक कवि ने विरह की आह्लादिनी शक्ति का आंचल सहर्ष पकड़ा। इसी विरह के लिए हरिवंश राय बच्चन ने कहा है–

''मैने पीड़ा को रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की।।''

जायसी मध्यकाल के उस समाज की देन थे जो भावना की सरिता में अवगाहन करता हुआ उसी में बह जाना अपने जीवन की चरम सिद्धि समझते थे। वे परम भावुक कवि हृदय सूफी थे। वह सिर से पांव तक सूफी साधक थे कुरान या शरीयत के वे उतने ही पाबंद थे जितने अन्य मुसलमान।

नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है वस्तुतः जायसी ने नागमती के विरह की व्यजंना इतने विशद और गांभीर्यपूर्ण ढंग से कराई है, कि पद्मावत का सारा विरह वर्णन उसी का अंग प्रतीत होता है। साहित्यिक कवि सुमित्रानंदन पंत ने कविता की निष्पत्ति विरह से मानते हुए कहा है–

''वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।।''

अन्य हिंदी साहित्य साधकों ने भी प्रेम की कसौटी विरह को माना है प्रेम को जीवंत रखने वाले विरह की महत्ता रामनरेश त्रिपाठी ने इस प्रकार बताई है–

''मिलन अंत है मधुर प्रेम,

और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की शाश्वत गति है,
और सुषुप्ति मिलन है।।''

जायसी का मानना है कि विरह प्रेम में उसी प्रकार निवास करता है जिस प्रकार 'मधुकोश' में 'मधु'—

''प्रेमहि मांह विरह रस रसा।
मैन के घर मधु अमृत बसा।।''

इसी तथ्य को सत्य मानते हुए उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी ने भी कहा है कि ''विरह में कितना उल्लास, कितनी शांति और कितना बल है। जो कभी एकांत में बैठकर किसी की स्मृति में, किसी के वियोग में, सिसक-सिसक कर और बिलख-बिलख नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है जिस पर सैकड़ो मुस्कानें न्यौछावर हैं। उस मीठी वेदना का आनंद उन्हीं से पूछो जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हंसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है मानो हम थक गए हों, पराभूत हो गए हों। परंतु विरह में रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है लगता है मानों दिल का बोझा हल्का हो गया हो।'' प्रेमचंद जी के इन्हीं शब्दों की सार्थकता हमें विभिन्न कवियों द्वारा रचित विरह-वर्णन में देखने को मिलती है। जायसी भी प्रेम की पीर के गायक है। प्रेम के वियोग पक्ष का उन्होंने जैसा मार्मिक चित्रण किया है वह अपूर्व है। पद्मावत महाकाव्य को हम विरह की दृष्टि से विशिष्ट मान सकते हैं। जायसी रत्नसेन में ही विरह की चिनगारी डलवाते हैं जो ज्वाला का रूप धारण करती है। यह विरह की चिनगारी ऐसे आलंबन के प्रति विरह ज्वाला को प्रज्ज्वलित कर देती है। रत्नसेन तोते के मुख से पद्मावती के रूप का वर्णन ही सुनता है और सुनते ही वह विरह की तीव्र ज्वाला से दग्ध होने लगता है—

''सुनि रवि नांऊ रतन भा राता,
पंडित फेर इहें कहु बाता।
तुइ सुरंग मूरति यह कही,
चित मंह लाभि होइ रही।''

राजा रत्नसेन का पद्मावती विषयक दारुण-वियोग एवं रानी नागमती का वियोग वर्णन हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है ।

जायसी का मन विप्रलंभ श्रृंगार की ओर अधिक उन्मुख रहा है। पद्मावत में जो वियोग दिखाई देता है वह इनकी अपनी मौलिकता है। विरह की दो प्रवृत्ति दिखायी देती है। पहली पुरुष की वियोग भावना राजा रत्नसेन की पद्मावती के प्रति व्याकुलता। दूसरा नागमती वियोग वर्णन में नागमती के प्रिय विषयक दारुण दुख दुःसह वियोग रूप दिखायी देता है। शास्त्रीय दृष्टि से वियोग श्रृगांर के पांच रूप माने गए हैं—1. अभिलाषा मूलक, 2. ईर्ष्यामूलक, 3. वियोगमूलक, 4. प्रवास मूलक, 5. शापमूलक। पद्मावत में नागमती की विरहावस्था प्रवासमूलक विरह को व्यक्त करती है तथा पद्मावती का विरह अभिलाषा मूलक विरह है। जायसी विरही कवि थे इनके विरह व्यंजन का स्वरूप भारतीय है जैसे भारतीय नारी अपने विरह का प्रर्दशन नहीं करती, गीली लकड़ी की तरह भीतर ही भीतर सुलगती रहती है, उसी प्रकार नागमती भी अपने वियोग में सुलगती रहती है—

''बादल पिउर जल उमगह नैना,
परगट दुअइ प्रेम के बेना।।''

प्रेम में संयोग का आनंद तो सभी ग्रहण करते है किंतु विरह की अग्नि में कोई-कोई झुलसता है वह सती धन्य है जो इसका स्वागत करती है—

''मुहम्मद सती सराहिए,
जरै जौ अस प्रिय लागि।''

विरह प्रिय के अभाव में ही उत्पन्न होता है। यही अभाव विरही व्यक्ति के दुख का कारण हो जाता है और इसमें एक प्रकार का असीम आनंद और संवेदना छिपी रहती है। कालिदास ने अपने काव्य 'मेघदूत' में लिखा है—''कामार्ताहि प्रकृति कृपणाष्ट चेतना चेतनेषु।''

पद्मावत में कामार्त नागमती के आंसुओं से समस्त प्रकृति गीली हो जाती है। विरह की तीव्र पीड़ा से तड़पती नागमती के आदर्श संदेश को देखें तो पता चलता है कि उसे वासना की लिप्सा नहीं, वह केवल दर्शन मात्र से संतुष्ट होने वाली नारी है—

''पद्मावती सो कहेहु विहंगम।
कंत लोभाई रहि करि संगम ।।
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा।
मो कहं हिस दुद दुख पूरा।।
हमंहु बिआही संग ओहिपिऊ।
आपुहि पाइ जानु पर जीऊ।।
मोहि भोग सौ काजन बारी।
सौह दिस्टि कै चाहत हारी।।''

भारतीय नारी की विशेषता है कि वह वासना, ऐश्वर्य नहीं चाहती प्रियतम का दर्शन मात्र उसकी कृपा दृष्टि ही पर्याप्त हैं।

हिंदी साहित्य में पशु-पक्षियों से प्रियतम का पता पूछने के उदाहरण तो मिलते हैं जैसे 'रामचरित मानस' में श्रीराम सीताहरण के बाद जंगल में खग-मृग से पूछते है—

''हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी,
तुम देखी सीता मृग नैनी ।।''

जबकि इसके विपरीत पशु-पक्षियों को सहानुभूति दिखाते कम देखा गया है। नागमती के विरह से व्याकुल हुआ एक विहंगम बोल उठता है—

''फिर-फिर रोव कोई नहीं डोला।
आधी रात विहंगम बोला।।
तू फिरि-फिरि दाहेसव पांखी।
केहि दुख रैनिन लावनि आंखी।।''

नागमती के विरह में प्रकृति डूब चुकी है। कोयल रो-रोकर रक्त के आंसू गिराती है, जिससे वृक्षों के पत्ते ताम्रवर्ण के हो गए हैं, मंजीठ भी भीग गया है और टेसू का वन भी लाल हो गया है—

''पंचम विरह पंच सर मारै।
रक्त रोह सगरौ वन ठारै ।।
बूडि उठे सब तरि वर पाता।
भीजि मंजीठ टेसू बन राता।''

जायसी ने विरह के जिस वेदनात्मक स्वरूप को अपनाया है वही नागमती के जीवन का

प्राणाधार है। विरह में विरही की स्थिति भाड़ में भुनते चने के समान होती है। वह कष्ट सहकर भी प्रिय को नही भूल पाता–

''लागिउ जरै, जस भारू।
पिफरी-पिफरी भुजेसि ताजिउ न बारू।।''

पद्मावत में विरह की दसों दशाओं का वर्णन है–1. अलिभाषा, 2. चिंता, 3. स्मृति, 4. गुण कथन, 5. उद्वेग, 6. प्रलाप, 7. उन्माद, 8. व्याधि, 9. जड़त, 10. मरण। प्रिय का स्मरण करते नागमती कहती है–

''चहुं खंड लागे अंधियारा।
जो घर नाहि कंत पियारा।।''

उद्वेगजन्य अवस्था–

''पिउ वियोग अस बाउर जीऊ।
पपिहा तस बोले पिऊ-पिऊ।।''

पद्मावत की नायिका कष्ट सहती हुई भी प्रिय के प्रति समर्पित है। वह अपने शरीर की राख प्रियतम के मार्ग में बिखेरने की अभिलाषा प्रकट करती है–

''यह तन जारौ के, कहौ कि पवन उडाउ।
मकु तेहि मारग उडि परै कंत धरै जहं पाइ।।''

प्रेम कितना भी दुखदाई यंत्रणामय क्यों न हो किंतु हृदय उससे अलग होना नहीं चाहता। उस यंत्रणा को सहने में भी एक आनंद है। प्रेमजन्य संताप से नागमती को विरह सहन करने की आदत पड़ गई है। महादेवी की तरह ''मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूं।'' नागमती की भी यही स्थिति है। मनुष्य के संपर्क में आने वाले उसी के द्वारा पालित-पोषित पौधे किस प्रकार उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी होते हैं, यह कुशलता के साथ जायसी ने दिखाया है। प्रकृति के संवेदनशील होने की कल्पना संस्कृत साहित्य में बहुतायत रूप से दिखाई देती है। जायसी ने मानव हृदय की सामान्य भाव-भूमि पर विरह की ऐसी निर्मल धारा प्रवाहित की है जिससे हृदय की संपूर्ण कलुषता धुल जाती है। जायसी के विरह-वर्णन की 'बारहमासा-वर्णन' की विशेषता है कि उन्होने एक ओर प्राकृतिक वस्तुओं तथा क्रिया-कलापों से प्रेमी हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का मिश्रण किया है। दूसरी ओर प्रकृति के रूप को मर्मस्पर्शी बना दिया है जैसे–

''पूस जाड़ थर-थर तन कांपा।
सुरूज जाइ लंका दिसी चांपा।।
बिरह बाढ़ दारून भा सीऊ।
कंपि कंपि भरौ, लेई हरि जीऊ।।
जेठ जरै जग चलै लुवारा।
उठहि बवंडर रहि अंगारा।
उग आगि और आंवै आंधि।
नैनन सूझ मेरौ दुख बांधे।।
चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा।
साजा विरह दुंद दल बाजा।।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जायसी के 'बारहमासा' वर्णन की प्रशंसा इस प्रकार करते है– ''नागमती के विरह वर्णन के अंर्तगत वह प्रसिद्ध 'बारहमासा' ही है जिसमें भिन्न-भिन्न महीनों में होने वाली आंतरिक मनोव्यथा का चित्रण मिलता है। इसमें वेदना का अत्यंत कोमल, निर्मल स्वरूप, हिंदू दांपत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुसार भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।'' जायसी के बारहमासे में विप्रलंभ श्रृंगार उद्दीपन रूप में है। इसमें दो बातें देखने को मिलती हैं–पहला प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन, दूसरा दुख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना। जायसी ने अपनी भावुकता का परिचय देते हुए बताया है कि रानी नागमती विरह-दशा में अपना रानीपन भूलकर हिंदू गृहणी की सामान्य भूमिका में आ जाती है। इसलिए वो प्रेम के उज्जवल प्रकाश से दीप्त हो उठी है। जायसी ने बताया है विरही भिन्न-भिन्न ऋतुओं की नाना वस्तुओं को किस प्रकार अपनी दशा की व्यंजना का साधन बनाते हैं–

''बरसै मद्या झकोरि-झकोरि।
मोर दुइ नैन चुवें जस ओरि।।
पुखा लाग, भूमि जल पूरी।
आक जवास भई तस भूरी।।''

वैशाख में विरहणी एक ओर सूखते तालों की दरारों को देखती है तो दूसरी ओर विदीर्ण होते हुए हृदय को, बरसात में वह एक ओर टपकते मकान को देखती है, तो दूसरी ओर अपने आंसुओं की धारा को। शिशिर में एक ओर सूखकर झड़े हुए पीले पत्तों को देखती है तो दूसरी ओर अपने पीले शरीर को। नागमती का विरह भी अपने चरम पर पहुंचकर सारे विश्व में व्याप्त विरह के साथ एक हो गया है। हर पक्षी राजा से उसके विरह का निवेदन निम्न पंक्तियों में करता है–

''हिया काट वह जबहिं कुहूकि
परे आंसू होइ होई सब लूकी''
××× ××× ×××
''चहुं खंड छिटकी परी वह आगी,
धरती जरत गगन कंह लागी।''

इनके वियोग वर्णन में नारी मनोविज्ञान के भी दर्शन होते है। एक नारी की वियोग एवं द्वेष से मिश्रित मनोव्यथा का जितना सुंदर रूप जायसी के पद्मावत में है वह हिंदी साहित्य में अन्य कहीं ढूंढने पर भी नहीं मिलता। यह अपनी विशदता, मर्मस्पर्शिता एवं कलात्मक अभिव्यंजना की दृष्टि से हिंदी साहित्य में अद्वितीय उपलब्धि है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके विरह की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है–''जायसी जैसा वियोग वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। जिस प्रकार सूर की गोपियों को विरह की धारा से पाठकों को स्नान करा देने का गौरव प्राप्त है, उसी प्रकार जायसी की नागमती भी पाठकों के हृदय में सहज ही व्यथा की संवेदना जगा देती है।'' इन सब तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए हम मुक्त कंठ से कह सकते हैं अथवा हृदय से मान सकते हैं कि जायसी के महाकाव्य पद्मावत में वर्णित विरह व्यंजना संपूर्ण हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। संपूर्ण हिंदी काव्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

तेजपाल सिंह त्यागी, कुशलपाल त्यागी मैमोरियल डिग्री कालेज, मुरादनगर, गाजियाबाद

भारतीय संस्कृति और लोकमानस में पगा 'पद्मावत' का बारहमासा

पुष्पपाल सिंह

भक्तिकालीन महाकाव्यों में 'पद्मावत' का अप्रतिम स्थान और अक्षुण्ण महत्त्व है। 'पद्मावत' का हृदय-स्थल 'नागमती-वियोग-वर्णन खंड' है जिसका प्रमुख प्रतिपाद्य बारहमासा ही है। जिस प्रकार 'पद्मावत' के परवर्ती महाकाव्यों में कितने ही स्थल ऐसे हैं जिनका बारंबार पाठ सहृदय पाठक को एक नए मोती मिल जाने की प्रतीति देता है, उसी प्रकार जायसी के 'पद्मावत' का बारहमासा अनेक पाठों के बाद भी एक नवीनता का बोध दे जाता है। जायसी के काव्य में भी यह उनकी काव्य-कला के चरम उत्कर्ष का निदर्शन है। उनकी लोकग्राह्य सरल-सरस भाषा, अलंकरण-शैली, स्वाभाविक रूप में प्रकृति का सहकार, उसमें मिथकीय चरित्रों के उदाहरण, वियोग शृंगार का संवेदनात्मक चित्रण, स्त्री-स्वभाव की सूक्ष्म पकड़—सभी कुछ बारहमासा में हृदयहारी रूप में प्रस्तुत हुआ है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस बारहमासा में कवि का हृदय जिस प्रकार लोक संस्कृति में डूबा हुआ है, वह इसे महारानी, पट्टमहिषी नागमती का वर्णन-भर नहीं रहने देता, सामान्य धरातल पर उतरी किसी भी वियोग-विथुरा के हृदय का दर्पण बना देता है। लोक-मानस तथा लोक-संस्कृति से संपृक्ति के कारण ही जायसी का बारहमासा इस देश की कृषि संस्कृति से भी अपनी संनिकटता स्थापित कर लेता है। भारतीय कृषक जिस प्रकार विभिन्न नक्षत्रों के उदय-अस्त के आधार पर मौसम का अनुमान करते थे (अब कृषकों की नई पीढ़ी भी उस सबसे वंचित हो गयी है), उसी प्रकार जायसी का कवि-मानस भी नक्षत्र विशेष के आने पर ऋतु-परिवर्तन की बात करता है। जायसी-पूर्व और परवर्ती काव्य में भी बारहमासा परंपरा रही है, भारतीय काव्य की रूढ़ि, षड्-ऋतु वर्णन का भी पालन जायसी ने 'पद्मावत' में किया है। षड्-ऋतु वर्णन में कोई विशेष मौलिकता का विशेष आकर्षण जायसी प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं किंतु उनका बारहमासा हिंदी काव्य में बेजोड़ बन पड़ा है। सूफी मत को बाहर से आया जान कर प्रायः ही यह मान लिया जाता रहा है कि उस काव्य में बहुत कुछ विदेशी है किंतु जायसी का मानस पूरी तरह भारतीय मानस है, 'जायस नगर धरम अस्थानु' में कवि कहीं बाहर से नहीं आया है, वह अवध की उसी मिट्टी का बना है, उसी में पला-बढ़ा और पूरी तरह रमा हुआ है, बारहमासा में उनका यही भारतीय मन अभिव्यक्ति पाता है। उनका बारहमासा हिंदी क्षेत्र के लोकगीतों में वर्णित बारहमासा से भी अपनी संनिकटता बनाए रखता है, नागमती की वही भोली बातें हैं, जो एक सहज ग्रामीणा की होती हैं।

नागमती वियोग खंड का प्रारंभ ही इस रूप में होता है कि नागमती को उसी मार्ग की ओर देख कर प्रिय की स्मृति तीव्रता से होती है, जिधर वह गया था। भोली ग्रामीणा की भांति उसमें सहज ही असूया भाव जागता है कि वह अवश्य ही किसी 'नागर नारि' ने उसे अपने प्रेम-पाश में बांध लिया होगा, उसी ने उसके प्रिय को 'मौसों हरा'। अपने साथ हुए इस छल का ध्यान करते हुए नागमती को सुखपूर्वक राज करते राजा बलि का नारायण द्वारा वामन रूप रख कर छला जाना, ब्राह्मण रूप धर इन्द्र के छल, अप्सरा द्वारा जलंधरनाथ योगी का छला जाना, आदि याद आते हैं। आगे श्रीकृष्ण और गोपियों का उदाहरण भी वे देते हैं, यहां कवि ने जिस रूप में भारतीय मिथक के विभिन्न पात्रों का स्मरण किया है, उससे प्रकट होता है कि उनकी कवि-चेतना कितने गहरे रूप में इन मिथकों से जुड़ी है। मिथक शास्त्र के पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों ने सिद्ध किया है कि जो कवि जितने गहरे रूप में अपनी संस्कृति में डूबा होगा, उतनी ही गहरी संपृक्ति उसकी उस संस्कृति के मिथकों से होगी। इसी रूप में उन्हें पपीहा जैसे पक्षी और भ्रमर तथा मालती पुष्प के पारंपरिक प्रेम की स्मृति होती है। इतना ही नहीं, हिंदी क्षेत्र के गीतों, विशेषतः प्रेम-गीतों, विरह-गीतों में 'हो रामा-ऽऽ' की जो टेक प्रायः आती है, उसकी भी प्रयोग जायसी कौशल के साथ करते हैं—

''पिउ-बियोग अस बाउर जीऊ।
पपिहा निति बोलै 'पिउ पिऊ'।।
अधिक काम दाधै सो रामा।
हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा।।''

बारहमासे में चित्रित नागमती की प्रेम-पीर का चित्रण जिस रूप में किया गया है उसमें मन और तन की पीर दोनों का समवेत चित्रण है, इस बात की प्रतीति कराता हुआ कि प्रेम में शरीर को नकारा नहीं जा सकता, प्रेम से काम और काम से प्रेम जुड़ा हुआ है, दोनों की युगपत् स्थिति का यहां स्पष्ट स्वीकार है। इस बारहमासे का प्रारंभ भारतीय काव्य परंपरा और लोकगीत परंपरा के अनुसार आषाढ़ मास से ही होता है। आषाढ़ मास

लगते ही धूल, धुआंरे, धौरे बादलों के दल के दल देख कर नागमती का हृदय अनेक प्रकार की आशंकाओं और भीतियों के बीच प्रिय के लिए तड़प उठता है, उसे लगता है विरह दल-बल सजा 'दुंद' मचाने के लिए अपनी सेना सजा कर आ गया है। लोक में 'दुंद मचाना' 'द्वंद्व' से आगे की स्थिति है। यदि 'दुंद' का बिंब ग्रहण करना हो तो जिस प्रकार कोई सांड फसल को तहस-नहस करता सींगों से जमीन को खोदता है, मिट्टी को उछालता है, वही भाव 'दुंद' का है। ऐसी ही दशा विरह ने नागमती की कर दी है, इसीलिए वह अपने को 'काम'—'मदन' से घिरा पाती है और कंत से इस दशा से उबारने का आकुल-व्याकुल निवेदन करती है। पुष्य नक्षत्र का उदय समय आसन्न है जिसमें भरपूर वर्षा होती तो उसे चिंता सताने लगती है कि उसके घर का छप्पर बिना पति के कौन छवाएगा—

''पुष्प नख्त सिर ऊपर आवा।
हौं बिनु नाह, मंदिर को छावा?
अद्रा लाग, लागि भुइं लेई।
मोहि बिनु पिउ को आदर देई।।''

भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों के प्रभाव को जिस रूप में किसान जानता है, उसी रूप में जायसी ग्रहण करते हैं, न केवल आषाढ़ में पुष्य तथा आद्रा नक्षत्रों का उल्लेख है, अपितु—सावन, भादो, क्वार—सभी मासों में उनके नक्षत्रों का वर्णन हुआ है, कार्तिक में शरच्चंद्र और राहु की चर्चा है। आषाढ़ आने पर राजमहिषी नागमती की घर का छप्पर छवाने की चिंता दिखा कर कवि ने उसे सामान्य भारतीय कृषक नारी के धरातल पर ला खड़ा कर दिया है। छप्पर छवाने का काम आसान नहीं होता था, कितने ही आदमियों—हाथों का श्रम उसमें लगता था, यह भाईचारा 'नाह'—पति के बिना संभव नहीं था, नागमती इसी चिंता में घुली जाती है। यहां कवि का मानस पूरी तरह लोक मानस हो उठा है, इसीलिए वह नागमती का रानीपन भुला कर उसे सामान्य ग्रामीणा की भांति चित्रित कर रहा है। नागमती का यह कथन—

''जिन्ह घर कंता ते सुखी,
तिन्ह गारौ औ गर्व कंत पिआरा बाहिरै,
हम सुख भूला सर्व।।''

यह भारतीय नारी की चिरंतन कामना और वस्तु-स्थिति का स्वीकार है, अनेक कवियों ने इस भावना को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति दी है। अहमद कवि याद आ रहे हैं—

''कहा करौं बैकुंठ लै, कल्प बृक्ष की छांह।
अहमद ढाक सुहावनै, जहं प्रीतम गलबाँह।।''

सावन मास आ गया है, पुनर्वसु नक्षत्र में घोर वर्षा हो रही है, फिर भी प्रिय को उसका ध्यान नहीं आया है। सावन में चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। प्रकृति ने हरी चूनर धारण का ली है—'हरियारि भूमि, कुसुंभी चोला' और हरियाली तीज से पहले ही सखियों ने प्रिय के साथ हिंडोले डलवा लिए हैं। प्रिय अभाव में नागमती का हृदय हिंडोले के समान कामनाओं की ऊंची पेंगे ले रहा है, विरह उसे झकझोर रहा है—झकझोरना पूरी तरह हिला देना है। वह भंभीरी कीट में समान इधर-उधर भिनभिनाती घूम रही है। वर्षा ऋतु में कच्चे घरों में भंभीरी प्रायः ही इधर-उधर घूमती रहती थी। कवि का लोकमानस इसीलिए इस उपमान को ग्रहण करता है। लोकगीतों में वर्षा ऋतु में आवागमन बाधित होने के कारण प्रिय के न आ पाने की स्थितियां अभिव्यक्ति पाती हैं—"अब तो भर गए, नद्दी नाले, कैसे आवैं आवन वारे", यही संकट नागमति के सामने खड़ा है—

''परबत समुद अगम बिच,
बीहड़ घन बन ढांख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह?
ना मोहि पांव न पांख।।''

नागमती की विवशता दूरस्थ प्रिय तक जाने में और भी बढ़ जाती है अगम समुद, सघन ढांख (ढाक) वाले बीहड़ जंगल उसके और प्रिय के बीच में खड़े हैं।

भादो (भाद्र मास) में गहन अंधियारी रात, बादलों की भयंकर गर्जना, मघा नक्षत्र में घनघोर वर्षा और उस वर्षा में छप्पर की औलातियों की तरह नागमती के दोनों नेत्रों का चूना, आदि इस प्रसंग को बहुत मार्मिक बना देते हैं। लोक मानस में भादों की गर्जना का भय इतना अधिक होता था कि इससे बचने के लिए गांवों (कस्बों) में स्त्रियां आठ-आठ दिन के लिए धागे बांधती थीं जिन्हें 'गरज' ही कहा जाता था। पूरी-पकवान बना कर इंद्र को मनाते हुए इन धागों को खोलने का अनुष्ठान किया जाता था। भादों के ऐसे ही अंधियारे में, सूने भवन में नागमती को सेज नागिन-सी दिखाई देती है जो उसे रह-रह कर ('फिरि फिरि डसा') डसती है, भादों की ऐसे ही भयावह ऋतु में नागमती की विरह ने ऐसी 'गत' बना दी है—

''चमक बीजु, घन गरजि तरासा।
बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरसै मघा झकोरि झकोरि।
मोर दुई नैन चुवैं जस ओरी।।''

राजमहल में रहने वाली नागमती जो छप्पर छवाने की चिंता में व्यथित थी, उसी के नेत्रों से छप्पर की औलातियां चूना दिखा कर कवि उसे पुनः पुनः सामान्य नारी का धरातल प्रदान करता है। पूर्वा नक्षत्र लग जाने पर जब पृथ्वी पर चारों ओर वर्षा का जल ही जल दिखाई देता है, वह आक-जवास के समान सूखती जा रही है। यह सामान्य नारी प्रेम की दृष्टि से वर्षा ऋतु के ऐसे सुहाने मौसम में काम-पीड़ा का भी अनुभव करती है, इसीलिए वह प्रिय से अपने यौवन में डूब कर छप्पर को संभालने वाली 'टेक' बनने की कातर प्रार्थना करती है।

क्वार (आश्विन) मास की सुहानी शारदीय ऋतु में प्रिय की स्मृति नागमती को और भी विह्वल कर देती है, विरह रूपी हाथी उसके तन को और भी रूंधता-खूंदता है, वह प्रिय से इससे उबारने की कातर प्रार्थना करती है। यहां कवि ने चित्रा, मीन, स्वाति आदि नक्षत्रों का उल्लेख कर परिवर्तित होती ऋतु के सौंदर्य के बीच नागमती की विरहावस्था को देखा है;

कांस (वह घास जिससे छप्पर, आदि छवाए और रस्सियां, बान, आदि बटे जाते हैं) बन में फूल गया है किंतु "कंत न फिरे, बिदेसहि भूले।" ध्यातव्य है कि यहां भी कवि को उस मास में खिलने वाले पुष्प-लताओं, आदि का ध्यान नहीं आता है, गांवों में खेत की बाड़ पर खड़ा कांस उनकी कवि-चेतना के स्मरण में आता है। पपीहा को पिय मिल गया, चातक के मुख में उसकी चिर अभीप्सित बूंद पड़ गई, समुद्र सीप और मोतियों से भर गया, सरोवरों में हंस पुनः क्रीड़ा करने लगे, सारस किल्लोल करने लगे, खंजन भी प्रकट हो गए किंतु इन सबके बीच नागमती अकेली है कि उसका प्रिय विदेश में ही भटक रहा है। प्रकृति में चारों ओर मिलन दशाएं देख कर नागमती की व्यथा और भी बढ़ जाती है।

'कार्तिक' की शारदीय रातें जब सबको शीतलता प्रदान कर रही हैं, वही नागमती के लिए दाहक बन जाती हैं—"जग सीतल, हौं बिरहै जारी!" चंद्रमा उसे राहु के समान ग्रसने वाला लगता है, भले ही जगत में कितना ही प्रकाश हो किंतु उसे 'चहुं खंड लागै अंधियारा' क्योंकि उसका प्रिय उसके पास नहीं है। कार्तिक में दिवाली पर्व की चारों ओर तैयारियां हैं, सखियां अंगों को विभिन्न मोड़ों, मुद्राओं के साथ झूमक (झूमर) गाते-गाते नाच रही हैं किंतु नागमती के लिए त्योहार के हर्ष-उछाह का कोई अर्थ नहीं रह गया है—

''सखि मानैं तिउहार सब गाइ, देवारि खेलि।
हौं का गावौ कंत बिनु, रही छार सिर भेलि।।''

प्रेमिका या परकीया की प्रीति में अधिक तीव्रता और संवेदना का चित्रण साहित्य में हुआ है किंतु जायसी की विशेषता यह है कि वे दांपत्य-प्रीति में 'कंत' को केंद्रित कर ही नागमती की विरह-दशा का मार्मिक चित्रण, विभिन्न मासों के प्राकृतिक परिवेश के बीच करते हैं। कार्तिक और उसके बाद जायसी नक्षत्रों के नाम नहीं लेते, केवल सूर्य और चंद्र की बात प्रसंगगर्भित रूप में करते हैं। अगहन में दिन छोटे हो कर रातें बड़ी हो जाती हैं, ये रातें नागमती से काटे नहीं कटतीं, वह विरह में दीपक की बाती की तरह तिल-तिल कर जल रही है। घर-घर में स्त्रियां विभिन्न रंगों में अपने चीर (साड़ी, धोती, आदि) रंग रही हैं किंतु नागमती का प्रिय कंत ('नाहू') तो उसका सारा श्रृंगार और रूप, सजने का सारा उत्साह ही ले गया किंतु वह आशा का क्षीण तंतु अभी भी थामे हुए है कि यदि उसका प्रिय आ सकता है। किंतु प्रिय इतना निठुर हो गया है कि उसे नागमती के 'दुख-दगध' का कोई ध्यान हो नहीं आता। इसी विरह-बिथुरा अवस्था में वह भौंरे और काग को अपना संदेश वाहक बना कर अत्यंत कातर निवेदन करती है—

''पिउ सौ कहेहु संदेसड़ा,
हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई,
तेहि क धुवां हम्ह लाग।।''

यद्यपि यहां दोहे की पंक्ति में फारसी की ऊहात्मक शैली का प्रभाव है, किंतु वह उसके विरह की चरम दशा को अभिव्यंजित करने में पूरी तरह सक्षम है। इसी प्रकार पूस मास के चित्रण में अंत में अपनी दशा को नागमती इसी रूप में अभिव्यक्ति करती है, उसमें भी फारसी की इसी ऊहात्मक शैली के दर्शन होते हैं किंतु यहां भी नायिका की चरम विरह-दशा को संप्रेषित करने में संवेदना में न्यूनता नहीं आती है—

''रक्त ढुरा मांसू गरा,
हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई,
पीउ समेटहि पंख।।''

पूस-माघ का जाड़ा लोकप्रसिद्ध है, हड्डियों तक को कंपा देने वाली ठंड जीवन-चर्या को सामान्य नहीं रहने देती है। प्रिय के सानिध्य से ही कठिन ऋतु से पार पाया जा सकता है, इसीलिए नागमती की पति को यह आर्त पुकार है—

''आइ सूर होइ तपु, रे नाहा।
तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा।।
एहि माह उपजै रसमूलू।
तू सो भौर, मोर जोवन फूलू।।
नैन चुनहिं जस महवट नीरू।
तोहि बिनु अंग लाग सर-चीरू।।
टप टप बूंद परहिं जस ओला।
बिरह पवन होइ मारै झोला।।''

(अंतिम दो पंक्तियों के बिंब को ग्रहण करना आज के पाठक के लिए किंचित् कठिन होगा क्योंकि अब न तो महावट, माघ में कई-कई दिन होने वाली वर्षा की झड़ी—लगती है और न ही तीव्र वायु 'झोला देती'—झकझोरती है, ग्लोबल वार्मिंग के निरंतर बढ़ते दुष्परिणाम से वर्षा का ऋतु चक्र बदला हुआ है, कभी-कभी अगहन और पूस बिना वर्षा के सूखे ही चले जाते हैं, इस वर्ष ऐसा ही हुआ)।

वर्षा भले ही न हो किंतु फागुन में भी जाड़ा कम नहीं हो पाता था 'चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा।" फागुन में वसंतागम का प्रारंभ हो जाता है, प्रकृति में वनस्पतियों का खिलना, सरसों का फूलना, आदि प्रारंभ हो जाता है, होली का पर्व इसी मास में आता है, स्त्रियां 'चांचर' (लोक नाच) नाचती हैं—अपने चारों ओर हर्षोल्लास की स्थितियां देख कर उसे अपनी विरह दशा और भी सालती है—'वनस्पति' के 'हिये हुलास' से उसे अपना दुख दुगुना सालता है। प्रिय को अपनी स्मृति कराने का एक ही उपाय उसके पास रह जाता है—

''यह तन जारौं छार कै,
कहौं कि 'पवन! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै,
कंत धरै जहं पाव।।

वसंत के प्रारंभ में यह स्थिति है तो चैत माह में वसंत आने पर तो समस्त प्रकृति के उल्लासपूर्ण वातावरण में मानो कामदेव उसे अपने पंच बाणों से बिद्ध कर रहा है। सहस्त्रों रूपों में फूली वनस्पति में भौंरे भी मालती (पुष्प) का स्मरण कर उन पर मंडराने आने लगे हैं किंतु नागमती के लिए—

''मोकहं फूल भए सब कांटे।
दिष्टि परत जस लागहि चांटै।।''

बसंत के ऐसे सुहाने समय भी नागमती का प्रिय घर नहीं लौटता और बैशाख की तप्त ऋतु आ जाती है। चारों ओर ग्रीष्म का प्रकोप है, चौआ, चीर, चंदन भी आग की तरह दाहक लगते हैं। उसकी विरह-उतप्त दशा भाड़ में पड़े अन्न के दानों जैसी है जो बार-बार उछल-उछल कर तप्त बालू में ही गिरते हैं, उससे निकल नहीं सकते–

''लागिउं जरै, जरै जस भारु।
फिर फिर भूंजेसि, तजेऊं न बारू।।''

बैशाख में सरोवरों का जल घट कर उनका हृदय-स्थान फट जाता है, टूक-टूक हो बिखर जाता है, यही मनोदशा उसकी है–ऐसे में उसका प्रिय ही अपनी दृष्टि के दौंगड़े (आषाढ़ की पहली वर्षा) से उसकी व्यथा शमन कर सकता है–

''सरवर-हिया घटत निति जाइ।
टूक-टूक होइ कै बिहराई।।
बिहरत हिया करहु पिउ! टेका।
दीढि दवंगरा मेरवहु एका।।''

उसे विश्वास है कि प्रिय की दृष्टि-दवंगरा से, टूक-टूक होता हृदय ठीक उसी प्रकार जुड़ जाएगा जिस प्रकार सरोवर का हृदय-तल जुड़ जाता है। जेठ माह में गरमी का ताप और भी भीषण तथा असह्य हो उठता है, प्रकृति के साथ नागमती भी विरह में दग्ध हो उठती है–

''चारिहु पवन झकोरै आगी।
लंका दाहि पलंका लागी।
दहि भइ साम नदी कालिंदी।
विरह क आगि कठिन अति मंदी।।
उठै आगि औ आवै आंधी।
नैन न सूझ मरौ दुःख बांधी।।
अधजर भउउ, मांसु तनु सूखा।
लागेउ विरह काल होइ भूखा।।''

जेठ-आषाढ़ के इस रूप में तपने पर पुनः नागमती को अपने छप्पर छवाने की चिंता सताने लगती है, अपने घर-मंदिर के उजाड़ होने पर वह पुनः उसकी दया-दृष्टि की कामना करती है जिससे उसका घर (-संसार) पुनः बस जाये–

''अबहु मया-दिस्टि करि,
नाह निठुर! घर आउ।
मंदिर उजार होत है,
नव कै आई बसाउ।।''

इसी प्रकार एक सांस में सहस्रों-सहस्रों दुखों का भार ढोते हुए रोते-रोते या कहें रोते-पीटते नागमती ने बारह मास काट ही दिए–'रोई गंवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक सांसा।।" उसे चिर प्रतीक्षा बनी हुई है कि वह कौन-सी घड़ी आएगी, जब प्रिय लौटेगा– ''कौनि सी घरी करै पिउ फेरा?" यह भी एक सामान्य नारी की अभिव्यक्ति-सी है 'वह कौन-सी घड़ी होगी', 'वह कौन-सी घड़ी थी।' वह प्रिय के आगे हाथ जोड़ कर और पांव पड़ कर कातर प्रार्थना करती है कि वह आ कर उस क्षार हुए प्रेम को पुनः जोड़ दे।

उसके सारे संदेसे व्यर्थ चले जाते हैं, सारी मान-मनुहार का प्रिय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस बारहमासे के अंत में सब कुछ कर देखने का प्रयत्न जब व्यर्थ सिद्ध होता दिखता है, तो नागमती में एक नैराश्य-भरा संतोष जगता है कि मैं सब कुछ करके तो देख चुकी, जो भाग्य में होगा, सो ठीक होगा, प्रिय को जब आना होगा तो आएगा–

''नहिं पावस, ओहि देसरा,
नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा,
जेहि सुनि आवै कंत।।''

इसमें एक प्रच्छन्न उपालंभ भी है कि वह प्रिय इतना निष्ठुर है कि न वर्षा ऋतु, न हेमंत (शीत), न बसंत ऋतु में उसे अपनी प्रिया की याद आयी और न कोयल तथा पपीहे की मधुर कातर ध्वनियों ने उसे अपनी प्रिया की सुधि लेने के लिए उत्प्रेरित किया! इस प्रकार जायसी कृत 'पद्मावत' का बारहमासा हिंदी प्रेम काव्य, विरह-काव्य की अमूल्य निधि है।

63, केसर बाग, पटियाला-147001 (पंजाब)

महाकवि जायसी का काव्य सौंदर्य

राधाकांत भारतीय

हिंदी साहित्य में प्रेममार्गी सूफी संत कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का नाम सबसे ऊंचा है। उन्होंने मध्ययुगीन भारत की सांस्कृतिक छवि को भावात्मक काव्य के द्वारा अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में प्रस्तुत किया है।

महाकवि जायसी मध्यकालीन भारत के ऐसे समय में थे, जिसे हिंदी साहित्य में 'भक्तिकाल' कहा जाता है। वह ऐसा युग था जबकि भारत, विशेषकर उत्तर भारत में धार्मिक अथवा सांप्रदायिक संघर्ष उजागर हो रहे थे। ऐसे समय में भी भक्तिकालीन कवियों ने सद्भाव और एकता की भावना को स्वर दिया, जो सराहनीय तथा वंदनीय है। यह भी सुखद संयोग है कि जायसी उसी प्रेममार्गी साहित्य धारा के कवि हैं, जिसके सभी रचनाकार उदारवादी मुसलमान हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं के कथानक भारत के हिंदू परिवारों में प्रचलित लोक कथाओं से लिया है। इस प्रकार इन रचनाकारों ने भारत की सामाजिक भावधारा को प्रभावित कर उसे उदार तथा व्यापक आयाम देने का सफल प्रयास किया है।

सूफी संतों की परंपरा मूल रूप से ईरान और अरब देशों से होकर भारत में आई। कवि मलिक मुहम्मद जायसी के पूर्वज भी अरब देश से यहां आकर उत्तर प्रदेश के जिला रायबरेली में जायस नामक ग्राम में बस गए थे। इनका जन्म अनुमान के अनुसार सन् 1464 तथा मृत्यु 1542 ई. में हुई थी। जायस गांव में पैदा होने की वजह से इनका नाम जायसी प्रसिद्ध हुआ। सूफी परंपरा के अनुसार जायसी ने अपने गुरु से दीक्षा ली थी। ऐसी मान्यता है कि कालपी वाले मोहिउद्दीन मेंहदी इनके मीर थे—जिन्होंने मलिक मुहम्मद जायसी को मानवता की सेवा भावना और साहित्य रचना का पाठ पढ़ाया था।

महाकवि जायसी की काव्यगत श्रेष्ठता के विषय में प्रसिद्ध समालोचक परमानंद श्रीवास्तव का कथन है—

''पद्मावत' प्रेम काव्य है और जायसी प्रेम की तन्मयता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उसमें प्रेम को ही सार वस्तु माना गया है। सूफी साधक विरह को ही प्रेम की कसौटी मानते आए थे। विरह में प्रेम की सच्चाई की परीक्षा होती है और अनुभव का प्रमाण भी मिल जाता है।''

पद्मावत में नायिका का सौंदर्य वर्णन भी अद्भुत है। इसमें परंपरागत उपमानों के साथ काव्य-चातुर्य भी है। केश-विन्यास के विवरण में उसकी सघनता, कालिमा, गंध और कोमलता का एक संगठित प्रयास है—

''भौंर केस वर मालती रानी,
बिसहर लुरै लेही अरधानी।
बेनी छोर झार जौ बारा,
ससा पतार होइ अंधियारा।
कोंपर कुटिल केस नग कारे,
लहरन्हि भरे भुअंग बैसारे।
बंधे जनौ मलयगिरि बासा,
सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा।।''

इसी प्रकार नायिका के अनुपम सौंदर्य की छटा से प्रकृति को भी प्रभावित होते हुए बतलाया गया है—

''बिगरना कुमुद देखि ससि रेखा,
भैं तहं ओप जहां जोइ देखा।
पावा रूप-रूप जस चाहा,
ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।।''

अपने लोकप्रिय महाकाव्य 'पद्मावत' में जायसी ने संप्रदाय तथा सामयिक समाज की संकुचित भावनाओं से ऊपर उठ कर मानवीय सौंदर्य भावना को चित्रित करने में सराहनीय सफलता प्राप्त की है। फारसी परंपरा के साथ ही मलिक मुहम्मद जायसी से संस्कृत तथा भारतीय लोकप्रिय उपमानों का यथायोग्य उपयोग कर काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया है।

प्रेम के निरूपण में कवि जायसी विरह वेदना को अधिक महत्त्व दिया करते हैं। उनकी विरह-व्यथा का एक मार्मिक प्रसंग देखिए—

''पिउ सो कहेहु संदेसड़ा,
हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहैं जरि मुई,
तेहिक धुवां हम लाग।।''

नायिका के विरह वर्णन के साथ ही, अतिशयोक्तिपूर्ण यह समयेण भावना भी उल्लेखनीय है—

''यह तन जारौं छार के,
औ कहुं कि पवन उड़ान।
मकु तेहि मारता गिर पड़े,
कंत धरै जहं पांव।।''

काव्य सौष्ठव के इन्हीं गुणों के कारण कवि जायसी और उनका काव्य कालजयी हो सका है। वृद्धावस्था में स्वयं जायसी ने अपनी काव्य रचना के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए फरमाया था—

''केई न जगत जस बेचा,
केइं न लीन्ह जस मोल,
जो यह पढ़ै कहानी हम,
संवरै दुई बोल।।''

यह दोहा जायस ग्राम में महाकवि के खंडहर बने मकान पर अब भी अंकित है, जिसे उनके वंशजों ने संभाल कर रखा है। स्मृति स्वरूप इस ओर जाने वाले रास्ते का नाम मलिक मुहम्मद रोड रख दिया गया है।

56, नागिन लेक, पीरागढ़ी, नई दिल्ली-110087

मानुष प्रेम के चितेरे

डॉ. सरला शुक्ल

मलिक मुहम्मद जायसी मध्यकालीन भक्ति साहित्य की प्रेममार्गी काव्य-धारा के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। रूप और प्रेम-संवेदना ही उनकी रचनाशीलता का वैशिष्ट्य है। इसी आधार पर उन्होंने भिन्न संस्कृतियों की मूलभूत एकता एवं मानवता का उच्चतम आदर्श स्थापित करने की चेष्टा की। जायसी ने संकीर्ण मतवाद से ऊपर उठकर विश्वात्मा का संदेश दिया और सभी धर्मों को ''विधना का मारग'' बताया। प्रेम उनका मूल मंत्र था, ईश्वरोपासना उनका लक्ष्य था। वे सच्चे अर्थों में सांस्कृतिक समन्वय के जन-कवि थे। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में जायसी-काव्य की आज विशेष प्रासंगिकता है।

आज इस अत्यंत संवेदनशील कवि को स्मरण करते हुए हम उसकी काव्य-पंक्ति ''जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह संवरै दुइ बोल'' को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं। जायसी के अनेक, लगभग 25 ग्रंथों की चर्चा विद्वान लेखक करते हैं किंतु उनमें से अब तक प्रकाश में आई रचनाओं में पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, महरोबाईसी, चित्ररेखा, मसलानामा और कान्हावत मुख्य हैं। सभी कृतियों में ईश्वरीय प्रेम, सांसारिक नश्वरता और लौकिक प्रेम के माध्यम से ही अलौकिक प्रेमानुभूति प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। कवि जायसी शेरशाह सूरी के समकालीन कवि थे। भारत में सूफी मत अपने निश्चित समन्वय सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सका एक ओर उसे कट्टरपंथियों मुल्ला मौलवियों के विरोध से मुक्ति मिली और दूसरी ओर उसे राज्य का विरोध भी लगभग न के बराबर झेलना पड़ा। भारत में प्रचलित अनेक साधना पद्धतियों का सुंदर समन्वय भी उनकी विचारधारा में उपलब्ध होता है। जायसी के मुख्य प्रबंध काव्य पद्मावत में काव्य सौंदर्य, सांस्कृतिक सामंजस्य के साथ ही आध्यात्मिक विचार-समन्वय भी अपूर्व है। सिंहल द्वीप, मानसरोदक खंड, नख-शिख वर्णन, नागमती वियोग खंड आदि में जहां एक ओर सूफी दर्शन का निरूपण है वहीं दूसरी ओर उपनिषद, हठयोग साधना एवं सहजयानी सिद्धों का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। पद्मावती का रूप विश्वव्यापी महाव्यापी ज्योति का स्वरूप है जिसके अनेक प्रतीक ब्रह्मांड में परिव्याप्त हैं। वैदिक दर्शन के अनुसार प्रकृति एक दर्पण है जिसमें चैतन्य ज्योति का आभास दिखाई पड़ता है। विश्व के सभी रूप उसी ज्योति के प्रतिबिंब हैं—''रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'' ऋग्वेद के इस सत्य का निरूपण मानसरोदक खंड में स्पष्ट दिखाई देता है—

''देखि एक कौतुक हौं रहा।
रहा अंतरपट पै नहिं अहा।।
सरवर एक देख में सोई।
रहा पानि और पान न होई।।
सरग आइ धरतीमहं छावा।
रहा धरती पै धरत न आवा।।''

वह सर्वत्र व्याप्त है पर बिरले ही उसे पहचान पाते हैं। इसी प्रकार अखरावट में कवि लिखता है कि इस जगत का हर रूप उसका प्रतिबिंब है। वह एक से अनेक होता है। फिर लीला संवरण कर सब में समाहित हो जाता है।

''गगरी सहस पचास,
जो कोउ पानी भीर धरै।
सूरज दिपै अकास,
मुहम्मद सब महं देखिये।।''

इश्क मजाजी से इश्क हकीकी तक, लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम तक कैसे पहुंचा जा सकता है इसे स्पष्ट करने के लिए यह दृष्टांत बहुत सरल है—लोक तक सीधी बात पहुंचाने के लिए दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाला थट—प्रतिबिंब कितना सहज है। यही कवि का कौशल भी है।

इसी प्रकार रूप-वर्णन करते समय पद्मावती के रूप सौंदर्य के उपमानों की छटा एवं व्यापकता परम रूप की ओर संकेत करती दिखाई देती है—

''जेहि दिन दसन जोति निरमई,
बहुतै जोति जोति ओहि भई।।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती,
रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहं जहं विहसि सुभावहिं हंसी,
तहं तहं छिटकि जोति परगसी।।
नयन जो देखा कंवल भा,
निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा,
दसन जोति नग हीर।।''

रूप और प्रेम का चिर संबंध हे। वह परमात्मा चिर सौंदर्यमय है। उसका रूप इस जगत में व्याप्त है। इस सृष्टि का कारण भी प्रेम ही है। प्रेम के वशीभूत हो परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। प्रेम और रूप का अनन्य संबंध

है। रूप से प्रेम की प्रेरणा मिलती है। संपूर्ण मध्यकालीन भक्ति साहित्य में रूप और प्रेम की आंख-मिचौली ही तो आकर्षण का केंद्र है। प्रेम या प्रेमाभक्ति की व्याख्या ''सा परानुरक्ति ईश्वरे'' से स्पष्ट की गई और रूप की सर्वग्राह्य परिभाषा ''क्षणे क्षणे यत्नवतां उपैति तदैव रूपं रमणीयातायाः'' से स्पष्ट करने की चेष्टा की गई। वैसे प्रेम की व्याख्या करना कठिन है इसीलिए इसे अनिर्वचनीय भी कहा गया है। प्रेम स्वतः सामान्य का विरोधीकरण है। हेवलाक एलिस ने अपने ग्रंथ 'साइकोलोजी ऑफ सेक्स' में रति और प्रीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—''प्रीति अथवा प्रेम का आधार मानसिक एवं हृदयपरक होता है तथा इसकी तीव्रता में एकरसता रहती है। काम की इंद्रियासक्ति का परिष्कार करके ही उसके स्थान पर प्रेम का मनोहर पुष्प विकसित किया जा सकता है।''

मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेम-साधना प्रेम को केंद्र मानकर चली है। अपने प्रबंध काव्य पद्मावत एवं कान्हावत में उन्होंने प्रेम की तीनों अवस्थओं प्रेमोदय, प्रेम साधना एवं प्रेम-सिद्धि का विस्तार से वर्णन किया है। कवि अपनी प्रेम व्यंजना साधारण नायक नायिका के रूप में करता है। प्रसंग सामान्य प्रेम का ही रहता है किंतु उसका संकेत 'परम प्रेम' की ओर होता है। बीच-बीच में आने वाले रहस्यात्मक स्थल स्पष्ट करते चलते हैं कि कवि का यह प्रेम वर्णन 'प्रच्छन्न सत्ता' के प्रति है जो इस जगत में व्याप्त है। लौकिक एवं अलौकिक प्रेम दोनों साथ-साथ चलते हैं। लौकिक पात्रों के मध्य लौकिक प्रेम की व्यंजना करते हुए भी अलौकिक की स्थापना का दुरूह प्रयास कवि जायसी ने बड़ी सफलता से किया है।

पद्मावत में अनेक स्थलों पर कवि ने प्रेम को ही मानव जीवन का लक्ष्य माना है। उनकी दृष्टि में प्रेम का स्थान गगन से भी उच्च है और प्रेम का ध्रुव आकाश स्थित ध्रुव से भी ऊंचा है—

''ज्ञान दिस्टि सौं जाइ पहूंचा,
प्रेम अदिष्ट गगन ने ऊंचा।।
ध्रुव तें ऊंच प्रेम ध्रुव अ आ,
सिर देइ पांव देइ से छूआ।।''

कबीर की भांति वे भी ''सीस उतारे भुइं धरै फिर पैठे इहि मोह'' में विश्वास रखते हैं। जो साधक प्रेम की पीर सह सकता है। सिर समर्पित करने के लिए तत्पर रहता है, वही प्रेम मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। विधाता ने प्रेम मार्ग को कठोर पर्वत के समान बनाया है जो सिर देकर या सिर के बल इस पर चढ़ने का सामर्थ्य रखता है वही इस पर चढ़ सकता है। ''प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा, सो वै चढ़ै जो सिर सों चढ़ा।।'' कवि का मानना है कि जो अपना सीस नहीं दे सकता, मृत्यु के भय को नहीं त्याग सकता, परम प्रेम के लिए अहंकार का परित्याग नहीं कर सकता, उसका जीवन व्यर्थ है।

''जो नहिं सीस प्रेम पथ लाबा, सो प्रिथियी महं काटे क आशा।।'' जो एक बार प्रेम का रस चख लेता है, प्रिय के सान्निध्य की लालसा उसकी नींद, भूख, विश्राम की चाह सबका अपहरण कर लेती है और वह प्रेम और तज्जन्य विरह के पाश में जीवन पर्यंत आबद्ध रहता है, वह प्राण विसर्जित कर सकता है पर प्रेमानुभूति एवं निरंतर विरह की पीर के पाश से मुक्ति नहीं चाहता—

''जेहि के हिए प्रेम रस जाया।
का तोहे भूख नींद विसरामा।।
प्रेम फांद जो परा न छूटा।
जीव दीन्ति पैं फांद न छूटा।।''

कवि का विश्वास है कि मानव जीवन की सार्थकता प्रेम मार्ग के अनुसरण में ही है। कोई बाधा, कोई कष्ट उसे इस मार्ग से विरत नहीं कर सकता क्योंकि जो इस मार्ग पर चलता है वह कविसास को प्राप्त कर लेता है—''तिन्ह पावा अंतिक कविसासू। जहां न मीचु सदा सुखवासू।।'' ''प्रेम पंथ जो पहुंचे पारा। बहुरि न आइ मिलै यह छारा'' प्रेम पंथ का पथिक मरजीया होकर अमर हो जाता है। प्रेम का मार्ग कठिन अवश्य है किंतु लोक-परलोक दोनों को संवारने वाला सिद्धि और मुक्ति प्रदाता है—''भतेहि प्रेम है कठिन दुहेसा। दुइ जग तरा प्रेम जेइं खेला।'' कवि कहता है कि यह संपूर्ण जीवन एक खेल ही तो है, क्रीड़ा ही तो है निर्माता की, परम प्रिय की। अब यह हम पर निर्भर है कि हम इसे कैसे खेलते हैं। इस मूल्यजीन जीवन को अमूल्य बनाते हैं या मूल्यहीन—

''मुहम्मद बाजी प्रेम की ज्यों भावे त्यों खेल।
तिल फूसहि के संग ज्यों होय फुलायल तेल।।''

कवि का विश्वास है कि संपूर्ण सृष्टि में प्रेम से अधिक कुछ भी मूल्यवान, सौंदर्य-विधायक, चित्ताकर्षक उत्सर्ग प्रेरक नहीं है।

''वीति लोक चौदह खंड,
सब परै मोहि सूझि।
पेम छांडि कितु और न सोना,
जौ देखौ मन बूझि।।''

जो मानव सांसारिक मोह, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध आदि में उलझ जाता है वह प्रेम मार्ग का पथिक नहीं बन पाता। कवि का मानना है द्रव्य-संचय या संग्रह वृत्ति सर्वाधिक विनाश का कारण है। इसी के कारण पद्मावती को प्राप्त करने के बाद भी रत्नसेन उससे बिछुड़ जाता है। जायसी की उक्ति है—

''दरब भार संग काहु न ऊठा,
जेइं सैंता तेहि से पुनि रूठा।।
गहि परवान लै पंखि न ऊड़ा,
मोर मोर जेइ कीन्ह सो बूड़ा।।
दरब जो जाना है अपना,
भूलहि गरब मनाह।
जौ रे उड़ाइ न लै सकै,
बोरि चलै जस मांह।।''

महाकवि तुलसीदास भी कहते हैं—''मैं ओर मोर तोर यह माया'' यह मेरा यह तेरा है की वृत्ति और सब कुछ मेरा हो जाए, मैं संग्रहित कर लूं, जीवन की यही आपाधापी प्रेम मार्ग

की बड़ी बाधा है। जायसी बहेलिया के रूपक के माध्यम से कर्मेंद्रियों के पंच आकर्षण– शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श का इस प्रकार वर्णन करते हैं–

''पांच बान कर खोंचा, लासा भरे सो पांच।
पौरव मरे तनु अमफा, कत मोर बिनु बांच।।''

मानव को अपना मन पक्का करने का प्रयास करना चाहिए उसे भरोसा करना चाहिए कि यह जीवन उस परम तत्त्व को उपलब्ध करने के लिए ही मिला है अतः गुरु जिस प्रेमजन्य विरह चिंगारी को हृदय में स्थापित करता है उसे सुलगाना, निरंतर प्रदीप्त रखना ही शिष्य का धर्म है। मनुष्य का मन शक्ति का पारावार है। कवि कहता है ''राजपति यह मन सकती सीऊ।'' यह मन ही शक्ति शिव है।। इस शक्ति को ऊर्जस्वित करना जीवन का लक्ष्य है। कवि का विश्वास है कि ''धरती सरग मिले हुत दोऊ, केई निनार कै दीन्ह बिछोहू।।'' विरह की तीव्र अनुभूति मानव को जगत की, ऐषणाओं की, संग्रह की वृत्ति से विमुख करती है। वह समझ पाता है कि यह संसार और इसका मायाजाल एक मुट्ठी छार से अधिक कुछ नहीं। साधक इसी एक मुट्ठी छार को प्रेम के पारस से 'हिरण्यगर्भ' बनाना चाहता है। अन्यथा उसे भी चित्तौड़ को जीत लेने के बाद अलाउद्दीन की भांति कहना पड़ता है–

''लीन्ह उठाइ छार एक मूठी,
दीन्ह उड़ाइ पिरथिवी झूठी।''

यह संसार, संसार का माया मोह झूठा है। सत्य क्या है? प्रेम। केवल प्रेम ही सत्य है अतः इसी प्रेम-साधना, सत्य साधना से मुक्ति बैकुंठ– फना के पश्चात् बका की प्राप्ति संभव है। जायसी स्वीकार करते हैं–

''मानुष प्रेम भरउ बैकुंठी।
नरहि त काह छार इक मूठी।।''

जायसी के इसी सिद्धांत में प्रेम-साधना में धरती को स्वर्ग बनाने का अमोघ अस्त्र छिपा है और इसी का प्रयोग करके हम वर्तमान संघर्षपूर्ण समाज में समरसता स्थापित कर सकते हैं।

पशुपतिका, सी-53, निराला नगर, लखनऊ

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 2000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कलाकृतियां अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता और फोन नंबर अवश्य लिखें।**

निर्गुण भक्ति के सशक्त हस्ताक्षर

डॉ. पुष्पा सिंह विसेन

उत्तर प्रदेश सदियों से भारत का एक बहुत बड़ा प्रांत रहा है जिसकी पावन धरा पर अनेक संत, विद्वान पैदा हुए। उन सभी का जिक्र न करते हुए मैं सिर्फ मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में यह कहना चाहूंगी कि निर्गुण प्रेमाश्रयी कवि के साथ-साथ वे एक सूफी महात्मा थे। उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस स्थान का नाम मलिक मुहम्मद जायसी की वजह से बहुत प्रसिद्ध हुआ। वह भक्ति काल के सशक्त हस्ताक्षर थे। जायसी के लिखे हुए कुछ काव्यों का जिक्र करना चाहूंगी जैसे—बारहमासा, अखरावट, आखिरी कलाम और पद्मावत—इन चारों पुस्तकों का विधिवत अध्ययन छात्र जीवन में मैंने किया है। कबीर, रहीम, सूर एवं अन्य संत कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का नाम महाकाव्य पद्मावत के कारण अपनी अलग पहचान बनाता है। पद्मावत एक संयोग एवं वियोग की वृहद प्रेम गाथा है जिसको साहित्य की दुनिया में महाकाव्य का नाम दिया गया है। मैं उसे महान प्रेम काव्य कहती हूं। जिसकी प्रेम कथा संयोग से वियोग का वह अद्भुत दृश्य समाज के सामने रखती है जिसकी तुलना में अभी तक कोई काव्य ग्रंथ नहीं रचा गया है और न ही रचे जाने की संभावना है। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है, उत्तर प्रदेश मेरा भी जन्म स्थान रहा है। जहां अनेकों दुर्लभ व्यक्तित्वों ने जन्म पाया और अनेकों दुर्लभ ग्रंथ रचे और समाज को एक नई दिशा दी। सभी की विस्तृत चर्चा न करते हुए मैं इतना कहना चाहूंगी कि साहित्य के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश अपने इन दुर्लभ व्यक्तित्वों के द्वारा विश्व के मानचित्र पर अपना साहित्यिक हस्ताक्षर गर्व से स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज कराता है। इन्हीं शब्दों के साथ अपने काव्य सुमन उस महान विभूति को श्रद्धापूर्वक अर्पित करती हूं।

''कुछ प्रेम बीज मन में अंकुरित हुए होंगे
तब जाकर जायस ने अनेकों काव्य रचे होंगे
पद्मावत जैसा प्रेम काव्य
बन गया साहित्य जगत का महाकाव्य
उपजी होगी हृदय की
उरवर धरा प्रेम की कोमल बेलें,
तब जाकर निकली होंगी
उर से छंछ काव्य के रेले
था प्रियतम छोड़ गया,
उसकी विरह व्यथा को बांधा शब्दों में
वैराग्य की चादर भीतर पद्मावत रच डाला
उर में अथाह समंदर भरे
प्रेम का अद्भुत कार्य कर डाला
निर्गुण भक्ति शाखा का
वो बहुत बड़ा अनुयाई था
अमर व्यक्तित्व है आज भी
कृतित्व की महिमा अनोखी
शत्-शत् नम उस सूफी संत को,
जग करता है।
राष्ट्र भाषा में था निज संपूर्ण काव्य रचा
व्यक्त्वि में था सूफियाना वैराग्य रचा
वो संत कवि था अद्भुत निराला
प्रेम प्यास की चाह मिटा
पीता रहा वैराग्य प्याला
वो अनोखा महापुरुष था
औरों से अलग न्यारा
जीवन भर उसने था नहीं आराम किया
सूफी अंदाज में सदा था
साहित्य का काम किया।
साहित्य जगत का वो था
एक रचनाकार मतवाला
भक्तिभाव का वो सजग प्रहरी
नहीं मिटने वाला।
सूफी अंदाज गहे जग से चला गया।
आज भी प्रेम प्यास में
पद्मावत जग से न गहा गया।
गर आज जग पद्मावत की
प्रेम कथा गह ले
जीवन में प्रेम का
गूढ़ रहस्य समझ ले।''

207/3, वसुंधरा, गाजियाबाद

जायसी की रचनाओं में सामाजिक जीवन

शिवमंगल सिंह मानव

सूफी कवियों ने हिंदुओं के पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका का प्रेम ही है, उनके पारिवारिक जीवन का भी सुंदर वर्णन किया गया है। अधिकतर राजपरिवारों से है। इनमें हिंदू पारिवारिक जीवन की झलक मिलती है। इनमें माता, पिता, पुत्र, पुत्रवधू आदि एक ही परिवार के अंग के रूप में वर्णित हैं। पुत्र मोक्ष प्रदान करने वाला समझा जाता है, हिंदू दंपति संतान न होने पर चिंतित रहते हैं। राजा के पास समस्त ऐश्वर्य के साथ साधन उपलब्ध हैं फिर भी वह पुत्र के लिए हाथ जोड़कर ईश्वर से याचना करता है–

''जो कछु चाहिय सो सब अही।
एक न पूत नांव जेहि रही।।''

जायसीकृत चित्ररेखा में राजा कल्याण सिंह सारी धन संपदा के होते हुए भी कुलदीपक बिना दुखी है–

''सबै बात बहुत बड़ सूखी।
एक न पूत बंस बिन दुखी।।''

माता-पिता का अपनी संतान के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है, चाहे वह पुत्र हो अथवा पुत्री। पद्मावती में राजा रत्नसेन जब योगी बनकर घर से निकलने लगता है, उसके परिवार के लोग अत्यंत दुखी होते हैं। उसकी माता विलाप करते हुए रोकने का प्रयास करती है, उसकी पत्नी नागमती रोते हुए जोगिनी बनकर उसके साथ चलने का विचार व्यक्त करती है। फिर भी रत्नसेन प्रस्थान कर जाता है, जिससे उसके घर में कोहराम मच जाता है–

''रोवै माता न बहुरै बारा।
रतन चला जग भा अंधियारा।।''

पद्मावती विदा होते समय अपनी सहेलियों से रो-रो कर कहती है कि पिता ने विवाह करके और विदा करके मेरे साथ निष्ठुरता का व्यवहार किया है। पद्मावत की नागमती को जायसी ने आदर्श हिंदू पत्नी के रूप में वर्णित है।

रत्नसेन भी अपनी पत्नी के प्रति जागरूक है। सिंहलद्वीप में पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद एक दिन शिकार खेलते समय नागती का संदेशवाहक पक्षी मिला और उसने नागमती का जो वर्णन किया, सुनकर राजा को नागमती की स्मृति में व्याकुलता छा गई–

''तन चितउर मन सिंहल बसा।
जिउ बिसंभर जनु नागिन डसा।''

सिंहल से लौट आने पर रत्नसेन से नागमती ने जब उसके निष्ठुर व्यवहार के लिए उलाहना दिया तब रत्नसेन के हृदय से सच्चे पति हृदय की भागीरथी प्रवाहित होने लगती है–

''नागमती तुम पहिल बियाही।
कान्ह पिरीती रही जस राही।।''

सूफी प्रेमाख्यानों के नायक प्रेमी और आदर्श पति के रूप में वर्णित हैं। उनके प्रेम में एकनिष्ठता और पवित्रता का आदर्श प्रतिष्ठित हुआ है।

जायसी ने पद्मावत में सपत्नी कलह का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया है। रत्नसेन के चित्तौड़गढ़ आगमन पर नागमती हर्षोल्लासित हुई। इसका समाचार दासियां पद्मावती को सुना देती हैं और वह नागमती के पास झगड़ने की नीयत से पहुंच जाती है–

''दुऔर सवति मिलि पाट बईठीं।
हिय विरोध मुख बातैं मीठी।।''

इस बात को सुनकर पद्मावती भी आग बबूला हो जाती है, गुत्थमगुत्थी प्रारंभ हो जाती है–

''ओइं ओहि कहं गहा।
गहा गहनि तस जाइ न कहा।।''

××× ××× ×××

''कुंभस्थल जेउं गज मैमंता।
दूनौ अल्हर भिरै चौदंता।।''

राजा रत्नसेन दोनों रानियों में समझौता कराता है।

पद्मावत की नायिका पद्मावती भी बारह वर्ष की ही अवस्था में सयानी विवाह योग्य हो जाती है। उसकी सगाई के संदेश आने लगते हैं। समता का वर न पाने के कारण राजा गंधर्वसेन उन्हें स्वीकार नहीं करते। बारह वर्ष की आयु में उसे धवल गृह की सातवीं मंजिल पर सखी-सहेलियों के साथ आवास दिया गया। इसी आयु में उसकी यौवनावस्था

निखर आई–

''भई ओनंत पदुमावति बारी।
धन धौंरे सब करी संवारी।।''

हिंदू समाज में नारी का स्थान बहुत ही ऊंचा रहा है। मध्यकाल में धीरे-धीरे नारी की स्थिति बिगड़ने लगी। सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय भी पुत्री कोई उपेक्षा की वस्तु नहीं समझती जाती थी। उसके जन्म पर भी खुशी मनाई जाती थी। पुत्री के अभाव में उसकी कामना भी की जाती थी। पद्मावती के जन्म पर छठी पर धूमधाम से उत्सव मनाया गया था।

तत्कालीन समाज में नारी-शिक्षा का प्रचार था। नायिकाओं के ज्ञान संपन्न और सभी विद्याओं में पारंगत होने का विवरण मिलता है। पद्मावत की नायिका पांच वर्ष की अवस्था में पुराण आदि पढ़ने के लिए बैठाई गई और वह उसके अध्ययन द्वारा विद्वान हो गई।

मध्य युग में सहस्त्रों जातियां, उपजातियां हिंदू समाज में बन चुकी थीं। सूफी प्रेमाख्यानों में छत्तीस जातियों की चर्चा मिलती है। पद्मावत में श्रीपंचमी के दिन पद्मावती के साथ छत्तीसों कुल की स्त्रियां पूजन आदि में तल्लीन रहती थीं–

''चली पवनि सब गोहने फूल डालि लै हाथ।
विस्वनाम की पूजा पद्मावति के साथ।''

पद्मावत में बरई जाति का भी उल्लेख मिलता है। जो पान बेचने का काम करती हैं। पुत्र जन्म के छठे दिन छठी का उत्सव मनाया जाता है। लोकजीवन में यह उत्सव बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सूफी प्रेमाख्यानों में छठी के इस उत्सव का उल्लेख मिलता है और बड़े ही उत्साह के साथ संपन्न किया जाता है। पद्मावत में विवाह के लिए सातों द्वीपों के वर विवाह संबंध के लिए आते हैं।

विभिन्न वैवाहिक कृत्यों में वर को दहेज के रूप में बहुत सारे उपहार, धन, सम्पत्ति, हीरे, जवाहरात, घोड़े, हाथी, मोती, माणिक्य दिए जाते थे।

''भई भांवरि नेवछावरि,
राजचार सब कीन्ह।
ढाइज कहौं कहां लगि,
लिखि न जाइ तत दीन्ह।।''

विवाह के बाद गौना होता है। पद्मावत में विवाह के बाद बहुत समय तक सिंहल में रहने के बाद रत्नसेन पद्मावती के गौना की मांग करता है। पद्मावती की सखियां उससे मिलने आती हैं। वह सभी से मिलकर विलापपूर्वक रोती है। सभी सखियां उसकी विदाई के अवसर पर भी आंसू बहाती हैं।

पद्मावती की माता उसे अभिमान और क्रोध को त्यागकर निरंतर पति की सेवा का उपदेश देते हुए कहती है कि तुम बाला हो और तुम्हारा पति चक्रवर्ती राजा है। गर्व और क्रोध उसे शोभा देता है, परंतु तुम सदा उसकी आज्ञा का पालन करना। नम्रता बहुत भारी गुण है। बर, पीपर और पाकड़ जिसने सिर ऊंचा किया वह छोटा फल देता है। आम फल कर नीचे झुक जाता है, इसीलिए वह सबसे उत्तम माना जाता है। उसका फल अमृत फल के समान माना जाता है।

पति सेवा और आज्ञा पालन में औरों से बढ़-चढ़ कर मान्य है। ऐसी स्त्री को पति बहुत ही सम्मान देता है जो उसकी आज्ञा का पालन करती है।

बसंत पंचमी के मदनोत्सव में कुमारियां कामदेव की पूजा करतीं और अपने लिए योग्य वर की मांग करती थीं।

पद्मावत में हीरामन सुआ रत्नसेन से कहता है कि माघ मास के पिछले पक्ष की श्रीपंचमी के दिन पद्मावती महादेव का पूजन करने आती है। इस काव्य में विभिन्न सरस वाद्यों का बजना वर्णित हुआ है। पद्मावती श्री रंगपंचमी को ही देव मंदिर जाती है और अपनी इच्छानुसार वर मांगती है–

''फाग करहिं सब चाचर जोरी।
मोहिं जिय लाइ दीन्हि जस होरी।''

दीपावली हिंदुओं का एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। इस अवसर पर तरुणियों के झमक गाने तथा अंग मोड़ मोड़ कर नृत्य करने का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार जायसी ने खान-पान के साथ-साथ क्रीड़ा विनोद, जिसके अंतर्गत उन्होंने द्यूत क्रीड़ा, चौपड़, चौगान, शतरंज आदि का वर्णन किया है। उनकी लेखनी से समाज से जुड़ी छोटी-छोटी बातें जैसे कि वस्त्र आभूषण का ब्यौरेवार वर्णन भी किया है। उस समय का सामाजिक जीवन समृद्ध और सुखद रूप में जायसी की लेखनी द्वारा प्रकट होता है।

622, परमानंद कॉलोनी, दिल्ली-110009

जायसी कृत महाकाव्य पद्मावत और सूफी काव्य परंपरा

डॉ. दीपक नरेश

सूफी काव्य परंपरा में मलिक मुहम्मद जायसी का प्रमुख स्थान है। अवधी भाषा में रचित उनका महाकाव्य पद्मावत सूफी काव्यधारा का प्रतिनिधि ग्रंथ है। प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानने वाले सूफी कवियों ने सांप्रदायिक सौहार्द की जो मिसाल कायम की वह अद्वितीय है। सूफी कवियों ने उन लोक गाथाओं को अपने प्रेम काव्य की विषय वस्तु बनाया जो हिंदू घरों में प्रचलित थी और इसी को काव्य वस्तु बनाकर लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की। सूफी काव्य परंपरा के मुताबिक ये प्रेमाख्यानक रचनाएं 'इश्क मजाजी' से 'इश्क हकीकी' तक पहुंचने का संदेश देती हैं।

डा. रामकुमार वर्मा ने सूफी काव्य के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा है—सूफी मत में ईश्वर की भावना स्त्री रुप में की गई। वहां भक्त पुरुष बनकर उस स्त्री की प्रसन्नता के लिये सौ जान से निसार होता है। उसके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख मांगता है। ईश्वर एक दैवीय रूप में उसके सामने उपस्थित होता है। इस प्रकार सूफी मत में ईश्वर स्त्री और भक्त पुरुष है। पुरुष ही स्त्री से मिलने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार पद्मावत का नायक रत्नसेन सिंघलद्वीप जाकर पद्मावती (ईश्वर) से मिलने की चेष्टा करता है।

हालांकि जैसा कहा जाता है साहित्य इतिहास का संवेदनात्मक दस्तावेज भी होता है, सूफी कवियों ने भी अपनी काव्य रचनाओं के बहाने लोककथाओं को संरक्षित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पद्मावत में जहां पूर्वार्द्ध में प्रेम की प्रधानता है, वहीं उत्तरार्द्ध में ऐतिहासिकता का निर्वाह किया गया है। इतना ही नहीं काव्य रचना की दृष्टि से देखें तो पद्मावत एक ऐसा साहित्यिक ग्रंथ है, जिसमें जायसी ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति एवं उत्कृष्ट प्रतिभा के बल पर इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का अद्भुत समन्वय किया है। जायसी का पद्मावत भक्तयुगीन काव्य का ऐसा अद्भुत महाकाव्य है, जो कई दृष्टियों से अप्रतिम हैं। इसका वस्तु वर्णन बेजोड़ है। इसका प्रकृति चित्रण अद्वितीय है। इतना ही नहीं भाव, रस और श्रृंगार निरूपण के लिए भी इसे उच्च कोटि के काव्य ग्रंथ की संज्ञा दी जाती है। ऐतिहासिक पात्रों, काल खंडों और गतिविधियों के माध्यम से जायसी ने पद्मावत में अलौकिक प्रेम का जो मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है वैसा समूचे हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। पद्मावत में लोक तत्त्वों के समावेश को लेकर भी जायसी ने बेहद सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। वस्तु वर्णन में जहां वह आयुर्वेद, वनस्पति, रसायन और ज्योतिष की जानकारियों का परिचय देते नजर आते हैं, वहीं नाना प्रकार के व्यंजन, भोजन के नाम और इतिहास का भी यत्र-तत्र जिक्र पद्मावत में मिलता है। जायसी ऐसे क्षेत्र से थे, जहां उन्होंने हिंदू जन-जीवन को निकट से देखा और जाना था इसलिए उन्होंने हिंदू रीतिरिवाज, जीवन पद्धति, लोक मान्यताओं, लोकाचार, संस्कार, परंपराओं और व्रत, त्योहार आदि का विशद वर्णन पद्मावत में किया है।

सूफी कवियों की मान्यता थी कि इश्क हकीकी (अलौकिक प्रेम) को इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) के माध्यम से भी प्राप्त किया जा सकता है। सूफी मत में इस माध्यम का भी विशद वर्णन मिलता है। सूफी मान्यता है कि जीवात्मा (रूह) को अगर हक (ईश्वर) तक पहुंचना है तो उसे चार मुकामात (मंजिलें) पार करनी पड़ती हैं। सूफी मान्यताओं के अनुसार इनके नाम हैं—शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। सूफी कवि मानते थे कि रूह जब इन मंजिलों को पार कर लेती है तो उसका हक से मिलन हो जाता है। पद्मावत में अलौकिक प्रेम की व्यंजना करने के लिए जायसी ने यही तरीका अपनाया है। लोक कथानुसार—पद्मावती के अद्वितीय रूप सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर राजा रत्नसेन योगी बनकर सिंघल द्वीप के लिए चल पड़ता है। राह में समुद्र यात्रा के दौरान इसे कई विघ्न बाधाओं को भी पार करना पड़ता है किंतु नाना प्रकार के कष्टों पर विजय प्राप्त करते हुए अंततः वह पद्मावती को पा लेता है किंतु जायसी यहीं कथांत नहीं करते हैं। लौटते हुए रत्नसेन की राह में फिर विघ्न आते हैं। पद्मावती भी उससे बिछुड़ जाती है लेकिन दृढ़ निश्चय और अगाध प्रेम से प्राप्त आत्म बल द्वारा वह पद्मावती पुनः प्राप्त कर लेता है। रत्नसेन जब पद्मावती को लेकर चित्तौड़ पहुंचता है तो कपटी राघवचेतन के चलते बादशाह अलाउद्दीन पद्मावती के

रूप सौंदर्य के बारे में जानकारी पाता है। पद्मावती को प्राप्त करने के लिए वह चित्तौड़ पर आक्रमण कर देता है। अलाउद्दीन से युद्ध में रत्नसेन की हार होती है और अलाउद्दीन उसे बंदी बनाकर दिल्ली ले जाता है किंतु गोरा बादल की तत्परता से वह कारागार से मुक्त होकर चित्तौड़ लौट आता है। वापस आने पर उसका राजा वीरपाल से युद्ध होता है, जिसमें वह वीरगति को प्राप्त करता है। जिसके बाद उसकी दोनों रानियां नागमती और पद्मावती भी उसके साथ सती हो जाती हैं।

सूफी प्रेम पद्धति में इस कथांत की व्यंजना इस प्रकार की गई कि रत्नसेन रूपी आत्मा 'फना' होकर 'अनहलक' की अधिकारिणी हुई और इस प्रकार पद्मावती रूपी परमात्मा से उसका एकाकार हो गया। पद्मावत में लौकिक कथा के बीच में आध्यात्मिक संकेत भी मिलते हैं जिसके आधार पर जायसी अलौकिक कथा का परिहार करते हैं।

''तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल बुद्धि पदमिनी चीन्हा।।
गुरु सुआ मोहि पंथ दिखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा।
बांचा सोय न यह चित्त बंधा।।
राघव दूत सोइ शैतानु।
माया अलाउद्दीन सुल्तानू।।''

यहां प्रतीकात्मकता है जिसके अनुसार पद्मावती बुद्धि की प्रतीक, राजा रत्नसेन मानव मन का, चित्तौड़गढ़ शरीर का, सिंघल द्वीप हृदय का, हीरामन तोता गुरु का, नागमती संसार का, राघवचेतन शैतान का और अलाउद्दीन माया का प्रतीक है। पद्मावत की इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि यह काव्य अन्योक्ति न होकर समासोक्ति है। साहित्य के ज्यादातर विद्वान भी पद्मावत को समासोक्ति ही मानते हैं। पद्मावती के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट है कि जायसी की प्रेम पद्धति का मूल आधार भारतीय ही है, जिसमें अनेक कथानक मूल्यों का भी मिश्रण है। भगवान शिव और मां पार्वती का रूप बदलकर रत्नसेन की मदद के लिए पहुंचना ऐसी ही एक कथानक रूढ़ि है।

पद्मावत के अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि मात्र कथा कहना जायसी का उद्देश्य नहीं था। इस कथा के माध्यम से वे सूफी साधना पद्धति से भारतीय जनमानस को परिचित कराना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने पद्मावत में सूफी मत के उदार स्वरूप और आध्यात्मिक प्रेम का समन्वय दिखाने का सफल प्रयास किया है।

एक प्रकार से देखा जाए तो हिंदी साहित्य के दायरे को व्यापक करने में जायसी का यह योगदान बेजोड़ है। समूचे हिंदी काव्य साहित्य में हमें किसी अन्य धर्म की मान्यताओं और रीतियों का इतना काव्य अनुप्रयोग नहीं मिलता है। सूफीमत इस्लाम धर्म का अभिन्न अंग है और इसमें उदारता एवं कोमलता विद्यमान है। सूफियों में मजार पूज्य है और तीर्थ-यात्रा को भी मान्यता दी गई है। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर भी अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं। कुछ विद्धान इसका संबंध सोफिया शब्द से जोड़ते हैं जिसका अर्थ है ज्ञान। एक अन्य मतानुसार इसका संबंध सफा से है जिसका अर्थ है कि शुद्ध और पवित्र। सर्वाधिक मान्य मत के अनुसार सूफी शब्द का संबंध सूफ से है, जिसका अर्थ है ऊन। सूफी लोग सफेद ऊन से बने चोगे पहनते थे और उनका आचरण शुद्ध एवं पवित्र होता था। सूफी साधना की बात करें तो इसमें चारों मंजिलें (मुकामात) शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत से गुजरकर साधक 'हाल' की दशा यानी परम तत्त्व तक पहुंचता है। सूफी मत में ईश्वर को निराकार एवं सर्वव्यापी माना गया है। वे ईश्वर की अनुकृति जगत में देखते थे और उसके सौंदर्य पर मुग्ध होते थे। वे मानव को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानते थे। उनके अनुसार मनुष्य में ईश्वर की छाया है। उसमें जड़ अंश (नफस) तथा आध्यात्मिक अंश (रूह) भी होती है। नफस को मारकर ही रूह के दर्शन होते हैं। पीर और गुरु ही ईश्वर से साक्षात् कराने में सहायक हैं। 'फना' मानवीय गुणों का नाश है और 'बका' ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति है। सूफी कवियों ने मसनवी शैली में प्रेम गाथाएं लिखी हैं। इस शैली के अनुसार सबसे पहले ईश्वर वंदना 'हम्द' की जाती है तत्पश्चात हजरत मुहम्मद की स्तुति (नअत) की जाती है। इसके पश्चात मुहम्मद साहब के चार मित्रों की प्रशंसा (मकतब) की जाती है। इसके बाद शाह-ए-वक्त (तत्कालीन शासक) की प्रशंसा (मदह) और फिर गुरु महिमा और अपनी आस्थाओं व विश्वास का जिक्र होता है।

भारतीय राजदूतावास, अस्कावाद, तूर्कमेनिस्तान

अद्‌भुत कल्पना के धनी

बी. एल. गौड़

जब कभी भी हम उन ऐतिहासिक मनीषियों की बात करते हैं जिन्होंने मानव समाज को बहुत कुछ दिया या वे इतिहास में मील का पत्थर बने और ऐसा कुछ किया जिसके लिए आने वाली पीढ़ियां उन्हें याद रख सकें, तो उन पर कुछ लिखने या कहने से पहले यह बात आती है कि वे कहां पैदा हुए, कब पैदा हुए, उनके समय में ऐसा क्या घटित हुआ या कौन सा काव्य रचा गया जिसके कारण आज भी मानवता उनकी ऋणी है। जहां तक मलिक मुहम्मद साहब का सवाल है तो मेरा अध्ययन कुछ इस प्रकार है–

मलिक मुहम्मद साहब, 'जायसी' तभी कहलाए या उनका तखल्लुस 'जायसी' तभी पड़ा जब वे दस दिन के लिए बतौर मेहमान कसबा जायसी में आकर रहे। जायस नाम का यह नगर आज भी उत्तर प्रदेश के जिला रायबरेली में मौजूद है और यह भी सत्य है कि 'जायस' नाम से पहले इस नगर का नाम 'उदयान' था और उन दिनों यह अमेठी नरेश के अधीन था। एक लंबे अरसे तक इस पर अमेठी नरेश का ही आधिपत्य रहा। जिस समय मलिक मुहम्मद साहब यहां आकर दस दिन तक रहे तो महाराज अमेठी की ओर से उनकी मेहमान नवाजी के विशेष प्रबंध किए गए। उनका जन्म जायस के पास ही किसी गांव में हुआ था जो जायस कस्बे के पास ही था। मलिक साहब आए तो केवल दस दिन के लिए थे लेकिन फिर वे यहीं के होकर रह गए और 'जायस' नाम को अपने नाम के साथ सदैव के लिए जोड़ लिया और उसके बाद ही वे मलिक मुहम्मद जायसी कहलाए।

उनके द्वारा रचित पुस्तकों से जो तथ्य उजागर होता है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे सूफी संत थे। साहित्यकार जहां उनके सूफियाना कलाम के कायल हैं वहीं उनकी प्रेम संबंधी रचनाएं भी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। नगर जायस और स्वयं को जायस का मानते हुए उन्होंने कुछ इस तरह से कहा है–

''जायस नगर मोर अस्थानू,
नगरक नाम आदि उदयानू।
तहां देवस दस पहुने आएऊं,
भा वैराग बहुत सुख पायऊं।।''

उपर्युक्त पंक्तियों को उन्होंने अवधी भाषा में लिखा है कि इस जायस नगर का प्राचीन नाम 'उदयान' था वे यहां केवल दस दिन के लिए बतौर अतिथि आए थे लेकिन इस नगर के वातावरण, यहां के आतिथ्य और लोगों के प्यार ने उनके मन को प्यार और वैराग से भर दिया। इनका वास्तविक लेखन 30 बरस की आयु से शुरू हुआ। उनकी सभी रचनाएं अवधी में हैं।

इनकी 21 रचनाओं के उल्लेख मिलते हैं जिनमें पद्‌मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरनामा, चित्ररेखा आदि प्रमुख हैं। पर उनकी ख्याति का आधार उनका पद्‌मावत ग्रंथ ही रहा। इसमें पद्‌मावती की प्रेम कथा का रोचक वर्णन है। ग्रंथ की भाषा अवधी है और इसके अतिरिक्त भी उनका तमाम लेखन अवधी में ही है। इस ग्रंथ की शैली पर आदि काल के जैन कवियों की छाप साफ दिखाई देती है। यह ग्रंथ दोहा और चौपाइयों में लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त जो जानकारी उनके लेखों से और ग्रंथों से मिलती है वह है कि इनके पुरखे अरब से भारत में व्यापार के लिए आए थे और उसके बाद यहीं बस गए। बचपन में ही माता-पिता का सुख छिन जाने के कारण इनका लालन-पालन नाना के यहां हुआ। बचपन से ही वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे। लेकिन एक घटना ने इनको पूर्ण रूप से वैरागी बना दिया और वह थी घर की छत गिर जाने से इनके सातों पुत्रों की मृत्यु। इस घटना के बाद इनका मन संसार से उचट गया और इनका समय अधिकांश सूफी संतों के साथ व्यतीत होने लगा। विपत्तियों का कोई अंत नहीं था। बड़ी चेचक के कारण इनकी एक आंख भी चली गई थी। फिर इन्होंने मानसिक शांति कहीं पाई तो यह था इनका लेखन और लेखन के माध्यम से खुदा से प्रेम। सूफी संत शेख मुबारक बोडले को इन्होंने गुरु बनाया और उनसे प्रेरित होकर सूफी कलाम को ही अपना धर्म और कर्म मान लिया।

इनके उल्लेखनीय ग्रंथों में अखरावट, पद्‌मावत, शिखरावत, चंद्रावत और अंतिम ग्रंथ 'आखिरी कलाम' का जिक्र आता है। आखिरी कलाम में इन्होंने स्वर्ग-नर्क-प्रलय-जीव का इस पृथ्वी पर आना इत्यादि के विषय में लिखा है। उन्होंने लिखा है कि प्रारंभ में सृष्टि में कुछ नहीं था केवल अल्लाह था और घोर अंधकार था उसके बाद ही सृष्टि का प्रारंभ

हुआ। इसका कारण यह था कि कुछ इसी प्रकार का वर्णन कुरान और अन्य इस्लामी ग्रंथों में दिया गया है। लेकिन भारतीय ग्रंथों के अनुसार इस प्रकार की मान्यता तब से है जब से काल का आरंभ केवल कल्पना मात्र है। इन ग्रंथों के अनुसार ब्रह्म और कहीं नहीं वह तो मानव देह में व्याप्त है। जीव बीज रूप में ब्रह्मा में ही निहित था इसी से हजारों प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई। कुछ इस प्रकार के विचार जायसी के भी रहे।

यह सब लिख कर हम यह कहना चाहते हैं कि जायसी की कल्पना अद्‌भुत थी और वे एक दूरदर्शी सूफी संत थे। उनके अनुसार जीव पहले ईश्वर में निहित था और बाद में उससे अलग हो गया और वह सदैव ईश्वर से मिलने को तरसता रहता है। इसी आधार पर जायसी की तमाम रचनाओं में जो विरह दृष्टिगोचर होता है वह जीव का ईश्वर के प्रति प्रेम है। यह वह बेचैनी है जो जीव के अंतस में मौजूद है और जीव अपने प्रियतम—ईश्वर से मिलने को बेचैन रहता है।

जायसी के समूचे लेखन में सर्वोपरि है पद्‌मावत। इसमें रानी पद्‌मावती और राजा रत्नसेन के प्रेम का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि पाठक इसे पढ़ते समय आत्मविभोर हो जाता है और लगता है कि वर्णित पात्र स्वयं साक्षात सामने मौजूद है। इस ग्रंथ के द्वारा उन्होंने लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम का दर्शन कराया है। यही एक ऐसा ग्रंथ रहा जिसने जायसी को असीम ख्याति दिलाई।

एक विशेष बात जो जायसी ने लिखी वह थी उनके दर्शन का निचोड़ और यदि आज दुनिया में उनके उस विचार को अपना कर प्रचारित किया जाए तो मेरा मानना है कि कम से कम भारत में तो शांति का राज्य स्थापित हो सकता है। यह उनके द्वारा नीचे लिखी पंक्तियों से व्यक्त होता है—

''तिन्ह संतति उपराजा
भांतिन्ह भांति कुलीन
हिंदु तुरक दुवौ भए।
अपने अपने दीन
मात के रक्त पिता के बिंदु
अपने दुवौ तुरक और हिंदु।।''

उपर्युक्त कविता के माध्यम से वे कहते हैं कि हिंदू-मुस्लिम दोनों एक ही ईश्वर की संतान है। फिर ये फर्क कैसा, इंसान से इंसान की नफरत कैसी? सामंजस्य की यह भावना ही जायसी को अन्य संतों से ऊपर उठाती है और उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को दर्शाती है। उनका आखिरी ग्रंथ 'आखिरी कलाम' था जो फारसी में रचा गया। इस काव्य में उन्होंने ईश्वर स्तुति, मुहम्मद स्तुति, बादशाह प्रशस्ति और अपने उस्ताद की वेदना तथा जायस नगर का बड़ी खूबसूरती ने वर्णन किया है और अपने इस ग्रंथ में उन्होंने स्वर्ग और सृष्टि के अंत का भी वर्णन किया है।

उनके जन्म के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं और जन्म के वर्ष को लेकर 2 से 3 बरस के अंतराल का जिक्र आता है। अधिकांश का मत है कि उनका जन्म सन् 1477 ईस्वी में हुआ और उनकी मृत्यु सन् 1541 ईस्वी में हुई, अर्थात् वे 65 वर्ष तक जीवित रहे। लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि उनकी मृत्यु सन् 1558 ईस्वी में हुई। इस मत के हिसाब वे 16 वर्ष का अंतराल आता है, अर्थात् वे 65 वर्ष के स्थान पर 81 वर्ष तक जीवित रहे।

बी-159, योजना विहार, दिल्ली-110092

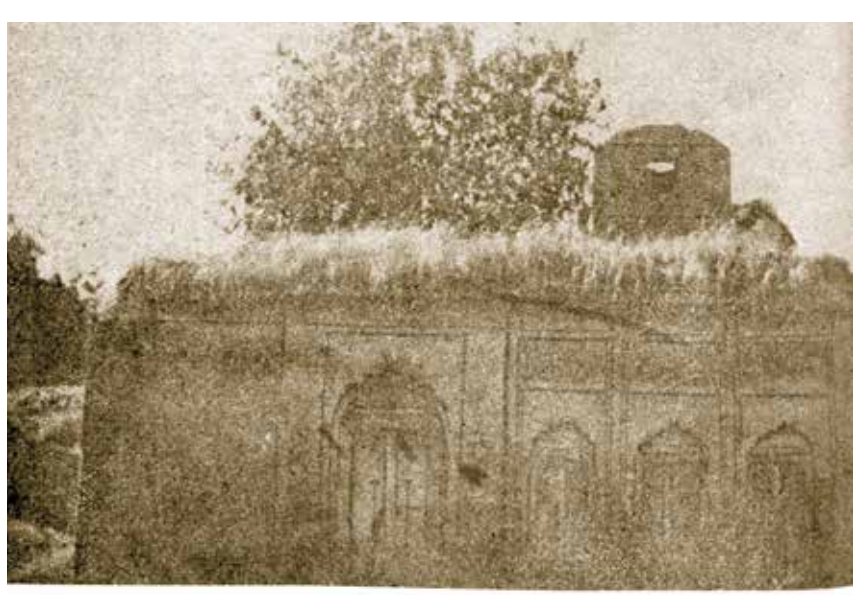

३—जायसी की समाधि

सूफी कवि जायसी के काव्य में दर्शन तत्त्व

डॉ. आरती स्मित

पूर्व मध्यकाल सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उथल-पुथल के कारण संक्रांत युग के रूप में याद किया जाता है। निराश जनता को दिशा देने हेतु कबीर, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य एवं स्वामी रामानंद अवतरित तथा कुछ-कुछ स्थापित हो चुके थे।

ऐसी ही संक्रांत बेला में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के घर की थीं और हृदय-मार्ग से होकर गुजरती थीं, जिनके स्पर्श मात्र से मनुष्य बाह्य भेदों से ध्यान हटाकर एकत्व की अनुभूति पाने लगता। अमीर खुसरो (1255-1324) प्रथम भारतीय कवि हैं, जिन्होंने सूफी काव्य का प्रणयन फारसी में किया। हिंदी सूफी काव्य पर्याप्त भिन्न ढंग का है। कबीर ने भी प्रेम की महत्ता प्रतिपादित की, किंतु मनुष्य-मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध का प्रत्यक्षीकरण सूफी कवियों की प्रेमकथाओं द्वारा हुआ। इनमें जायसी का नाम प्रमुखतः उभर कर आता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में–

''इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर अपने जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।''[1]

प्रेमगाथा की परंपरा जायसी के पूर्व एवं पश्चात् भी चलती रही। ये रचनाएं फारसी

मलिक मुहम्मद जायसी

मसनवी के ढंग पर अवधी भाषा के एक नियम-क्रम के साथ दोहे और चौपाइयों में लिखी गई जिसे बाद में तुलसीदास जी ने भी अपनाया।

जायसी का मूल नाम 'मुहम्मद' था। 'मलिक' उनकी पारिवारिक उपाधि थी, जो संभवतः खिलजी वंश के सुल्तानों द्वारा प्रदान की गई थी। 'जायसी' शब्द स्थान सूचक है, जो जायस से बना है। इस प्रकार कवि मलिक मुहम्मद जायसी के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'आखिरी कलाम' में कवि ने अपने जन्म के संबंध में संकेत दिया है–

''भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।।''

किंतु निश्चित तिथि विवादों के घेरे में है। कवि की मृत्यु-तिथि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, 4 रजब 949 हि. (1542 ई.) संभाव्य

है। जायसी का व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन भी कहीं न कहीं उनकी कृतियों में रचा बसा है। जायसी कुरूप थे, किंतु संवेदनशून्य या चेतनाशून्य नहीं, इसलिए शेरशाह के दरबार में, शेरशाह के द्वारा उनकी हंसी उड़ाए जाने पर उन्होंने शांत स्वर में पूछा—

''मोहि का हससि, कि कोहरहि''

(मुझ पर हंसे या मुझे बनाने वाले कुम्हार (ईश्वर) पर)।

तब शेरशाह को गलती का अहसास हुआ और उसने क्षमा मांगी।

जायसी की ईश्वर के प्रति गहन आस्था से जुड़े प्रसंग की चर्चा करना उचित होगा। गृहस्थ किसान जायसी दोपहर का भोजन अपने खेत पर ही करते, वह भी किसी भूखे को अपने साथ खिलाकर। एक दिन एक कोढ़ी ही मिला, जिसके शरीर के कोढ़ से मवाद चू रहा था। जायसी ने प्रेमपूर्वक उसे साथ खाने का निवेदन किया। भोजन करते समय कोढ़ का मवाद चू कर भोजन पर गिर गया। कोढ़ी के बार-बार मना करने पर भी जायसी ने मवाद मिले भोजन का भाग स्वयं ग्रहण किया और उसे स्वच्छ भाग खाने को कहा। इस घटना के अनंतर कोढ़ी अदृश्य हो गया और जायसी का ईश्वर-प्रेम और प्रगाढ़ हो गया। इस घटना का संकेत उन्होंने 'अखरावट' में भी दिया है—

''बूंदहि समुद्र समान,
यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा जो हेरान,
मुहम्मद आपुहिं आपु महं।।''

जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे। डॉ. ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को उनका दीक्षा गुरु माना है। 'पद्मावत' एवं 'अखरावट' में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है—

''सैयद असरफ पीर पियारा।
जेइ मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।।
गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा।
चलै उताइल जेहि कर खेवा।।''

—'पद्मावत'

कही सरीअत चिस्ती पीरू।
उधरी असरफ और जहां गीरू।।
पा पाए एउं गुरु मोहिदी मीठा।
मिला पंथ सो दरसन दीठा।।''

—'अखरावट'

'आखिरी कलाम' में पीर शब्द का प्रयोग सैयद अशरफ के पहले करते हुए कवि ने स्वयं को उनके घर का बंदा कहा है।

जायसी उदारमना एवं जिज्ञासु सूफी संत थे। तात्कालिक संप्रदायों के द्वारा निरूपित योग में जायसी ने अपने इस्लाम की कथा का विचित्र मिश्रण किया। हठयोग में 'अंतराय' के स्थान पर उन्होंने शैतान को रखा और इसे 'नारद' नाम दिया। गोरखपंथियों की भी उन्होंने बहुत सी बातें रखी। एक ओर उन्होंने कबीर के समान ईश्वर तक पहुंचने के अनेक मार्गों का तत्वतः होना स्वीकार किया है, दूसरी ओर मुहम्मद साहब के मार्ग पर अपनी श्रद्धा प्रकट की—

''तिन्ह महं पंथ कहौ भल गाई।
जेहि दूनो जग छाज बड़ाई।।
सो पड़ पंथ मुहम्मद केरा।
है निरमल कैलास बसेरा।।

जायसी बेहद भावुक, भगवद्भक्त और पहुंचे हुए सिद्ध माने जाते रहे। समाज के प्रति कर्त्तव्य-पालन के साथ-साथ मानव-धर्म के सच्चे अनुयायी थे। प्रत्येक धर्म की महत्ता स्वीकारने की क्षमता के साथ-साथ रूप, गुण, शील, ऐश्वर्य, वीरता—सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला उदार हृदय उन्हें प्राप्त था, तभी तो 'पद्मावत' जैसे चरितकाव्य की रचना कर पाए। इस ग्रंथ के अनुशीलन से कवि के कोमल हृदय का 'प्रेम की पीर' से आप्लावित होने का संकेत मिल पाता है। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर 'सिद्धांत संबंधी' बातें हैं तो 'आखिरी कलाम' में मरणोपरांत जीव की दशा और कयामत के अंतिम न्याय का वर्णन हे। कवि की कीर्ति का आधार 'पद्मावत' ही है। सैयद आले, डॉ. अमर बहादुर प्रभृत विद्वानों ने जायसी रचित अनेक कृतियों का उल्लेख किया है, किंतु या तो वे अप्राप्य हैं या विवादित। अतःएव उपर्युक्त उल्लिखित तीनों रचनाओं को ही चर्चा के केंद्र में रखा जाएगा। खासकर 'पद्मावत' को।

जायसी के काव्य में दर्शन तत्व सूफी विचारधारा के अनुरूप ही हैं। हिंदी सूफी काव्य में दर्शन की इस्लामपरक मान्यताओं के अतिरिक्त हिंदू दर्शन का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म, जीव-जगत ओर उनके परस्पर संबंध के विषय में अद्वैतपरक उक्तियां उनमें मिलती हैं। सूफी मत को इन कवियों ने हिंदू दर्शन से अविरोधी बनाकर अपने काव्य द्वारा प्रचारित करने का प्रयास किया है। जायसी ने 'पद्मावत' में सारी सृष्टि के रचनाकार 'ब्रह्म' द्वारा पहले मुहम्मद के रूप में संसार में ज्योति प्रकाशित करने की बात कही है। उपनिषद् में ब्रह्म का निषेधात्मक वर्णन है। इसी को सूफी कवियों ने अपनाया। जायसी ने 'ब्रह्म' को 'अलख, अरूप, अबरन' कहा है। उनके अनुसार—

''वह सब में और सब उसमें हैं। वह प्रकट, गुप्त और सर्वव्यापी है। उसके न कोई पुत्र, न पिता और न माता है। न उसका कुटुंब है, न कोई उसका संबंधी है। उसने न किसी का प्रजनन किया है और न किसी ने उसे जन्म दिया है। उसने संसार में सब कुछ बनाया है, पर उसे किसी ने नहीं बनाया है।''[2]

हिंदी सूफी कवियों ने सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया को इस्लामी ढंग से ही व्यक्त किया है। उनके अनुसार, परमात्मा ज्योति-स्वरूप

है और उसने संसार के रूप में सर्वप्रथम एक ज्योति का निर्माण किया। शिव और शक्ति शब्द का प्रयोग करते हुए जायसी कहते हैं— ''मन ही शिव है और मन ही शक्ति है।''[8]

हिंदी के सूफी कवियों ने फारसी काव्य-परंपरा से 'प्रेम तत्व' ग्रहण किया और उसी को सांसारिक कल्याण का साधन माना। हिंदू दर्शन में प्राप्त 'जीवनमुक्ति' तथा सूफियों की 'मरजीया दशा' में बड़ी समानता है। 'वृहदारण्यकोपनिषद्' में कहा गया है—

''अकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो
न तस्य प्राणा उत्क्रमंति ब्रह्मैव सन् ब्रह्मप्येति।''

सूफियों पर बौद्ध धर्म की संन्यासवृत्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके 'फना' और बौद्धों के 'निर्वाण' में अत्यधिक समानता है। नाथपंथ में इसे 'जीवनमुक्तावस्था' कहते हैं। संतों में, विशेषकर कबीर ने तो बार-बार इस तत्व का उल्लेख किया है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिए मानव की मृत्यु हो जाना आवश्यक है।'' अर्थात् उसके अंतस् से पशुभाव का सर्वथा लोप हो जाना चाहिए। यही सहजयान की परिभाषा में 'सच्चा मरण' है, जिसे जायसी ने बार-बार 'मरजीया भाव' कहा है।

जायसी की रचनाओं से अभिव्यक्त होता है कि भगवान बुद्ध की भांति उन्हें 'जरा' और 'मरण' के कारण संसार की असारता का भान होता है। उनके अनुसार, नश्वर जीवन की सार्थकता प्रेम करने में है। उस परम शक्ति से प्रेम प्राप्त करना कठिन है। इसके लिए जीवन की सभी कामनाओं पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य है। 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन एवं राजा गजपति की वार्ता के दौरान जब गजपति समुद्र-मार्ग की बीहड़ता का वर्णन करते हैं तो रत्नसेन इसी 'मरजीया दशा' को संकेत देते हैं—

''गजपति यह मन सकती सीऊ।
पै जेहि पेय कहां तेहि जीऊ।
जौ पहिले सिर दै पशु धरई।
भुए केर मीचुहि का करई।।''[4]

''एहि जीवन के आस का
जस सपना तिल आधु।
मुहम्मद जियतहि जे मरहिं
तेई पुरुष कहु साधु।।''[5]

अर्थात् ''इस नश्वर जीवन वाले संसार में सफलता प्राप्त करने में सफल साधु पुरुष के लिए जीते जी मरना आवश्यक है। 'मरजीया' शब्द के प्रयोग और इसे एक विशिष्ट रूढ़ि के साथ प्रस्तुत एवं प्रचलित करने का श्रेय जायसी को ही है।

कवि जायसी ने 'पद्मावत' में तत्कालीन प्रसिद्ध विभिन्न हिंदू पंथों की चर्चा की है। सिंहलद्वीप में स्थान-स्थान पर तीर्थस्थल थे, जहां जपी और तपी आसन लगाए बैठे रहते थे। इस प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि ऋषेश्वर, संन्यासी, रामजन, मसवासी, ब्रह्मचारी, दिगंबर, सरसुती, सिद्ध योगी, निरासपंथी, माहेश्वर, जंगम, जती, देवी के उपासक आदि वहां मिलते हैं। उन्होंने इस बात का भी संकेत किया है कि इनमें परस्पर संघर्ष होते रहते थे। 'हीरामन सुआ' सिंहलगढ़ लौट कर पद्मावती से शिकायत करता है कि आपके पिता गंधर्वसेन ब्राह्मणों के पूजक और योगियों का वध करने वाले हैं—

''पिता तुम्हार राज कर भोगी।
पूजै बिप्र मरावै जोगी।।''

तुलसीदास जी ने भी योगियों और सिद्धों के कलियुग में पूज्य होने की बात कही है। नाथपंथियों के उपास्य शिव हैं। उनकी मान्यताके अनुसार—

''संसार में जो कुछ भी पिंड है, वह वस्तुतः उसी प्रक्रिया से गुजरता हुआ बना है, जिस अवस्था में से यह समूचा ब्रह्मांड बना है।''[6]

जायसी ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है—''यह मन ही शिव और शक्ति दोनों हैं।''

गोरखनाथ जी की उक्ति—

''यह मन सकती यह मन सीव
यह मन पांच तत्व का जीव।''[7]

हिंदी सूफी कवियों, विशेषकर जायसी एवं मंझन पर योग-साधना का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जायसी ने सिंहलगढ़ का वर्णन करते हुए शरीर को एक गढ़ के समान कहा है। यह वर्णन योगियों के शरीरस्थ चक्रों, नव द्वारों, दशम् द्वार, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों एवं अनहद नाद के संकेतों एवं प्रतीकों से परिपूर्ण है। उनके अनुसार इस शरीर में नौ द्वार हैं तथा इसमें नौ खंड हैं। जो इन खंडों पर चढ़ जाता है, वह ब्रह्मांड में पहुंच जाता है। जायसी ने इन नव द्वारों की कल्पना को शरीरस्थ चक्रों के साथ मिला दिया है और इन्हें नौ खंडों के साथ संबंधित करके एक-एक खंड को एक-एक द्वार कहा है। दशम् द्वार से सहस्रार का अमृत नीचे झरता है। सिद्धों और नाथों की भांति शरीर की रचना का उल्लेख करके जायसी ने उनकी ही भांति शरीर की रचना का उल्लेख करके योग साधना से सिद्धि प्राप्त करने की चर्चा की है। उनके अनुसार दशम् द्वार ताड़ के वृक्ष के समान ऊंचा है। जो उलटी दृष्टि करता है, वही उसे देख पाता है। रत्नसेन का प्रसंग देखें—

''राजा इहां तैस तपि झूरा।
माजरि बिरह छार कर कूरा।।''

कबीर ने भी मन को उलट कर सनातन अवस्था में पहुंचने का उल्लेख किया है।

'परकाय प्रवेश' की विद्या नाथपंथी योगियों के पास तो थी ही, सूफी संत कवि जायसी के पास भी इसका ज्ञान होने की प्रतीति होती है। 'पद्मावत' की यह पंक्ति द्रष्टव्य है—

''कौन सो करनी कहु गुरु सोई।

परकाया परबेस जो होई।।''

हिंदी सूफी कवियों ने नाथ योगियों में प्रचलित अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग यथावत अर्थ में किया है। जैसे—सूर्य-चंद्र, सरगपंथ, सरग और कबिलास, सोना और सुहाग, मिलन, महासुख या सर्वशून्यता। जायसी ने भी सूर्य को पुरुष और चंद्र को रानी या स्त्री मानकर विवेचना की है। इसी प्रकार उन्होंने सात खंडों के धौराहर के सर्वोच्च भाग में पद्मिनी के 'सेज सुखबासू' का वर्णन किया है। इस सर्वोच्च सातवें खंड के ऊपरी भाग को 'कबिलास' (कैलाश) कहा गया है। एक स्थल पर इसे 'सरग' भी कहा गया है। जायसी कहते हैं कि ''वहां न चांद न सूर्य। वहां वहीं पहुंचता है जो इस मार्ग को जान लेता है।''

सूफियों ने 'सुहाग' शब्द के पारिभाषिक रूप को ग्रहण किया। जायसी लिखते हैं कि द्वादशबानी शुद्ध सोना की, उनकी मांग को सुहागावस्था की आवश्यकता है—

''कन दुआदस बानि होई
चह सुहाग वर मांग।''

जायसी ने सोना और सुहागा के रासायनिक मिलन की बढ़ी चर्चा की है।

मिलन, महासुख या महाशून्यता पर शशिभूषण गुप्त ने लिखा है—

''शून्य, अतिशून्य की दो प्राथमिक अवस्थाएं वासना के दो प्राथमिक रूपों की सूचक हैं। तीसरा महाशून्य उन दोनों का स्वामी अविद्या चित्त है। पहले दो को मार कर फिर तीसरे को भी मारना होता है। इसी के लिए सहजयानी 'शतरंज' की परिभाषा का प्रयोग करते थे।

जायसी ने भी रत्नसेन और पद्मावती के बीच 'सुखबासी' में चौपड़ का विधान किया है जिसमें रत्नसेन कहता है—''हौं जीतेहूं हारा तुम्ह जीता।'' इस जीत-हार के खेल में वह युगनद्धता के बारे में कहता है कि मैं मिलकर अलग नहीं होऊंगा।

हिंदी सूफी प्रेमाख्यानों में योग और भोग शब्द का प्रयोग साथ-साथ किया गया है और यह दर्शाया गया है कि प्रत्येक योगी का लक्ष्य भोग या भुगुति है। योग मार्ग की साधना प्रेम साधना की पहली सीढ़ी है। इसके द्वारा ही सिंहल की पद्मिनी (परम रूप) की प्राप्ति हो सकती है। सुआ रत्नसेन के समक्ष इसी मर्म का उद्घाटन करता है कि सिंहल पथ पर कोई उदासी, योगी, यती, तपस्वी और संन्यासी ही जा सकता है और योग मार्ग पर अग्रसर रत्नसेन जब पूर्ण साधक बन जाता है तब शिव-पार्वती भी उसे छल नहीं पाते। पूर्ण योगी बने रत्नसेन का लक्ष्य पद्मावती का प्रेम है। इसलिए भाट रूपधारी महेश कहते हैं—''जोगि न आहि आहि सो भोजू।''

रत्नसेन निरा योगी नहीं है। वह भोग में भी निष्णात है। उसके संबंध में पद्मिनी कहती है—

''चौरासी आसन वर जोगी।
खटरस बिंदक चतुर सो भोगी।''

यही सूफी कवि जायसी का प्रतिपाद्य है। सूफी शुष्क योग के प्रचारक नहीं हैं, वरन् योग के द्वारा एकाग्रचित्त होकर भोग या प्रेम मार्ग में बढ़ाने वाली साधना के प्रचारक हैं। यह सूफी संत कवि मलिक मुहम्मद जायसी की अमर कृति 'पद्मावत' के अनुशीलन से प्रकट है। हिंदी साहित्य को रहस्यवादी कवि के रूप में जायसी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने साधना को अत्यंत सरस और मधुर बना दिया है। निश्चय ही वे हिंदी के श्रेष्ठतम साधक कवियों की श्रेणी में अग्रगण्य हैं।

संदर्भ सूची—

1. 'जायसी ग्रंथावली', सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 2
2. 'दर्शन और धर्म', अंश सूफी काव्य : सांस्कृतिक अनुशीलन, लेखक—कन्हैया सिंह, पृष्ठ संख्या 39
3. वही, पृष्ठ संख्या 42
4. 'पद्मावत', संपादक डॉ. माता प्रसाद गुप्त, छंद 142
5. वही, छंद 146
6. नाथ संप्रदाय, पृष्ठ संख्या 108-110
7. गोरखबानी संग्रह, पृष्ठ संख्या 18

622, प्रथम तल, परमानंद कॉलोनी (पश्चिम), दिल्ली-110009

जायसी के पद्मावत में 'ईश्वरोन्मुख प्रेम तत्व'

डॉ. संगीता त्यागी

'पद्मावत' मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा विरचित अवधी भाषा का एक उत्कृष्ट कोटि का प्रबंध काव्य है। इस ग्रंथ-रत्न को हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिंदी साहित्य की प्रेम काव्य-परंपरा के अंतर्गत लिखे गए काव्यों में यह ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ है। सूफी भावना और दर्शन के अनुकूल जायसी ने 'पद्मावत्' में प्रेम तत्व को सबसे अधिक महत्त्व दिया है, यहां तक कि परमसत्ता की भी कल्पना प्रेम और सौंदर्य के रूप में की है। उन्होंने 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम-वर्णन के माध्यम से जिस प्रेम की व्यंजना की है, वह नायक और नायिका के माध्यम से लौकिक प्रेम न होकर जीवात्मा व साधक और परमात्मा या परमसत्ता के मध्य विकसित होने वाला आध्यात्मिक व अलौकिक प्रेम है। 'पद्मावत' में सूफी और भारतीय सिद्धांत के समन्वय का सहारा लेकर प्रेम-पीर की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है। जिस प्रकार सूफियों ने ईश्वर की कल्पना नारी के रूप में की है उसी प्रकार जायसी ने पद्मावती के रूप में परमसत्ता की प्रेममय कल्पना करके उसे अनंत सौंदर्य राशि से मंडित करके अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। इसी भावना के अनुकूल कवि ने पद्मावती के सौंदर्य वर्णन में अधिक से अधिक उत्कृष्ट अप्रस्तुतों का विधान किया है।

'पद्मावत' में रत्नसेन का पद्मावती तक पहुंचने वाला प्रेम-पथ का स्थूल आभास है। कवि ने यहां प्रेम पथिक रत्नसेन में सच्चे भक्त का स्वरूप दिखाया है। 'पद्मावत' की कथा में कवि के अनुसार शरीर चित्तौड़ का प्रतीक है, मन राजा का, हृदय सिंहलगढ़ का और पद्मावती बुद्धि का प्रतीक है, पथ प्रदर्शन करने वाला तोता गुरु का प्रतीक है। वास्तव में बिना गुरु के कोई सन्मार्ग पर नहीं चल सकता। कवि ने नागमती को दुनिया के धंधे का प्रतीक कहा है और घोषणा की है कि जो उनके चक्कर में पड़ा व संभल न सका। राघवचेतन को कवि ने शैतान का प्रतीक कहा है। अलाउद्दीन को वह माया के रुप में मानता है, इस प्रकार कवि कहता है कि 'पद्मावत' की प्रेम-कथा का अध्ययन इन प्रतीकों के प्रकाश में ही करना चाहिए।

जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती के रूप सौंदर्य का जो वर्णन किया है उसमें लौकिक सौंदर्य का वर्णन करते-करते कवि की दृष्टि अलौकिक सौंदर्य—परमसत्ता या ईश्वर सत्ता के सौंदर्य—की ओर पहुंच जाती है। पद्मावती का रूप वर्णन अधिकांश में अलौकिक है और अपना आध्यात्मिक अर्थ रखता है। 'पद्मावत' में पद्मावती ईश्वर का प्रतीक है, उसका सौंदर्य अपरिमेय, अलौकिक और दिव्य है। उसके इस लोकोत्तर सौंदर्य की झांकी निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

''कंचन रेख कसौटी कसी,
जनु धन दामिनी परगसी।
जहं-जहं बिहंसी सुभावहिं हंसी,
तहं-तहं छिटकि जोति परगसी।''

इन पंक्तियों में उस परमसत्ता के सौंदर्य का वर्णन किया गया है, जिसके सौंदर्य से ही सारे संसार के विभिन्न पदार्थों को सौंदर्य की प्राप्ति होती है। जिसकी आभा से ही रत्न, पदार्थ, माणिक्य और मोतियों को आभा प्राप्त होती है और जिसकी मुस्कान ही सारे संसार में व्याप्त होकर ज्योतित हो उठती है। जायसी ने सौंदर्य के सृष्टि-व्यापी प्रभाव की कल्पना करके उसकी अलौकिकता की ही व्यंजना की है। वह उसी परमसत्ता का सृष्टि-व्यापी और अमित प्रभावी सौंदर्य है। उस अमित सौंदर्यशाली के नेत्रों की पुतलियों के डोलने से संसार डोलने लगता है और उसके मंद-मंद मृदुहास के प्रभाव से शुभ्र उज्ज्वल शोभा अनेक रुप धारण करके मानसरोवर के बीच फैल जाती है। उस सौंदर्य में एक विशेष पवित्रता है, जिसके प्रभाव से—स्पर्श मात्र से जन्म-जन्मांतर के पाप धुल जाते हैं और उस असीम रूप-शाल के स्पर्श से मानसर को भी रूप की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित पंक्तियों में इसी सौंदर्य का वर्णन हुआ है—

''जग डोलै डोलत नैनाहां।
उलटि अडाए जाहिं पल माही।
××× ××× ×××
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा,
भई तहं आपे जहां जो देखा।
पावा रुप रुप जस चाहा,
ससि मुख सहुं दरपन होई रहा।।
नयन जो देखा कंवल भा,
नीरमल नीर सरीर,
हंसत जो देखा हंस भा,
दसन जोति नगहीर।''

ईश्वरीय सत्ता की यह प्रेममय और सौंदर्यमय कल्पना ही जायसी की आध्यात्मिकता का आधार है।

जिस प्रकार रत्नसेन पद्मावती के सौंदर्य पर मुग्ध होता है, उसी प्रकार भक्त हृदय भी परमात्मा के सौंदर्य पर मोहित होता है। रत्नसेन की मुग्धावस्था के चित्रण में कवि ने ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति का चित्रण किया है। निम्नलिखित पंक्तियों में इस ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति द्रष्टव्य है—

''सुनतहि राजा गा मुरझाई,
जानौं लहरि सुरुज कै आई।''

पद्मावती के रूप को सुनकर बेसुध हो जाने की स्थिति में कवि ने ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन किया है।

पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम पूर्वापर है।

पहले पद्मावती के अलौकिक रूप सौंदर्य का वर्णन सुन रत्नसेन के हृदय में प्रेमव्यथा उत्पन्न होती है, पीछे पद्मावती के हृदय में उस व्यथा के प्रति सहानुभूति।

''सुनि के धनि, जारी अस काया।
तन भा नयन, हिये भइ माया।''

यह 'माया' या सहानुभूति प्रेम की पवित्र जननी होती है। रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम विषमता से समता की ओर प्रवृत्त होता है। अब प्रश्न उठता है कि जायसी ने विषम प्रेम से आरंभ क्यों नहीं किया, आरंभ ही से सम प्रेम क्यों? इसका उत्तर है कि जायसी को इस प्रेम को लेकर भगवत्पक्ष में भी घटाना था। ईश्वर के प्रति प्रेम का उदय पहले भक्त के हृदय में होता है। ज्यों-ज्यों वह प्रेम बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों भगवान की कृपा दृष्टि भी होती जाती है, यहां तक कि पूर्ण प्रेमदशा को प्राप्त भक्त भगवान का प्रिय भी हो जाता है। प्रेमी होकर प्रिय होने की पद्धति भक्तों की है। राजा रत्नसेन जब सिंहल द्वीप के पास सातवें समुद्र में पहुंचता है तब दुःख की सारी छाया हट जाती है, आनंद की अमंद आभा फूटती दिखाई देती है और हृदय की कली खिल जाती है। यह अवस्था है साधक का अपनी साधना के फल के निकट पहुंचना, जबकि सारे भ्रम और संताप दूर होते दिखाई पड़ते हैं और ब्रह्म की आनंदमयी ज्योति के साक्षात्कार से आत्मा अपने शुद्ध रूप की ओर अग्रसर होती जान पड़ती है।

मंदिर में पद्मावती के आने पर रत्नसेन, जो बेसुध होकर सो गया है, इस बात की व्यंजना की गई है कि ईश्वर बराबर सामने रहता है, पर जो इस संसार की माया में लिप्त होकर सोए रहते हैं, उन्हें प्रभु का साक्षात्कार नहीं होता, जो योगी जानते हैं उन्हीं को होता है— ''तबहुं न जागा, गा तू सोई। जागे भेंट, न सोए सोइ।'' हीरामन तोते के मुख से सिंहलद्वीप और पद्मावती का वर्णन सुन बेसुध राजा जब जागता है तब अपने चित्तौड़ के राजपाट और घरबार से उसकी दृष्टि फिरकर उस सिंहलद्वीप की ओर लग जाती है। यह दशा उस सच्चे भावुक जिज्ञासु की है जो गुरु से ब्रह्मज्योति का आभास पाकर उसी की ओर प्रवृत्त हो जाता है और इस संसार के सब व्यवहार उसे अज्ञानांधकार के समान लगते हैं। साधक के मार्ग में विघ्नों का स्वरूप दिखाने के लिए ही कवि ने राजा रत्नसेन के लौटते समय तूफान की घटना का वर्णन किया है। लोभ के कारण राजा विपत्ति में फंसता है और लंका राक्षस उसे मिलकर भटकाता है। यह लंका का राक्षस शैतान है, जो साधकों को भटकाया करता है। अंत में रत्नसेन का सातवें समुद्र में पहुंचने पर दुख का घट जाना, आनंद का प्रसार होना, सूर्य-किरण का उदय होना, आदि के कथन द्वारा साधक का अपनी साधना के निकट पहुंचना, उस समय सारे भ्रमों और संतापों का दूर हो जाना और आत्मा का अपने स्वरूप की ओर अग्रसर होना व्यंजित हुआ है।

प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनंदमयी और निर्मल हो जाती है। जो बातें पहले नहीं सूझती थीं वे सूझने लगती हैं, चारों और सौंदर्य का विकास दिखाई पड़ने लगता है। प्रेम का क्षीर-समुद्र अपार और अगाध है। जो इस क्षीर-समुद्र को पार करते हैं उसकी शुभ्रता के प्रभाव से 'जीव' संज्ञा को त्याग शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं—

''जो एहि खीर समुद महं परे,
जीव गंवाई, हंस होई तरे।''
××× ××× ×××
''फिर तो वे बहुरि न आइ मिलहिं एह छारा।।''

प्रेम की एक चिंगारी यदि हृदय में पड़ गई और उसे सुलगने दिया जाए तो ऐसी अद्भुत अग्नि प्रज्ज्वलित हो सकती है जिससे सारे लोक विचलित हो जाएं—

''मुहमद चिनगी प्रेम कै
सुनि महि गगन डेराइ,
धनि बिसहीं औ धनि दिया,
जहं अस अगिनी समाइ।''

भगवत प्रेम की यह चिंगारी अच्छे गुरु से ही प्राप्त होती है। गुरु उस प्रिय (ईश्वर) के रूप को बहुत थोड़ा आभास दे सकता है—उसे शब्दों द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त करना असंभव है। भावना के निरंतर उत्कर्ष द्वारा शिष्य को उत्तरोत्तर अधिक साक्षात्कार प्राप्त होता जाएगा और उसके प्रेम की मात्रा बढ़ती चली जाएगी। प्रेम में प्रिय के साक्षात्कार के अतिरिक्त और किसी सुख की कामना नहीं होती। प्रेम की कुछ विशेषता का वर्णन जायसी ने हीरामन तोते के मुंह से भी कराया है। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर फिर नहीं जा सकता। प्रेम बढ़ जाने पर और किसी भाव के लिए स्वतन्त्र स्थान नहीं छोड़ता।

ऊपर कथा-प्रसंगों में आध्यात्मिक व्यंजनों के विवेचन में यह दिखाया जा चुका है कि जायसी से जिस प्रेम का चित्रण किया है, वह जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम है, इसलिए प्रेमानुभूतियों का वर्णन कवि ने ब्रह्म-साक्षात्कार की अनुभूति के समान ही किया है। इस प्रेम तत्त्व की एक विशेषता है—विरह-विशिष्टता, जिनका व्यापक वर्णन करके कवि ने उस असीम सत्ता के आध्यात्मिक विरह का ही संकेत दिया है। जायसी के अनुसार प्रेम में अपार विरह होता है। जिस तरह का एक वर्णन यहां दृष्टव्य है, जो परमसत्ता का ही विरह है, जिसकी गर्मी से स्वर्ग और पाताल भी जलते रहते हैं, सूर्य उसी के विरह की गर्मी में कांप रहा है और रात-दिन जलता रहता है, नक्षत्र और तारागण भी उसी के विरह में जलते रहते हैं—

''विरह की आगि सूर जरि कांपा,
रातिहिं दिवस जरै ओहि तापा।
औ सब नखत तराई जरहीं,
टुटहि लूक धरति महं परहीं।''

इस प्रकार जायसी ने जगत के नाना व्यापारों को प्रेम की आध्यात्मिक छाया के समान चित्रित किया है। वियोग पक्ष में वही वियोग, अलौकिक रूप में सृष्टि-व्यापी प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है। विरह के इस विशुद्ध आध्यात्मिक भाव क्षेत्र में अग्नि-पवन इत्यादि सब उस असीम सत्ता तक पहुंचाने के लिए व्याकुल रहते हैं। सारी सृष्टि उस परमसत्ता में विलीन होने को विह्वल रहती है और अंततः उसी में विलीन हो जाती है।

ए- 64 इन्द्रापुरी, लोनी, गाजियाबाद (उ.प्र.)

विरह और जायसी का काव्य

अनुराग शर्मा

वेदना हृदय की मादक टीस होती है। विरह की अग्नि में तापित होकर वासना अपनी मलिनता खो देती है और उस समय प्रेम का शुद्ध कंचन जैसा दैदीप्यमान स्वरूप नेत्रों को मुग्ध कर लेता है। वस्तुतः विरह प्रेम को परखने का एक साधन है। संयोगकाल के समय जितनी मादकता, मधुरता और खुशी का बोध होता है, विरह में उतनी ही अधिकता के साथ पीड़ा और बेचैनी जान पड़ती है। विरह को प्रेम की दृढ़ता का परिचायक माना जाता है। अतः काव्य जगत में विरह वर्णनों का आधिक्य दिखलाई पड़ता है। विरह युक्त काव्य हृदय द्रावक, मार्मिक एवं मनोरम होते हैं, संभवतः इसी कारण विरह-वेदना से युक्त काव्य पाठक वर्ग को रुचिकर लगते हैं।

जायसी विरह वेदना के अमर गायक हैं। उनकी चित्तवृत्ति वियोग वर्णन में ही अधिक रची बसी है। जायसी के विरह-वर्णन में वेदना की अधिकता, हृदय की दृढ़ता और संवेदनशीलता के साथ-साथ सरलता, सात्विकता एवं प्रभावोत्पादकता भी दृष्टिगोचर होती है। जायसी ने महाकाव्य में नागमती की विरह-वेदना के साथ-साथ पद्मावती की वियोग-व्यथा का भी चित्रण किया है। नागमती वियोग खंड, पद्मावती-नागमती विलाप खंड और पद्मावती वियोग खंड इस प्रकार के स्थल हैं, जहां विरह-वेदना के विविध रूपों की झांकी चित्रित की गई है। इसमें सर्वाधिक प्रभावयुक्त एवं मार्मिक विरह-वर्णन नागमती वियोग खंड के अंतर्गत किया गया है। नागमती का का विरह-वर्णन सरस, गंभीर एवं सात्विकता से युक्त है। इसीलिए नागमती के विरह-वर्णन को हिंदी साहित्य की अनुपम निधि ठहराया गया है।

जायसी ने पद्मावत में संयोग तथा विप्रलंभ दोनों प्रकार के शृंगारों का वर्णन किया है वैसे संपूर्ण काव्य में विप्रलंभ शृंगार का ही प्राधान्य है। सूफी साधक अपनी साधना में वियोग को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं, अतएव 'पद्मावत' में विप्रलंभ शृंगार का प्राधान्य होना स्वाभाविक ही है। कवि ने वियोग के वर्णन में जिस कुशलता का परिचय दिया है उसी कुशलता का परिचय संयोग के भी वर्णन में है। संयोग शृंगार के वर्णन के लिए जायसी ने 'षड्ऋतु-वर्णन' का सहारा लिया है और विप्रलंभ के लिए 'बारहमासे' का।

भारतीय साहित्य में इन दोनों की परंपरा रही है। वैसे बारहमासे की परंपरा अपभ्रंश में ही देखने को मिलती है। विनयचंद्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' ईसवी सन् तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की रचना है। उसमें राजनीति के विरह वर्णन के लिए 'बारहमासा' पद्धति को अपनाया गया है। इसी प्रकार 'धर्मसूरि स्तुति' में भी बारहमासा मिलता है लेकिन इसमें कवि ने नायिका के विरह वर्णन के बदले अपने गुरु का स्मरण किया है। प्राकृत की अंगविज्जा में बारहमासा का फुटकल वर्णन मिलता है। 'अब्दुल रहमान' के 'संदेश रासक' में षड्ऋतु-वर्णन का उपयोग नायिका के विरह वर्णन के लिए किया गया है। 'उपमान' की 'चित्रावली' में षड्ऋतु-वर्णन तथा बारहमासा दोनों का उपयोग नायिका के विरह की पीर के वर्णन के लिए ही हुआ है। नूर मुहम्मद की 'इंद्रावती' में षड्ऋतु-वर्णन का उपयोग संयोग शृंगार के वर्णन के लिए किया है।

पद्मावत विशुद्ध रूप से लोकाख्यानक काव्य है। इसे सूफी साधना परक धार्मिक ग्रंथ मानकर भक्तिभाव का प्रचार करना अथवा इसमें ऐतिहासिकता की खोज करते रहने से इसके लोक-पक्ष पर सर्वांगीण प्रकाश नहीं पड़ पाया। सच पूछा जाए तो 'पद्मावत' को साहित्य में जो स्थान मिलना चाहिए था वह अब तक इसे प्राप्त नहीं हो पाया है। 'पद्मावत' की रचना सोलहवीं शताब्दी में हुई है। यह अवधी भाषा का लौकिक प्रेमाख्यानक काव्य है। इसके पूर्व हिंदी में सबसे पहला प्रेमाख्यानक काव्य मुल्ला दाउद ने 'चंदायन' लिखा। किंतु चंदायन में मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास अभिव्यक्त नहीं हो पाता है। 'पद्मावत' के बाद की अवधी भाषा की दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना गोस्वामी तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' है। परंतु मानसकार ने जिस अभिजात वर्ग की संस्कृति का वर्णन अपने काव्य-ग्रंथ में किया है, वह मध्यकालीन लोक संस्कृति का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करने से अपेक्षाकृत दूर है। इसी प्रकार कबीर और सूर ने भी अपने-अपने काव्य-ग्रंथों में लोकतत्वों का समावेश तो किया है किंतु वहां भी मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का रूप व्यक्त नहीं हो पाया है। जायसी ने मध्यकालीन संस्कृति का यथार्थ चित्र अपने काव्य में उतारने की चेष्टा की है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—''जायसी सच्चे पृथ्वीपुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने संनिकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन

है। गांव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण-सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उस सीमा के भीतर हर्षित स्वर से कवि ने अपने ज्ञान का स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियां, भावनाएं, मान्यताएं मानों स्वयं छंद में बंधकर उनके काव्य में गुंथ गई है।''[1]

कवि जायसी का वियोग-वर्णन अत्यंत ही हृदयग्राही है। 'पद्मावत' में स्थूलों पर यह वर्णन जमकर किया गया है—'नागमती-वियोग खंड' एवं 'पद्मावती-नागमती विलाप खंड'। नागमती-वियोग खंड तथा नागमती-संदेश खंड विप्रलंभ-शृंगार के उत्कृष्ट उदाहरणों में हैं। हिंदी साहित्य में विरह-वर्णन में जायसी आध्यात्मिकता को जैसे भूल-से गए हैं। नागमती आदर्श पत्नी है। उसके अंतर का निगूढ़ और गंभीर प्रेम जायसी के विरह-वर्णन में प्रकट हुआ है। उसकी करुण दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन कवि ने किया है। जायसी की नागमती एक गृहिणी के रूप में चित्रित हुई है। साधारण स्त्री के सुख-दुःख को ध्यान में रखते हुए ही जायसी ने नागमती के विरह का वर्णन किया है अतएव वह हृदय को अभिभूत कर देता है। नागमती ईर्ष्यालु है, पति के मंगल की कामना करने वाली है, वह अपने सुख-दुःख की उपेक्षा कर पति के सुख में अपने को सुखी मानने वाली है। जायसी के वियोग-वर्णन में नागमती का यह रूप बड़े सुंदर ढंग से उभर आया है। अतएव वह वर्णन अत्यंत करुण हो उठा है।

जायसी ने संयोग शृंगार के लिए षड्ऋतु वर्णन का सहारा लिया है। यहां पर षड्ऋतु का वर्णन संयोग के उद्दीपनन के लिए किया गया है। राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पावस की शोभा का कैसा अनुभव हो रहा है। इसका वर्णन जायसी ने इस प्रकार किया है—

''पदमावति चाहत ऋतु पाई।
गगन सोहावन भूमि सोहाई।।
चमक बीजु बरसै जल सोना।
दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रंगराति पीतम संग जागी।
गरजै गगन चौंकि गर लागी।।
सीतल बूंद ऊंच चौपारा।
हरियर सब देखाई ससारा।।''[2]

जायसी ने पद्मावत में षड्ऋतु-वर्णन का आश्रय लेते हुए संयोग-शृंगार का बड़ा ही प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। पद्मावती जिस समय शृंगार करके राजा के पास जाती है उस समय का कवि ने कैसा मनोहर चित्र खड़ा किया है—

''साजन लेइ पठावा, आयपु जाइ न भेंट।
तन मन जीवन साजि कै देई चली लेइ भेंट।''[3]

आचार्य शुक्ल के अनुसार—''संयोग-शृंगार की रीति के अनुसार जायसी ने अभिसार का पूरा वर्णन किया है। पद्मावती के समागम की कुछ पंक्तियां अश्लील भी हो गई हैं, पर सर्वत्र जायसी ने प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है। शारीरिक भोग विलास का वर्णन कवि ने यहां कुछ व्यौरे के साथ प्रस्तुत किया है, पर इस विलासिता के बीच-बीच में प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित दिखाई पड़ता है। राजा जिससे मतवाला हो रहा है। वह प्रेम की सुरा है जिसका जिक्र सूफी शायरों ने बहुत ज्यादा किया है—

''सुनु धनि! प्रेम सुरा के पिए।
मरन जियन डर रहै न हिए।।
जोहि मद तेहि कहां संसारा।
की सो धूमि रह की मतवारा।।
जाकहं होइ बार एक लाहा।
रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा।।
अरथ दरब सो देई बहाई।
की सब जाहु, न जाहु पियाई।।''[4]

जायसी ने पद्मावत में संयोग-शृंगार वर्णन में गृहिणी रूप की भी चर्चा की है। किंतु संयोग-शृंगार के वर्णन में वही रूप कवि को बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर सका। भारतीय संस्कृति एवं आदर्श को ध्यान में रखकर सखियां पद्मावती को समझाती हैं कि माता-पिता कन्या का विवाह करके निश्चिंत हो जाते हैं लेकिन जन्म-भर पति से ही निर्वाह होता है—

''मातु पिता जौ बियाहै सोई।
जनम निबाह कंत संग सोई।।''[5]

जायसी ने विरह वर्णन के लिए जिस पद्धति को अपनाया है, वह बारहमासा पद्धति है। बारहमासे का प्रारंभ उन्होंने भारतीय परंपरा एवं संस्कृति के अनुरूप आषाढ़ मास से किया है। सावन मास लग गया है। इस समय ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः नीम इत्यादि वृक्षों के ऊपर झूला डालकर सभी सखियां अपने प्रियतम के साथ झूला झूल रही हैं किंतु नागमती का संपूर्ण हृदय विरहाग्नि हृदय के झूले में बैठा हुआ झूला झूल रहा है—

''सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला।
हरियर भूमि, कुसुंभी चोला।।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा।
विरह झुलाइ देइ झकझोरा।।''[6]

नागमती-वियोग खंड में जायसी ने अपनी भावुकता का बड़ा भारी परिचय इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरहदशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने को केवल साधारण स्त्री के रूप में देखती है। इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरह वाक्य छोटे-बड़े सबके हृदय को समान रूप में स्पर्श करते हैं। यदि कनकपर्यंक, मखमली सेज, रत्नजटित अलंकार, संगमरमर के महल, खसखाने इत्यादि की बातें तो होती तो वे जनता के एक बड़े भाग के अनुभव से कुछ दूर की होतीं। जायसी ने स्त्री जाति की या कम से कम हिंदू गृहणी मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृंगार के अत्यंत समुज्वल रूप का विकास दिखाया है। देखिए, चौमासे में स्वामी के न रहने से घर की जो दशा होती है वह किस प्रकार गृहणी के विरह का उद्दीपन करती है—

''पुष्य नखत सिर ऊपर आवा।
हौं बिनु नाह, मंदिर को छावा?''[7]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का मत है कि 'नागमती' का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामान आता है उसे वह अपना दुःखड़ा सुनाती है। वह पुण्यदशा धन्य है, जिसमें ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुःख सुनाने से भी जी हल्का होगा। सब जीवों का शिरोमणि मनुष्य और मनुष्यों का अधीश्वर राजा। उसकी पटरानी जो कभी बड़े-बड़े राजाओं और सरदारों की बातों की ओर भी ध्यान न देती थी, वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना को कह रही है, उनके सामने अपना हृदय खोल रही है। हृदय की इस उदार और व्यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेमदशा के भीतर ही वर्णन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। मारने के लिए शत्रु का पीछा करता हुआ क्रोधातुर मनुष्य पेड़ों और पक्षियों से पूछता हुआ कहीं नहीं कहा गया है कि 'भाई। किधर गया?' वाल्मीकि, कालिदास आदि से लेकर जायसी, सूर, तुलसी आदि महाकावियों तक सब ने इस दशा का सन्निवेश विप्रलंभ (या कहीं-कहीं करुण) में ही किया है। वाल्मीकि के राम सीता हरण होने पर वन-वन पूछते फिरते हैं—''हे कंदव! तुम्हारे फूलों से अधिक प्रीति रखने वाली मेरी प्रिया को यदि जानते हो तो बताओ! हे मृग! उस मृगनयनी को तुम जानते हो?''

इसी प्रकार तुलसी के राम भी वन के पशु पक्षियों से पूछते हैं—

''हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नयनी।''[8]

विप्रलंभ शृंगार ही 'पद्मावत' में प्रधान है। विरहदशा के वर्णन में जहां कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है, वहां कोई अरुचिकारक वीभत्स दृश्य नहीं आया है। कृशता, ताप, वेदना आदि के वर्णन में भी उन्होंने शृंगार के उपयुक्त वस्तु सामने रखी है, केवल उसके स्वरूप में कुछ अंतर दिखा दिया है। जो पद्मिनी स्वभावतः पद्मिनी के समान विकसित रहा करती थी वह सूखकर मुरझाई हुई लगती है—

''कंवल सूख पखुरी बेहरानी।
गलि गलि कै मिलि छार हेरानी।।''[9]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के नागमती संबंधी विवेचन के आधार पर ही डॉ. रामविलास शर्मा का मत है—''नागमती का विरह-वर्णन, गोरा बादल की वीरता आदि लोक-जगत के व्यवहार हैं जिनके वर्णन के लिए शुक्ल जी ने जायसी की प्रशंसा की है। जायसी ने अलौकिक प्रेम का वर्णन अवश्य करना चाहा, किया भी, लेकिन उनकी महत्ता का कारक प्रेम की लौकिकता है, अलौकिकता नहीं।''[10]

जायसी के पद्मावत में वर्णित विरह का दुःख ऐसा नहीं है कि चारों तरफ जो वस्तुएं दिखें उनसे कुछ मन बहले। उन वस्तुओं को देखने पर और भी विरही की कुछ ध्यान अपने ऊपर जाता है और उस दशा का दुःसह स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। नागमती देखती है कि बहुतों के बिछड़े हुए प्रिय मित्र आ रहे हैं पर मेरे प्रिय नहीं आ रहे हैं। यह दशा उसे और भी व्याकुल बना देती है। पपीहे का प्रिय पयोधर आ गया, सीप के मुंह में स्वाति की बूंद पड़ गई, पर नागमती का प्रिय न आया—

''चित्रा मित्र मीन कर आवा।
पपिहा पीउ पुकारत आवा।।
स्वाति बूंद चातक मुख परे।
समुद सीप मोती सब भरे।।
सरक संवरि हंस चलि आए।
सारस कुरलहि खंजन देखाए।।''[11]

जायसी के विरहोद्गार अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। जायसी को हम विप्रलंभ शृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, जो कोमलता, जो सरलता और जो गंभीरता इनके वचनों में है वह अत्यंत दुर्लभ है। विरहणी नागमती की विरहाग्नि अत्यन्त तीव्र है। वह अखिल सृष्टि में व्याप्त है। वन, उपवन, आकाश-पाताल सब उसी अग्नि में जल रहे हैं। कौआ यदि काला है तो उसी विरहाग्नि के धुएं से और भौंरा यदि काला है तो वह भी उसी विरहाग्नि के धुएं के चलते। नागमती ने प्रिय को जो संदेश करवाया है, भौंरे और कौए द्वारा प्रेषित करवाया है उसमें इस तथ्य का उल्लेख है—

''पिउ सों कहेउ संदेसड़ा
हे भौरा! हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई
तेहि क धुवां हम्ह लाग।।''[12]

जायसी के विरह वर्णन की पराकाष्ठा उस समय देखने लायक है। जब वे यह चित्रित करते हैं कि विरहणी नागमती को सभी पर्व-त्योहार फीके लग रहे हैं। कार्तिक का महीना है चारों तरफ शरद-ऋतु की चांदनी फैली हुई है किंतु उस विरहणी की हालात विरहाग्नि में इस कदर है कि वह शीतलता उसे दाहक लग रही है। लोग दीपावली का पर्व मना रहे हैं किंतु वह तो अपने प्रिय आगमन के मार्ग को अपलक नेत्रों से जोह रही है—

''कातिक सरद चन्द उजियारी।
जग सीतल, हौं विरहै जारी।।
चौदह करा चांद परगासा।
जनहुं जरै सब धरति अकासा।।
तन मन सेज करै अगिदाहू।
सब कहं चंद, भएउ मोहि राहू।।
चहूं खंड लागै अंधियारा।
जौ घर नाही कंत पियारा।।
अबहू निठूर! आउ एहि बारा।
परब देवारी होई संसारा।।''[13]

इसी तरह जायसी ने बारहमासे के माध्यम से नागमती के हृदय की वेदना और पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। फागुन के महीने में सब तो होली का त्योहार मना रहे हैं किंतु नागमती तो विरहाग्नि में ही जल रही है—

''फागु करहि सब चांचरि जोरी।
मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।।''[14]

प्रायः इस समय गांव के समस्त बालक-वृद्ध इत्यादि सभी लोग बड़े उत्साह के साथ रंग,

अबीर, गुलाल इत्यादि एक दूसरे को लगाते हैं, उसी तरह गांव की महिलाएं भी। प्रायः भारतीय संस्कृति में यह देखने को मिलता है कि जिनके पति परदेस में रहते हैं, वे सभी पर्व-त्योहारों पर अपने गांव वापस आ जाते हैं किंतु नागमती के प्रिय नहीं आए हैं इसलिए उसको ये सब पर्व-त्योहार फीके लग रहे हैं।

जायसी ने पद्मावत में विरह का जो स्वरूप अंकित किया गया है वह इसलिए अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध हुआ है क्योंकि जायसी ने विरह-वेदना का यथार्थ और वास्तविक चित्र अंकित किया है। नागमती एक ऐसी विरहणी है जिसकी विरह-व्यथा से सारा जगत जल रहा है। उसके विरह ताप की अतिशयता से बादल काले हो गए हैं। सूर्य और चंद्र भी उसी विरहग्नि के ताप में जल रहे हैं—

''अस पारजरा विरह कर गठा।
मेघ साम भये धूम जो उठा।''[15]

जायसी ने अपने पद्मावत में केवल विरह-ताप का वर्णन ही नहीं किया अपितु विरही जनों की पीड़ा, वेदना एवं टीस की मार्मिक अभिव्यक्ति भी की है। नागमती की विरह वेदना के हृदय विदारक दृश्य पाठकों को भावावेश में कर देते हैं। नागमती का अपने पति के प्रति प्रेम विरह में और भी प्रगाढ़ होता जा रहा है। नागमती ने विरह वेदना को सहर्ष स्वीकारा भी है। क्योंकि इस विरहणी अवस्था में उसका प्रेम एक मजबूत स्थिति में आ खड़ा हुआ है। प्रायः यह देखने को मिलता है कि विरहावस्था में चाहे वह नायक हो या नायिका किसी न किसी रूप में दोनों को एक-दूसरे से शिकायत रहती है किंतु जायसी ने यह दिखलाया है कि नागमती को अपने प्रिय से कोई शिकायत नहीं है, वह तो स्मृतियों के सहारे निर्निमेष नेत्रों से प्रिय के प्रत्यागमन की आशा में अपना जीवन काट रही है। नागमती को यह आभास हो गया है कि उसका प्रिय किसी चतुर नागरी के वश में हो गया है अन्यथा वह अब तक अवश्य लौट आता—

''नागर काहु नारि बस परा।
तेइ मोर पिउ मोसों हरा।।''[16]

विजय देव नारायण साही के अनुसार, ''नागमती का विरह-वर्णन भावों का तीव्र संगीतात्मक संप्रेषण मात्र नहीं है। वह हमारे आस्वादन में कुछ और नयी अनुभूतियां जोड़ता है। पूरा-विरह वर्णन बारहमासे की शक्ल में नागमती की वाणी के द्वारा ग्रहण करता है। नागमती का पार्थिव शरीर और महल की सखियां शुरू की कुछ पंक्तियों में झीनी-सी दिखलाई पड़ती हैं। अचानक कल्पना एक झटके से मुक्त हो जाती है और हमारा साक्षात्कार आवाज, सिर्फ आवाज से होने लगता है।... किसकी आवाज है यह नागमती की? इस आवाज में एक पारदर्शी निर्वैयक्तिकता है जो नागमती को भी पीछे छोड़ जाती है। शनैः-शनैः यह अंतर्वर्ती आवाज पूरे चित्तौड़ की और उससे भी आगे बढ़कर उस पूरे इतिहास लोक की आवाज हो जाती है। जिसे छोड़कर रत्नसेन चला गया है।''[17]

जायसी के विषय में विजयदेव नारायण साही का एक मत यह भी है कि ''...जायसी ने लिखा चाहे सोलहवीं शताब्दी में हो, लेकिन उन्हें वस्तुतः आविष्कृत इस बीसवीं शताब्दी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। इस अर्थ में वे बीसवीं शताब्दी के ही कवि हैं, लेकिन उनकी सृजनशीलता एक गहरे अर्थ में आधुनिक हैं।''[18]

जायसी ने पद्मावत में विरह के ऊहात्मक वर्णन भी किए हैं जिसके चलते ऐसे स्थलों पर पाठकों को विरह-वेदना की मार्मिक अनुभूति तो नहीं हो पाती किंतु कवि की कल्पना शक्ति का परिष्कार अवश्य देखने को मिल जाता है। फारसी पद्धति से प्रभावित होने के कारण जायसी के विरह-वर्णन में कहीं-कहीं ऐसे भी दृश्य हैं जो वीभत्स हो गए हैं। नागमती विरहाग्नि में इस कदर व्यथित है कि उसकी आंखों से आंसुओं के स्थान पर रक्त निकल रहा है। यथा—

''कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई।
रकत आंसु घुंघुची बन बोई।।''[19]

जायसी के विरह-वर्णन में सात्विकता की प्रधानता है। नागमती भोग विलास की इच्छा से रहित विरहणी है। वह तो केवल प्रिय दर्शन के लिए लालायित है। विरहणी नागमती भोगों के प्रति अपनी उदासीनता व्यक्त करते हुए कहती है—

''मोहि भोग सौं काज ने बारी।
सौंह दीठि की चाहनहारी।।''[20]

विरह की आग में जलकर प्रेम और भी पवित्र हो जाता है। सात्विक और उदात्त बन जाता है। दुःख, वेदना और पीड़ा को झेलने वाला व्यक्ति अपने हृदय की उदारता एवं विशालता का परिचय देता है। विरहणी नागमती का सारा अहंकार समाप्त हो गया है। अब वह एक सामान्य नारी की भांति वन-वन भटकती हुई जंगल के पशु-पक्षियों से अपना सामंजस्य करती है, उन्हें अपनी विरह वेदना सुनाती है। उसकी विरह वेदना को सुनते ही घोसलों में बैठे हुए पक्षियों की नींद हराम हो जाती है—

''फिरि-फिर रोव, कोई नहीं डोला।
आधी रात विहंगम बोला।।
तु फिरि-फिरि दाहै सब पांखी।
केहि दुःख रैनि न लावसि आंखी।।''[21]

विरह वर्णन में प्रायः कवियों ने विरह दशाओं का या काम दशाओं का भी निरूपण किया है। चिंता, अभिलाषा, गुण-कथन, प्रलाप, उन्माद, जड़ता आदि से सभी विरहजन्य काम दशाएं बताई गई हैं। जायसी ने भी विरह-वर्णन में इन सभी दशाओं को स्थान-स्थान पर निरूपण भी किया है। नागमती कभी प्रिय के गुणों का स्मरण करती है तो कभी—''कंत कहां लागों ओहि हियरें।''

इस कथन को कहकर अपने हृदय की अभिलाषा को व्यक्त करती है। विरह की अधिकता में उसे उन्मादग्रस्त बना दिया है। वह सबसे अपनी पीड़ा व्यक्त करती फिरती

है। उसकी आकांक्षा अत्यंत पवित्र है वह चाहती है कि अपने शरीर को जलाकर राख कर दूं और उस मार्ग पर बिखेर दूं जहां प्रियतम अपने चरण रखेगा। वेदना का जैसा मार्मिक निवारण, निर्मल, गम्भीर चित्रण जायसी ने किया है वैसा विश्व साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलता है।

''यह तन जारौ छार कै,
कहौ कि 'पवन! उड़ाव।''
मुक तेहि मारग उडि परै
कंत धरै जहं पांव।।''[22]

जायसी ने पद्मावत में विरहणी नागमती के साथ प्रकृति की सहानुभूति और संवेदना का भी चित्रण किया है। नागमती की विरहाग्नि से प्रकृति भी दग्ध है। पशु-पक्षी पेड़-पौधे, लता-पुष्प विरहणी नागमती के दुःख के साथी एवं साक्षी बन पड़े हैं। वह अपनी करुण वेदना इन्हें सुनाती है और उसके विरह संदेश को सुनकर पक्षी जलने लगते हैं। वृक्ष पत्रविहीन हो जाते हैं–

''जहि पंछी के नियर ह्वै कहै विरह कै बात।
सोई पंछी जाइ जरि तरिवर होइ निपात।।''[23]

एक अन्यत्र स्थान पर जायसी ने दिखाया है कि जब नागमती अपनी विरह वेदना पक्षियों को सुनाती है तब उसकी विरह वेदना को सुनकर एक पक्षी नागमती के प्रति संवेदना प्रकट करता है। नागमती उस पक्षी से कहती है–

''चारिउ चक्र उजार भए,
कोई न संदेसा टेक।
कहौ विरह दुःख आपन
वैठि सुनहु दंड एक।।''[24]

इस विरह व्यथा को सुनकर वह पक्षी संदेशा ले जाने को तैयार हो जाता है। पद्मावती से कहने के लिए नागमती ने जो संदेशा कहा है, वह अत्यंत मर्मस्पर्शी है। उसमें मान गर्व आदि का नामों निशान भी नहीं है, भोग-विलास की इच्छा से परे अत्यंत नम्र, शीतल एवं विशुद्ध प्रेम की झलक से युक्त है–

''पद्मावती सो कहेहु विहंगम।
कंत लोभाइ रहीकरि संगम।।
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा।
मो कहं दिए दुंद दुख पूरा।।
हमहुं बिहाओ संग ओहि पीऊ।
आपुहि पाइ, जान पर जीऊ।।
माहि भोग सौ काज न बारी।
सौह दिस्टि कै चाहनहारी।।''[25]

अतः यह कहा जा सकता है कि जायसी के वियोग श्रृंगार में एक विशेष प्रकार की तड़प और क्रियाशीलता है। जायसी ने अपने ही जीवन के विरह को आंसुओं से भिगोकर अपने काव्य में उडेला है। जायसी के विरह वर्णन में व्यापकता, तीव्रता और मार्मिकता है। यह विरह समस्त जगत्, जड़ और चेतना को द्रवीभूत करने में सक्षम है। विरह की सभी दशाएं उसमें मिल जाती हैं। विरह के प्रसंग में बारहमासा तो अत्यंत विगलित करने वाला और नायिका की विवशता, पति आश्रयता के साथ उसकी कायिक-मानसिक शिथिलता को प्रकट करने वाला है–

''गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि,
सहि न सकहिं वह आगि।
मुहम्मद सती सराहिए,
जरै जो अस पिउ लागि।।''[26]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) पृ.-7, प्रथमावृत्ति
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : संपादक जायसी ग्रंथावली, पृ.-135, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 21वां संस्करण, संवत् 2064 वि.
3. वही, पृ.-31 (भूमिका से)
4. वही, पृ.-39 (भूमिका से)
5. वही, पृ.-120 (पद्मावती-रत्नसेन भेंट)
6. वही, पृ.-138 (नागमती-वियोग खंड)
7. वही, पृ.-34 (भूमिका से)
8. वही, पृ.-29-30 (भूमिका से)
9. वही, पृ.-237 (पद्मावती-नागमती विलाप खंड)
10. डॉ. अभय शुक्ल : भक्ति काल और हिंदी आलोचना, पृ.-100, साहित्य भवन प्राइवेट लि., जीरो रोड, इलाहाबाद
11. वही, पृ.-139 (नागमती-वियोग खंड)
12. वही, पृ.-139 (नागमती-वियोग खंड)
13. वही, पृ.-139 (नागमती-वियोग खंड)
14. वही, पृ.-140 (नागमती-वियोग खंड)
15. वही, पृ.-148 (नागमती-संदेश खंड)
16. वही, पृ.-137 (नागमती-वियोग खंड)
17. डॉ. अभय शुक्ल : भक्ति काल और हिंदी आलोचना, पृ.-100, साहित्य भवन प्राइवेट लि., जीरो रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2000
18. वही, पृ.-101
19. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : संपादक जायसी ग्रंथावली, पृ.-143, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 21वां संस्करण, संवत् 2064 वि.
20. वही, पृ.-144 (नागमती-संदेश खंड)
21. वही, पृ.-144 (नागमती-संदेश खंड)
22. वही, पृ.-141 (नागमती-वियोग खंड)
23. वही, पृ.-143 (नागमती-वियोग खंड)
24. वही, पृ.-144 (नागमती-संदेश खंड)
25. वही, पृ.-144 (नागमती-संदेश खंड)
26. वही, पृ.-142 (नागमती-वियोग खंड)

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-05

पद्मावत : प्रेम, आध्यात्म और समन्वय

स्मृति आनंद

'पद्मावत' मलिक मुहम्मद जायसी की एक अनमोल कृति है। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने त्रिवेणी में इन्हें 'सूर' व तुलसी के समान माना है। पद्मावत भारतीय संस्कृति एवं वेदांत वर आधारित इस्लामी विचारधारा से युक्त एक ऐसा समन्वयात्मक काव्य है, जिसमें जायसी की उदारता एवं उदात्त दृष्टिकोण प्रदत्त हुआ है। पद्मावत में लौकिक व आध्यात्मिक दोनों पक्षों का समन्वय है। आध्यात्मिक पक्ष में जहां इस्लाम के एकेश्वरवाद की व्याख्या है वहीं लोकजीवन पर आधारित नागमती का वियोग वर्णन वर्णित हुआ है। वस्तुतः यह वर्णन भारतीय नारी के अंतःमन का कातर-वियोग-वर्णन है। रत्नसेन के सिंहल चले जाने के उपरांत नागमती चिंतन के क्षणों में एकाकी व व्यक्तिनिष्ठ हो जाती है। अपने मनोभावों को प्रकृति के आधार पर और प्रकृति की एकरूपता के साथ नागमती ने व्यक्त किया है।

'नागमती' पद्मावत की मुख्य पात्र नहीं होते हुए भी काव्य में प्रमुख स्थान रखती है। आध्यात्म के अतिरिक्त लोक-जीवन का जो पक्ष जायसी ने उद्घाटित किया है वस्तुतः वह नागमती के माध्यम से ही हुआ है। प्रेम के दोनों पक्षों—संयोग व वियोग का वर्णन पद्मावत में मिलता है किंतु कवि की तूलिका ने वियोग-वर्णन को ही अधिक आकर्षणमय बनाया है।

जायसी एक सूफी कवि थे और सूफी साधक विरह को ही प्रेम की कसौटी मानते आए थे। विरह में प्रेम की सच्चाई की परीक्षा भी होती थी और अनुभव के पकेपन का प्रमाण भी मिल जाता था। शास्त्रकारों ने वियोग-पक्ष की अनेक मनोदशा मानी है—उत्कंठा, मिलन की कामना, अतीत की स्मृति, कातरता, विह्वलता आदि भाव वियोगावस्था में व्यंजित होते हैं। 'पद्मावत' के रत्नसेन में प्रेम की पहली अनुभूति ही इतनी विकलता पैदा कर गई कि प्रेम के बाहर की दुनिया का कोई अर्थ ही शेष नहीं रहा। अनुभव से ही इस प्रेम की विकलता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था—

''प्रेम धाव दुःख जान न कोई।
जेहिं लागै जानै ते सोई।।''[1]

प्रेम का आकर्षण जितना तीक्ष्ण होता है उसका मार्ग उतना ही कठिन। 'पद्मावत' में वर्णित प्रेम लौकिक और अलौकिक संबंध-स्तरों पर सक्रिय है। रत्नसेन का पद्मावती के लिए प्रेम जहां आध्यात्म के विभिन्न सोपानों की व्याख्या करता है वहीं नागमती-वियोग-वर्णन लौकिक-जीवन का बड़ा ही सहज चित्र प्रस्तुत करता है।

'पद्मावत' एक प्रेम-काव्य है अतः प्रेम की महत्ता की घोषणा इस कथा-काव्य में बार-बार की गई। प्रेम के इस महत्त्व स्मरण से जायसी अपने लक्ष्य को पहचानते हैं।

''तीन लोक चौदह खंड
सबै परै मोहिं सूझि।
प्रेम छांड़ि नहिं लोन किछु
जो देखा मन बूझि।।''[2]

प्रेम स्वयं में पूर्ण व सौंदर्य-युक्त होता है। यह एक ऐसा भावावेग है जो मनुष्य को उसके स्वयं से मुक्त कर एक अलग धरातल पर ले आता है। जहां संयोग का कोमल स्पर्श भी होता है और वियोग का कातर-क्रंदन भी—

''पिउ सो कहेहु संदेसड़ा,
हे भौरा! हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई,
तेहिक धुवां हम लाग।।''[3]

'पद्मावत' की ये पंक्तियां वियोग की कातर-सहज-मार्मिक अभिव्यक्ति करती हैं।

वस्तुतः सूफी मत में प्रेमतत्व की प्रधानता रही, जिसने उस समय की वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक जमीन पर पड़ चुकी जातिवाद की काई को बहुलांश में मिटाने का सफल प्रयास किया। जायसी ने प्रेमगाथा के रूप में उस प्रेमतत्व का वर्णन किया है जो ईश्वर को मिलाने वाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है।

'पद्मावत' की रचना उस समय हुई जब विदेशी शासकों के बढ़ते हुए आतंक ने जनता के साथ-साथ साहित्य को भी अस्थिर कर रखा था। विदेशी शक्ति के भय से 'वीरगाथा-काल' वाले चारण कवि राजस्थान में सिमट के रह गए थे। परंतु सूफियों के प्रवेश से हिंदु-मुसलमान दोनों के दृष्टिकोण में बदलाव आया। पं. रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—''पंडित और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों संप्रदायों के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखने लगे थे। भारतीय जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। एक ओर भक्तिमार्ग के आचार्य महात्मा भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और दूसरी ओर सूफी महात्मा मुसलमानों को ''इश्क हकीकी का सबक पढ़ा रहे थे।''[4]

ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर आए। ये कहानियां हिंदुओं के ही घरों की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से हुआ गया है, जिसे छूते ही मनुष्य-मात्र रंग-रूप आदि भेद-भाव से दूर हो एकत्व का अनुभव करने लगता है। श्री कामेश्वर शर्मा ने 'पद्मावत' की सबसे

बड़ी विशेषता बतलाते हुए लिखा है कि– ''पद्मावत की सबसे बड़ी विशिष्टता यही है कि उसमें अनुभूति की सच्चाई और कल्पना की समृद्धि प्रचुर मात्र में पाई जाती है।''[5]

सूफी धर्म-दर्शन में मान्य अधिकांश सिद्धांत भारतीय-धर्म-दर्शन के फारसी अनुवाद या पर्याय दीख पड़ते हैं। ब्रह्म, जीव और जगत के संबंध में उनकी जो धारणाएं हैं, उनका भारतीय अद्वैतवादी धारा से एक गजब का साम्य बैठता है। यही चिंतन के क्षेत्र का अद्वैतवाद जब भावना के क्षेत्र में उपस्थित किया जाता है तब रहस्यवाद का आविर्भाव होता है। भावुक साधक संसार की सभी वस्तुओं और व्यापारों का ब्रह्म से संबंध स्थापित कर उनमें एक परोक्ष सत्ता की स्थिति की अनुभूति करता है और सोचता है कि वह एक ही है, जिसका विश्व-विमोहक सौंदर्य अपनी पूर्णता को प्रकाशित करने के लिए हजारों वस्तुओं के हजारों-हजार विभिन्न दर्पणों में प्रतिच्छवित या प्रतिभाषित होता है।

पद्मावत में जिस आध्यात्म को लक्षित किया गया है वह सूफी-धर्म-दर्शन से प्रेरित है। सूफी साधक प्रेम के द्वारा परमात्मा को पाने की बात कहते हैं। परमात्मा उनके लिए परम प्रियतमा और परम सौंदर्य है। आत्मा उस प्रियतम को पाने के लिए आकुल रहती है। उस परमात्मा की कल्पना सूफी संत ईश्वर (स्त्री) के रूप में करते हैं और साधक स्वयं उसके साथ दांपत्य भाव से जुड़ना चाहते हैं। इसे रहस्यात्मक विवाह भी कहा जाता है, जिनके साथ संयोग और वियोग की कल्पना उनकी साधना की स्वीकृत पद्धति है। सूफी कवि इसी कल्पना के अनुसार अपने काव्य के माध्यम से उस परम-प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन करते हैं। इसके लिए सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम की कहानियों को अपनाया, क्योंकि आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति में वे लौकिक प्रेम को सहायक मानते हैं।

जायसी ने प्रेम को सभी धर्मों से परे सच्चा मानव धर्म बताया एवं मुसलमानों के साथ-साथ हिंदुओं के भी दिलों में जगह पाई। पद्मावत में रत्नसेन साधक है जो पद्मावती रूपी ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधना करता है। जायसी ने वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों को समझते हुये प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताया तथा कबीर की डांट-फटकार से उखड़े हुए समाज को प्रेम का संबल दिया।

कबीर तमाचों और फटकारों का आश्रय लेते हैं, जायसी प्रेम और पुचकार का। प्रेम भावना की यह लहर जो ईरानी मादकता के साथ भारतीय लोक-साहित्य में छलक पड़ी और जिसका संश्लिष्ट रूप पद्मावत तैयार हुआ, छहर-छहरकर कर.....बाद के समस्त हिंदी साहित्य को न्यूनाधिक भिगोती रही है।

'पद्मावत' प्रेम, अध्यात्म और 'समन्वय' की चेष्टा से नियोजित है। समय की नब्ज को जायसी बखूबी पहचानते थे। आम-जनमानस को कबीर की फटकार से इतर प्रेम की दरकार थी और मुस्लिम सम्राज्य के क्रूरतम प्रहार से ध्वस्त होते आस्था के मंदिरों की जगह भावपूर्ण आध्यात्मिक संबल की आवश्यकता। ''कबीर ने तो केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता का आभास दिया, जबकि जायसी ने प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखा।''[6]

जायसी ने हिंदू-कथा को इस्लामिक आध्यात्म से समन्वित करते हुए प्रेम के पीर का महाकाव्य लौकिक-अलौकिक मेल से बने धरातल पर रच डाला। इसमें रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है।

''तन चितउर मन राउर कीन्हा।
हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा।।''[7]

जहां दूसरे सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में काल्पनिक कहानियां अपनाई, वहां जायसी ने पद्मावत में लोकप्रचलित कथा में ऐतिहासिकता का भी सुंदर समन्वय कर दिया है। सहिष्णुता, समन्वयात्मकता और संग्राहक बुद्धि का उदय उस युग की एक खास विशेषता है। पद्मावत का सांस्कृतिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से काफी महत्त्व है। इसकी प्रबंध कुशलता दर्शनीय है। इसमें केवल एकांतिक प्रेम ही नहीं बल्कि लोक-पक्ष भी है। विप्रलंभ-शृंगार के वर्णन में जायसी अपने उपमान आप ही हैं। उनकी रचना-प्रकिया में एक गतिशीलता है।

परमानंद श्रीवास्तव उनका मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं–''अपनी रूढ़ियां रचने वाले जायसी अपनी कविता की मुक्ति भी रचते हैं। वे दूसरे-तीसरे किनारे पर पड़ी हुई यादों को भी कविता के केंद्र में लाते हैं और उन्हें पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। एक भारतीय कवि-स्वभाव की उदारता, असंकीर्णता, एक प्रकार का समावेशी दृष्टिकोण संग्रह और त्याग का एक रचनात्मक विवेक जायसी के यहां है।''[8]

अपने युग और परिवेश के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को जायसी ने अपने साहित्य में उच्चस्तरीय मूल्यबोध के रूप में अभिव्यक्त किया है। अपने समय की सांस्कृतिक टकराहट में से मानवीयता को जिस रूप में रचनात्मक स्तर पर पूरे रचनाविधान के भीतर से अभिव्यक्त किया है वह आज के भारतीय समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है। जायसी ने 'पद्मावत' में इतिहास, मिथक, लोक-जीवन, शिष्ट-साहित्य तथा भारतीय परंपराओं व इस्लाम की मानवीयता को जीवन के विविध क्षेत्रों से संदर्भित करके मूल्यबोध के विविध स्तरों को नाना रूपों और आधारों पर व्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पं. रामचंद्र शुक्ल (सं.) : जायसी ग्रंथावली, प्रेम खंड, पृ. 45, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण 21वां।
2. वही, पृ. 36
3. वही, पृ. 139
4. वही, पृ. 1, भूमिका से
5. कामेश्वर शर्मा : बोध और व्याख्या, पृ. 325, नॉवल्टी एंड कंपनी, अशोक राजपथ-पटना, प्रथम संस्करण, 1962.
6. पं. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 64, चतुर्थ संस्करण
7. पं. रामचंद्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, पृ. 270, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण 21वां
8. परमानंद श्रीवास्तव : जायसी का मूल्यांकन, पृ. 57, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981

शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में जायसी पद्मावत के विशेष संदर्भ में

डॉ. प्रदीप के. शर्मा

प्रेमाख्यान का शाब्दिक अर्थ है—प्रेम का आख्यान अथवा प्रेम कथा, परंतु हिंदी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग साधारणतः सूफी कवियों द्वारा रचित उन काव्यों के लिए हुआ है जिनमें किसी लोक प्रचलित प्रेम कथा को आधार बनाकर अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन और प्रचार किया है। वस्तुतः भारतीय वाङ्मय में कथा साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है और साहित्यकार लोक प्रचलित कहानियों का उपयोग बराबर करते रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के कथा-काव्यों की यही परंपरा आगे चलकर हिंदी साहित्य की प्रेमाख्यानक परंपरा में जीवंत हो उठी। सूफी संत कवियों ने भी लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय ले अपनी बात जनता तक पहुंचाई। अतः सूफी प्रेमाख्यानक काव्य—मृगावती, मधुमालती, पद्मावत, चित्रावली आदि एक प्रकार से गुणाढ्य की वृहत कथा से चली आती हुई प्रेम कथाओं की परंपरा के ही काव्य हैं।

किसी राजकुमारी का अपने पालित पक्षी से काम-व्यथा निवेदित करना, उस पक्षी द्वारा किसी राजकुमार के पास जाकर प्रणय संदेश कहना, राजकुमार का आगमन, किसी मंदिर में राजकुमार-राजकुमारी का मिलन और अंत में उनका परिणय-सूत्र में आबद्ध होना—लोक जीवन में प्रचलित रूढ़ कथा थी और इसी को जायसी ने अपने काव्य में आबद्ध कर दिया है और इस प्रकार से 'पद्मावत' की कहानी भारतीय लोक-जीवन की अत्यंत प्रिय कहानी थी, जिसे साहित्य में भी संस्कृत-काल से बराबर स्थान मिलता रहा।

जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीहक-बीच में जीवन के और-आउर अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं। इससे उनकी प्रेम गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है, पर है वह प्रेम गाथा ही, पूर्ण जीवन गाथा नहीं। पद्मावत का पूर्वार्द्ध, प्रेम के विवरण से भरा है और उसमें प्रेम भाव का जैसा उत्कर्ष देखने को मिलता है वह अपने में महान है। पद्मावत में जिस प्रेम की व्यंजना की गई है, उसके संबंध में विद्वानों का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक व आध्यात्मिक प्रेम है। रत्नसेन-पद्मावती की कथा लौकिक प्रेम कथा न होकर जीवात्मा और परमात्मा के मिलन की कथा है, जिसमें लौकिक प्रेम की व्यंजना द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना करना ही कवि का लक्ष्य रहा है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने पद्मावत में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना को स्वीकार करते हुए कहा है, जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धांतों की रूपरेखा है। कवि ने पद्मावत में प्रेम मार्ग उसका महत्त्व, सौंदर्य और प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। जायसी के आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना हमें तीन रूपों में मिलती है—1) रूपक द्वारा, 2) कथा प्रसंगों में अलौकिकता की और 3) सूफी संत के अनुकूल प्रेम की व्यंजना द्वारा।

रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना—जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन को सच्चे साधक और पद्मावती को ईश्वर के रूप में चित्रित किया है और इस प्रकार बताया है कि रत्नसेन को पद्मावती तक पहुंचाने वाला प्रेम जीवात्म को परमात्मा से मिलाने वाला प्रेम है। न केवल 'पद्मावत' की अंतिम पंक्तियों में ही रूपक को स्पष्ट किया गया है, अपितु अन्यत्र भी आध्यात्मिकता के इस आरोप की घोषणा की है—

''कहा मुहम्मद प्रेम कहानी
सुनि सो ज्ञानी भए ध्यानी।।''

कवि की ये उक्तियां प्रमाणित करती हैं कि उसे अपने काव्य में आध्यात्मिक व्यंजना अभीष्ट है।

कथा-प्रसंगों में अलौकिकता की व्यंजना द्वारा—जायसी ने कथा के बीच-बीच में प्रेम की अलौकिक व्यंजना की ओर भी संकेत किए हैं। उदाहरण के लिए, तोते के मुख से पद्मावती का रूप वर्णन सुनकर रत्नसेन का मूर्च्छित होना, पद्मावती का रूप वर्णन, प्रेम खंड के संवाद आदि इसी अलौकिकता की ओर संकेत करते हैं। रत्नसेन के बेसुध हो जाने की बात कह कर कवि ने साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर सान्निध्य की व्यंजना

की है–

''देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइन होई छावा।।
गा अंधियार रैनि मसि छूटी।
भा भिनसार किरण रवि फूटी।।''

इन पंक्तियों में कवि संदेश देता है कि किस प्रकार साधना के निकट पहुंचने पर साधक के संपूर्ण भ्रमों और संतापों का नाश हो जाता है तथा आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होती है।

सूफी मत के अनुकूल प्रेम-व्यंजना–सूफी साधकों के जीवन का प्रधान लक्ष्य है कि सृष्टि के कण-कण में प्रियतम का जलवा देखना और उसके विरह में तड़पने का आनंद उठाना। वे 'दरियाए इश्क' की बेशुमार लहरों में बहते रहते हैं। सूफी मत में ईश्वर की कल्पना या तो सौंदर्य के रूप में की गई है या प्रेम के रूप में। जायसी के काव्य में इन दोनों रूपों का पूरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। कवि लौकिक सौंदर्य का वर्णन करते-करते अलौकिक सौंदर्य की ओर बढ़ जाता है। पद्मावती का नख-शिख वर्णन आध्यात्मिक अर्थ भी रखता है, क्योंकि ईश्वर का प्रतिरूप चित्रित करने के लिए उसने उसके सौंदर्य को अपरिमेय, अलौकिक और दिव्य चित्रित किया है। सौंदर्य की लोकोत्तर व्यंजना करने के लिए जायसी से ऐसे उपमान ग्रहण किए हैं, जो अनंत सौंदर्य की ओर संकेत करते हैं–

''रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती।।''

जायसी के सौंदर्य वर्णन की एक अन्य विशेषता यह है कि उसने परम सौंदर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव की व्यंजना की है–

''उन बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहा सगरौ संसारा।।''

वह पद्मावती के केशों की कालिमा के प्रभाव से स्वर्ग और पाताल दोनों में अंधकार छाते हुए दिखाता है–

''बैनी छोरि झार जो बारा।
सरग पतार होइ अंधियारा।।''

पद्मावती के इस सौंदर्य में यह विशेषता है कि उसके साक्षात्कार मात्र से अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है और जन्म-जन्मांतरों के पाप धुल जाते हैं–

''भा निरमर तीन पायन परसे।
पावा रूप रूप के दरसे।।''

जायसी ने आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना के लिए प्रेम और विरह का भी व्यापक वर्णन किया है। वह प्रेम का महत्त्व बताते हुए लिखते हैं–

''ज्ञान दिष्टि सौं जाइ पहूंचा।
पेम अदिष्टि गगन ते ऊंचा।।
धुव ते ऊंच पेम धुव ऊआ।
सिर देइ पांव देइ सो छूआ।।''

जायसी के अनुसार प्रेम में अपार विरह होता है और मानो सूर्य भी विरह की अग्नि में जलकर ही रात-दिन जलता रहता है–

''विरह की आगि सूर जारी कांपा।
रातहि दिवस जरै ओहि तापा।।''

इस प्रकार जायसी का वियोग अलौकिक रूप में सृष्टि व्यापी प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है। विरह के शुद्ध भाव क्षेत्र में अग्नि, पवन इत्यादि सब उस प्रिय तक पहुंचने के लिए आतुर दिखाई पड़ते हैं।

सूफी मत में अहं भाव को साधक के लिए सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है और उस पर विजय पाने की बात कही गई है। जिससे 'तू' और 'मैं' का भाव मिट जाए–

''हौं हौं कहत मंत सब कोई।
जौं तूं नाहि आहि सब सोई।।
आपुहि गुरु से आपुहि चेला।
आपुहि सब सों आपु अकेला।।''

इसके लिए प्रेम ही एक मात्र साधन है। जायसी कहते हैं कि तीनों लोक और चौदह भुवन में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी सुंदर नहीं है–

''तीन लोक चौदह खंड,
सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छांडि किछु और न लोना
जौं देखौं मन बूझि।।''

पर यह प्रेम का खेल अत्यंत कठिन है। हां, जो इस खेल को खेलता है, वह तर जाता है–

''भलेहिं प्रेम है कठिन दुहेला।
दुइ जग तरा पेम जेइ खेला।।''

इस प्रेम के द्वारा ही वह ऐसे लोक को प्राप्त करता है, जहां न मृत्यु है न दुख–

''तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासू।
जहां न मीचू सदा सुखबासू।।''

सच्चे प्रेमी को जन्म और मृत्यु का भय नहीं सताता क्योंकि वह तो प्रेमरस में डूबा रहता है–

''सुन घनि पेम सुरा के पिएं।
मरन-जियन डर रहै न हिएं।।''

इस प्रकार रत्नसेन और पद्मावती के माध्यम से जायसी ने उस आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है जो सूफी साधना का प्राण है।

इससे लगता है कि 'पद्मावत' में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना ही प्रधान है परंतु पद्मावत के संपूर्ण प्रेम वर्णनों में आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए–नागमती के विरह-वर्णन तथा संयोग-श्रृंगार के अनेक प्रसंगों में अलौकिकता की छाया भी नहीं मिलती। इस संबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन महत्त्वपूर्ण है–''जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है। पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निभा सके हैं और अधिकांश में पद्मावत में चित्रित प्रेम का स्वरूप अलौकिक न होकर लौकिक हो गया है। पद्मावती-रत्नसेन मिलन के प्रसंगों से लेकर अंत तक 'पद्मावत' में

लौकिक प्रेम का ही चित्रण हुआ है। फारसी शैली के प्रभाव से प्रेम-प्रसंगों में कवि ने वासना के विविध चित्र उतारे हैं। स्वयं नायिका का व्यक्तित्व भी अनेक दोषों से दूषित होने के कारण आध्यात्मिकता को आघात पहुंचाता है। पद्मावती का प्रेम भी शुद्ध न होकर कामुकता से ग्रसित है। पद्मावती युवावस्था को प्राप्त होते ही तोते से कहती है—

''सुनि हीरामन कहौं बुझाई।
दिन-दिन, मदन सतावै आई।।
जीवन भौर भयऊ जस गंगा।
देह-देह हम लाग अनंगा।।''

रत्नसेन के सिंघलगढ़ में पहुंचने के बाद भी पद्मावती को काम-वासना एवं भोग-लिप्सा से विह्वल युवती के रूप में दिखाया गया है। इस चित्रण में तन-तपन, यौवन-भार एवं कामोन्माद का जैसा वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि पद्मावती का प्रेम सर्वथा लौकिक स्तर का है। इसी को देखते हुए डॉ. विमल कुमार जैन ने लिखा है—''पद्मावत की कथा में जो नख-शिख वर्णन, प्रेमावेश तथा ऐसा ही अन्य बातों का वर्णन है, उससे आध्यात्मिक प्रेम को आघात पहुंचता है, तो उनका वियोग-वर्णन भी विशेषतः नागमती का विरह-चित्रण इतना लौकिक और हृदय स्पर्शी है कि उसे आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता।'' शुक्ल जी के शब्दों में—''नागमती के विरह-वर्णन के अंतर्गत वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिंदू दांपत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना देखने योग्य है।''

शुक्ल जी ने 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में प्रेम के चार रूप माने हैं—1. विवाहोपरांत, 2. पूर्वराग, 3. अंतःपुर से संबंध और 4. गुण-श्रवण आदि से उत्पन्न प्रेम। उनके अनुसार, ''पद्मावत का प्रेम चौथे प्रकार का है, क्योंकि राजा रत्नसेन और पद्मावती दोनों तोते के मुख से एक-दूसरे के संबंध में सुनकर ही परस्पर अनुरक्त होते हैं।'' शुक्ल जी ने मिलन से पूर्व रत्नसेन के पद्मावती के प्रति मनोभाव को लोभ कहा है, क्योंकि वह निर्दिष्ट के प्रति न होकर सामान्य के प्रति है। शुक्ल की जी इस चर्चा से स्पष्ट है कि जायसी की प्रेम-व्यंजना सर्वत्र आध्यात्मिक न होकर अनेक स्थलों पर लौकिक हो गई है।

जायसी की प्रेम-व्यंजना की विशेषताएं— आचार्य शुक्ल ने जायसी की प्रेम-पद्धति की तीन विशेषताओं की ओर संकेत किया है—1. मानसिक पक्ष की प्रधानता, 2. भारतीय एवं फारसी पद्धतियों का समन्वय, 3. भावात्मक और व्यावहारिक शैलियों का सामंजस्य। जायसी के श्रृंगार वर्णन में मानसिक पक्ष की प्रधानता है। संयोग और वियोग दोनों के चित्रों में उनकी दृष्टि भावात्मकता की ओर अधिक रही है, शारीरिक ताप-कृशता आदि के चित्रण पर कम है। संयोग पक्ष में कवि ने मन के उल्लास का वर्णन अधिक किया है, चुंबन-आलिंगन का कम और अन्य वियोग पक्ष में वेदना की तीव्रता का कथन अधिक किया है। विलासिता के बीच-बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित होता दिखाई देता है। उनके विरह-वर्णन में भी एक गांभीर्य है और वेदना की अत्यंत तीव्र व्यंजना मिलती है।

भारतीय प्रेम-पद्धति में नायिका के प्रेम का वेग अधिक दिखाई देता है, जबकि फारसी काव्यों में नायक को अधिक प्रेम-विह्वल दिखाया जाता है। जायसी ने इन दोनों पद्धतियों का समन्वय किया है। पहले फारसी प्रेम-पद्धति के अनुरूप रत्नसेन को अपने प्रेम-पात्र की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखाया है और उत्तरार्ध में इन पद्धतियों का समन्वय देखा जा सकता है। कवि भारतीय पद्धति के अनुसार संयोग-वर्णन में मर्यादित है और वियोग-वर्णन में वेदना की अभिव्यक्ति की ओर झुका रहता है। परंतु फारसी-पद्धति के प्रभाव से संयोग वर्णनों में अश्लीलता और वियोग-चित्रण में ऊहात्मकता तथा वीभत्सता आ गई है—

''विरह सरागन्हि भूंजै मांसू।
गिरि-गिरि परै रकत के आंसू।।''

'पद्मावत' में भारतीय प्रेम-पद्धति के अनुसार लोक-व्यवहार के बीच अपनी आभा का प्रसार करने वाले प्रेम और मसनवियों के एकांतिक, लोक-बाह्य और स्वतंत्र भावात्मक सत्ता के रूप में विकसित होने वाले प्रेम—इन दोनों की समान रूप से व्यंजना मिलती है। जायसी ने यद्यपि आधार इश्क के दास्तान वाली मसनवियों को लिया है, पर बीच-बीच में भारत के लोक-व्यवहार का संलग्न रूप में भी मेल किया है। राजा की विदा के समय माता और रानी का रोना, गोरा-बादल प्रसंग आदि इसके प्रमाण हैं। जायसी की प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न नहीं हो पाई है। उसमें भावात्मक एवं व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है। दांपत्य प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य की अन्य वृत्तियों—युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृ स्नेह, स्वामिभक्ति, वीरता, कृतघ्नता, सतीत्व आदि का भी चित्रण हुआ है।

इस प्रकार जायसी ने अपनी इस प्रेमगाथा में हिंदू-मुसलमानों के बीच सामंजस्य और मेल कराने का स्तुत्य प्रयास किया है। अभीष्ट की प्राप्ति के लिए एक ओर योग-पंथ और दूसरी ओर प्रेम-पंथ का चित्रण करके कवि ने भारत और फारस का, हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म का मेल कराने की चेष्टा की है। वह अद्भुत समन्वयवादी व्यक्तित्व के कवि थे और यह समन्वयवाद उनकी प्रेम-पद्धति में ही स्पष्ट झांकता है।

उप-निदेशक (भाषा), केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
शास्त्री भवन, चेन्नै-600006

सूफी परंपरा के प्रतिनिधि कवि

वीरेंद्र कुमार यादव

जायसी के युग में साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। साधु और फकीर भी सर्वप्रिय हो सकते थे, जो भेदभाव से परे दिखाई पड़ते थे। बहुत दिनों तक एक साथ रहते हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलने लगे थे। मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिंदू मुसलमानों का दस्तान हमजा। उधर भक्ति मार्ग के आचार्य और महात्मा 'भगवत्प्रेम' को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और उधर सूफी महात्मा मुसलमानों को इश्क हकीकी का सबक पढ़ाते आ रह थे।

अमीर खुसरो ने मुसलमानी राजत्वकाल के आरंभ में ही हिंदू जनता के विनोद में योग देकर भावों के परस्पर आदान-प्रदान का सूत्रपात किया था, पर अलाउद्दीन के कट्टरपन और अत्याचार के कारण दोनों जातियां एक दूसरे से खिचीं सी रही, उनका हृदय मिल न सका। कबीर की अटपटी बानी से भी दोनों के दिल साफ न हुए।

जिस प्रकार दूसरी जाति या मतवाले के हृदय हैं, उसी प्रकार हमारे भी हैं, जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम की तरंगे उठती हैं, उसी प्रकार हमारे में भी हैं, प्रिय का वियोग जैसे दूसरे को व्याकुल करता है वैसे हमें भी, माता का हृदय जो दूसरे के यहां है, वही हमारे यहां भी है, जिन बातों से दूसरे को सुख-दुख होता है, उन्हीं बातों से हमें भी, इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतबन, जायसी आदि की प्रेम-कहानी के कवियों द्वारा हुआ। अपनी कहानियों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक प्रभाव पड़ता है। हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालो में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूर्ण हुई।

इनके जीवन और साहित्य दोनों को हिंदी जगत ने आदर्श के रूप में ग्रहण किया है। जायसी की एक छोटी सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी भाषा में छपी है। यह सन् 936 हिजरी (1528 ई. के लगभग) बाबर के समय में लिखी गई थी। इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा है। इस पुस्तक में जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है—

''भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कबि बढ़ी।।''

'नवसदी' ही पाठ मानें तो जन्मकाल 900 हिजरी (सन् 1492 के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से तीस वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।

जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है—'पद्मावत', जिसका निर्माण काल कवि ने इस प्रकार दिया है—

''सन् नव सै सत्ताइस अहा।
कथा आरंभ वैन कवि कहा।''

इसका अर्थ होता है कि पद्मावत की कथा के प्रारंभिक जीवन कवि ने सन् 927 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) में कहे थे। पर ग्रंथारंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है। जिसके शासन काल का आरंभ सन् 1540 ई. से हुआ था। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद तो सन् 1520 ई. में बनाए पर ग्रंथ को 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय पूरा किया गया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया 'अहा' (था) और 'कहा' का प्रयोग किया है।

जायसी कुरूप और काने थे। कुछ लोगों के अनुसार वह जन्म से ही ऐसे थे पर अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतला या अर्द्धांग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। अपने काने होने का उल्लेख कवि ने आप ही इस प्रकार किया है—

''एक नयन कवि मुहमद गुनी''

उनकी दाहिनी आंख फूटी या बायी आंख इसका उत्तर शायद इस दोहे से मिले—

''मुहमद बांई दिसि तजा,
एक सरवन एक आंखि।''

इससे अनुमान होता है कि बाएं कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था।

जायस में प्रसिद्ध है कि वह एक बार शेरशाह के दरबार में गए। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हंस पड़ा। उन्होंने अत्यंत शांत भाव से पूछा—

''मोहि कां हंससि, कि कोहरहि?''

अर्थात् तू मुझ पर हंसा या उस कुम्हार (गढ़ने वाले ईश्वर) पर? उस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा मांगी।

मलिक मुहम्मद एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते तब अपना खाना वहीं मंगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी नहीं खाते, जो आस-पास दिखाई पड़ता, उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर-उधर कोई नहीं दिखाई पड़ा। बहुत देर आसरा देखते-देखते अंत में एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे अपने साथ खाने को बिठाया और एक ही बर्तन में भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिये उठाया। पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा—''इसे मैं खाऊंगा, आप साफ हिस्सा खाइये।'' पर जायसी झट से उसे खा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग 'अखरावट' के इस दोहे में बताते हैं—

''बुंदहि समुद्र समान,
यह अचरज कासौ कहौ।
जो हेरा सो हेरान,
मुहम्मद आपहु आयु मंह।।''

कहते है कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुर्घटना में मर गए। तब से जायसी संसार से और भी विरक्त हो गए और कुछ दिनों में घर-बार छोड़ इधर-उधर फकीर होकर घूमने लगे। वे अपने समय के सिद्ध फकीर माने जाते थे और चारों ओर उनका बड़ा मान था। अमेठी के राजा मान सिंह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। कहते हैं कि उनकी मृत्यु विचित्र ढंग से हुई। जब उनका अंतिम समय निकट आया, तब उन्होंने अमेठी के राजा से कह दिया कि मैं किसी शिकारी की गोली खा कर मरूंगा। इस पर अमेठी के राजा ने आस-पास के जंगलों में शिकार की मनाहीं कर दी। जिस जंगल में जायसी रहते थे उसमें एक दिन एक शिकारी को बड़ा भारी बाघ दिखाई पड़ा। उसने डर कर उस पर गोली छोड़ दी। पास जाकर देखा तो बाघ के स्थान पर जायसी मरे पड़े थे। कहते हैं कि जायसी कभी-कभी योग बल से इस प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे। जायसी की कब्र अमेठी राजा के वर्तमान कोट से पौन मील के लगभग है।

प्रेम की पीर के अमर गायक कविवर जायसी का पद्मावत शृंगार-प्रधान काव्य है। वैसे अन्य रसों का भी उसमें यथास्थल समावेश हुआ है किंतु संपूर्ण काव्य में शृंगार रस ही प्रमुख रूप से रम रहा है। शृंगार रस में संयोग और वियोग दो भेद होते हैं। पद्मावत में इन दोनों रसों को उचित प्रश्रय मिला है। जायसी वियोग पक्ष का जितना मार्मिक वर्णन करने में जितना सफल हुए उतना संयोग पक्ष का नहीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि सूफियों के प्रेम में विरह को प्रमुखता दी जाती है।

पद्मावत की कथा रत्नसेन और पद्मावती तथा नागमती को ले कर चलती है। संयोग शृंगार के लिए नागमती और पद्मावती दोनों महत्त्वपूर्ण है। डॉ. रामरतन भटनागर के शब्दों में ''साधना की दृष्टि से नागमती और पद्मावती में चाहे जो अंतर हो, साहित्य के दृष्टि से कोई अंतर नहीं है। दोनों रत्नसेन की प्रिया है। जहां तक नागमती और रत्नसेन से संयोग का प्रश्न है, इसका वर्णन केवल एक स्थान पर आया है—जब रत्नसेन सिंहल से लौट कर नागमती के पास जाता है। वस्तुतः वह मिलन भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें अधिकांश नागमती द्वारा मान प्रदर्शन और सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ही व्यक्त हुआ।''

संयोग पक्ष का वास्तविक आरंभ तो पद्मावती-रत्नसेन के विवाह खंड से ही होता है। कितना मादक और हृदयग्राही चित्र है—

''हुलसे नयन दरस मदमाते।
हुलसे अधर रंग रस राते।।
हुलसा बदन ओंप रवि पाई।
हुलसी हिया कुंचकिन समाई।।
हुलसे कुच कसनी-बंद टूटे।
हुलसी भुजा वलय कर फूटे।।
हुलसी लंक की रावन राजू।
राम लखन दर साजहिं आजू।।
आजु चांद घर आवा सुरू।
आजू सिंगार होई सब चुरू।।
अंग अंग सब हुलसै, कोई कतहू न समाई ।
ठांवहि ठांव विमोही, गई मुरझा तन आई।।''

यहां पर जायसी का कवि जागा है, जिसने साहित्य और मनोविज्ञान को एक वाणी प्रदान की है। वस्तुतः इस वर्णन के शब्द-शब्द में जीवन डोल रहा है। पद्मावत में लौकिक प्रेम पंथ के त्याग, कष्ट, सहिष्णुता तथा विघ्न-बाधाओं का चित्रण करके कवि ने भगवत्प्रेम की उस साधना का स्वरूप दिखाया जो मनुष्य की वृत्तियों को विश्व का पालन और रंजन करने वाली उस परमवृत्ति में लीन कर सकती है। संपूर्ण ग्रंथ में प्रेम की अत्यंत व्यापक और गूढ़ भावना तथा मर्मस्पर्शिनी भाव व्यंजना का निर्देशन है।

'आखिरी कलाम' में सृष्टि के अंतिम दृश्य का वर्णन है। कुछ लोग इसका नाम 'आखिरीनामा' भी बताते हैं और इनके नाम से अन्य ग्रंथ के नाम भी मेल खाता है

यथा—पोस्तीनामा, खूर्वानामा, मोराईनामा, कहारनामा आदि।

'अखरावट' जायसी के तीन काव्य ग्रंथों में यह तीसरा काव्य ग्रंथ है। इसमें 476 पंक्तियां जिसके अंतर्गत 54 दोहे 54 सोरठे और 371 चौपाईयां हैं। यह जायसी का सिद्धांत ग्रंथ कहा जाता है। इसकी विशेषता उसके आध्यात्मिक विचारों में ही है। ब्रह्मवाद, हठयोग, चक्रभेद और आनंदवाद तथा सूफी इस्लामी सिद्धांतों का समन्वयात्मक एकीकरण इस ग्रंथ की विशिष्टता है।

हठयोग रसायन तथा वेदांत आदि अनेक बातों का सन्निवेश जायसी की रचना में मिलता है, हठयोग में मानी हुई ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की ही चर्चा उन्होंने नहीं की बल्कि सुषुम्ना नाड़ी में नाभिचक्र (कुंडलिनी), हस्त कमल और दशम द्वार का भी बार -बार उल्लेख किया है।

जायसी एक भावुक, सहृदय, संवेदनशील और भगवद्भक्त व्यक्ति थे। वे अपने समय के पहुंचे हुए सिद्ध और फकीर माने जाते थे। सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखना उनकी विशेषता थी। उन्हें अहंकार छू नहीं गया था। विनम्रता उनमें कूट-कूट भरी हुई थी। कबीरदास की भांति एवं नया पंथ निकालने की उन्हें कभी नहीं सूझी और न ही उनकी तरह ''ज्यों कि त्यों धरि दीन्ही चदरिया'' कहने का साहस ही वे कर सके। क्योंकि वह जानते थे कि सब कुछ हो जाने पर भी मैं एक मनुष्य हूं। इसलिए मुझमें अपूर्णता बनी रहेगी।

जायसी का कवि और सामान्य जीवन दोनों हमारे लिए आदर्श हैं। उनका व्यक्तित्व महान तथा अत्यंत ही गंभीर और शांत था। ईश्वर ने उन्हें शारीरिक सौंदर्य प्रदान नहीं किया था किंतु उनका हृदय सौंदर्य के चरम उत्कर्ष पर था। उतना सुंदर, कोमल तथा भावुक और प्रेम की पीर से भरा हृदय शायद ही किसी को मिला हो।

हिंदी का प्रथम सफल महाकाव्य और प्रेमकाव्य जगत का अनूठा एवं जगमगाता रत्न 'पद्मावत' ग्रंथ के महाप्रणेता जायसी की काव्यकला उत्कृष्ट उदाहरण है। हिंदी के प्रबंध काव्यों में तुलसी कृत रामचरित मानस के बाद उनकी समकक्षता में और कोई भी काव्य नहीं ठहरता। साहित्यिक और रहस्यवादी एवं दार्शनिक सौंदर्य से परिपुष्ट जायसी की यह रचना उनकी कृति को युग-युग तक अमर रखेगी।

153-एम.आई.जी., लोहिया नगर,
कंकडबाग, पटना-800020

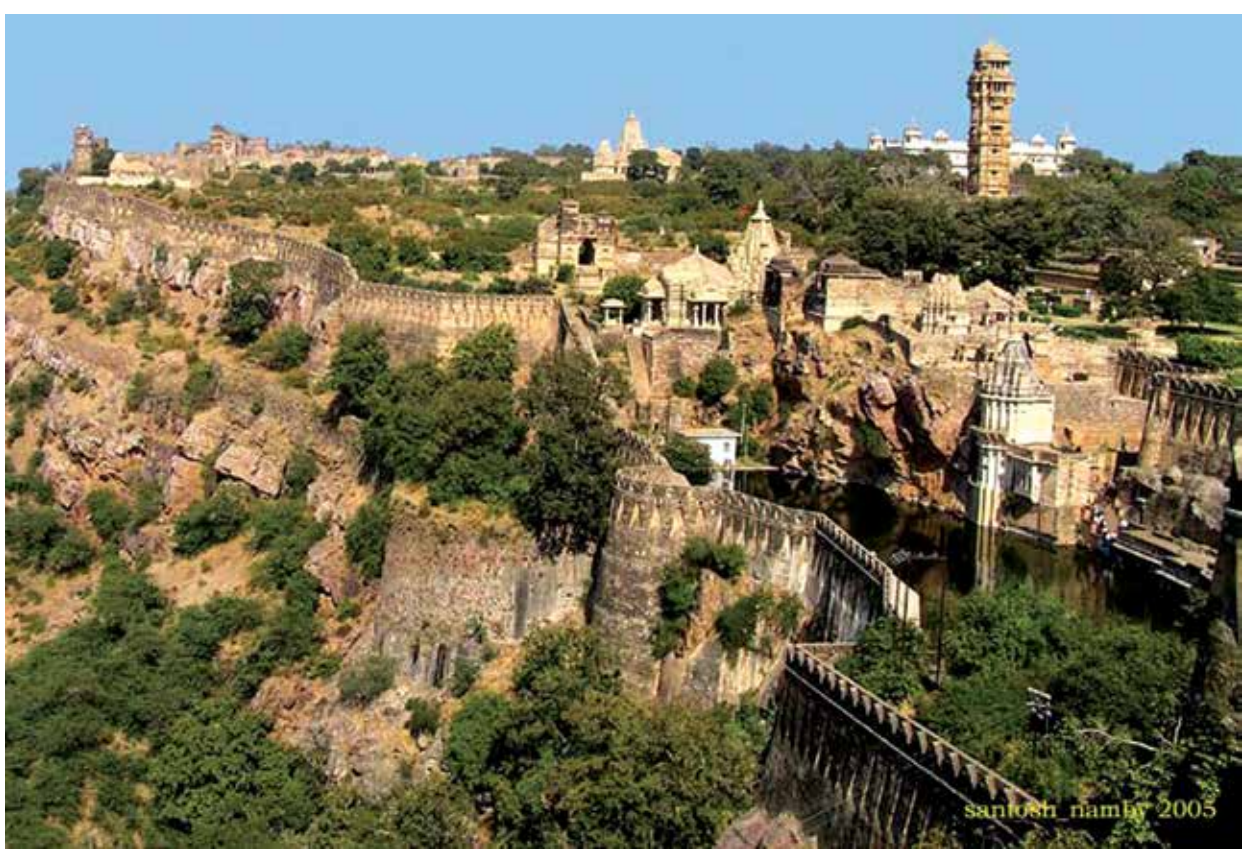

चित्तौड़गढ़ किला

प्रेम की साधना के कवि

डॉ. चित्रा

जायसी का नाम आते ही 'पद्मावत' सबसे पहले याद आता है। पद्मावत एक सूफी, प्रेमाख्यानक काव्य है, और जायसी सूफी संत कवि। हम बिना विश्लेषण बिना शोध के जायसी को सूफी मान लेते हैं। हिंदी साहित्य कोश में धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं—हिंदी के प्रसिद्ध सूफी कवि, जिनके लिए केवल 'जायसी' शब्द का प्रयोग भी, उनके उपनाम की भांति किया जाता है। यह इस बात को भी सूचित करता है कि वे जायस नगर के निवासी थे। इस संबंध में उनका स्वयं भी कहना है।''[1]

''जायस नगर मोर अस्थानू।
तहवां यह कवि कीन्ह बखानू।''[2]

विद्वान जायसी को सूफी इसलिए मानते हैं क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में कुछ मुरशिदों और पीरों की वंदना की है। क्या इस वंदना से यह निष्कर्ष निकालना उचित बात होगी। विजयदेव नारायण साही के अनुसार, ''जितने लोग उन्हें वंदनीय लगे या जिनकी उन्हें एक दो बातें अच्छी लगी, उन सब को उन्होंने पीर और मुरशिद माना। सब को विनत भाव से नमस्कार किया, लेकिन अपने स्वाधीन चिंतन को बरकरार रखा। वे किसी संप्रदाय या सत्ता दल से जुड़े नहीं।''[3]

''जायसी ने अपने गुरुओं के रूप में कुछ नाम गिनाए हैं, जैसे सैयद अशरफ, हाजी शेख, शेख मुबारक, शेख कमाल, मोहदी शेख बुरहान, अलहदाद, सैयद अहमद, दानियाल, सैयद राजे इत्यादि, विद्वानों और शोधकर्त्ताओं ने इन नामों की सूची को काफी मथा है। इन नामों को सूफी संतों के किसी एक संप्रदाय या घराने में बांध पाना संभव नहीं हो सका है। नामों में कालक्रम के अनुसार तारतम्यता भी नहीं है। [4]

जायसी को लोग सूफी होने के अलावा महदवी संप्रदाय में दीक्षित भी मानते हैं। इसके अलावा वे उन्हें सिद्ध महात्मा और चमत्कार करने वाले बाबा के रूप में भी पूजते थे। उनके बारे में कुछ किंवदंतियां भी प्रचलित हैं कि ''उनके आशीर्वाद से संतान पैदा होती थी। वे इच्छानुसार परकाया-प्रवेश कर सकते थे। वह आदमी से शेर बन सकते थे और उनकी मृत्यु कब और कैसे होगी यह भी जानते थे। अगर ये सब किंवदंतियां सही हैं तो आश्चर्य की बात यही है कि क्या 'आइने-अकबरी', क्या 'मुत्तखाबुल तवारीख' में जिसमें उस समय के बहुत से छोटे-बड़े फकीरों का जिक्र है, मलिक मुहम्मद जायसी नाम के सिद्ध पुरुष का उल्लेख क्यों नहीं है?''[5]

जायसी को सूफी संप्रदाय में दीक्षित मानने वालों में सबसे पहले ग्रियर्सन थे। ग्रियर्सन ने जायसी को मुस्लिम एसेटिक अर्थात् मुसलमान संन्यासी कहा है—

"The preservation of the Padmavati is due mainly to the happy accident of Malik Muhammad's reputation. Although profoundly affected by the teachings of Kabir and familiarly acquainted with Hindu lore and with the Hindu Yoga philosophy he was from the first reserved as a saint by his Muhammadan Co-religionists…. His work is a valuable witness to the actual condition of the vernacular language of Northern Indian in the sixteenth century."[6]

ग्रियर्सन का यह कहना कि मुसलमानों में जायसी को संत के रूप में स्वीकार किया गया था। जैसा की हम पहले कह आए हैं यह केवल जायस नगर में फैली किंवदंतियों पर आधरित है। इनका कोई आधार नहीं है। इससे संबंधित कोई बात किसी इतिहास में नहीं मिलती। आश्चर्य तब होता है। जब रामचंद्र शुक्ल ग्रियर्सन की इस टिप्पणी पर अपनी पुख्ता मोहर लगा देते हैं वह कहते हैं कि—

''मलिक मुहम्मद निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे। इस परंपरा की दो शाखाएं हुई—एक मानिकपुर, कालपी आदि की, दूसरी जायस की। पहली शाखा के पीरों की परंपरा जायसी ने बहुत दूर तक दी है पर जायसी वाली शाखा की पूरी परंपरा उन्होंने नहीं दी है; अपने पीर या दीक्षा गुरु सैयद अशरफ जहांगीर तथा उनके पुत्र पौत्रों का ही उल्लेख किया है।''[7]

जायसी मूलतः कवि है यह बात वह कई बार अपने काव्य मे भी कह चुके हैं वह कहते हैं

कि–

''मुहम्मद कवि जो प्रेम का
ना तन रकत न मासुं।
जेइं मुंख देखा तेइं हंसा
सुना तौ आए आसुं।।''[8]

यह पंक्तियां बहुत ही मार्मिक हैं। सभी यह जानते हैं कि जायसी के चेहरे पर चेचक के दाग थे, वह काले और कुरूप थे। उनके बारे में यह कथा प्रचलित है कि एक दरबार में वह जब गए तो उन्हें देख कर राजा हंस पड़ा। जायसी ने उस राजा से कहा तू मुझ पर नहीं उस कुम्हार पर हंस रहा है, जिसने मुझे बनाया है। इन पंक्तियों में भी जायसी यही बात कह रहे हैं, जिसने जायसी का चेहरा देखा वह हंसा लेकिन जिस किसी ने भी जायसी को पढ़ा और सुना उसकी आंखों से आंसू आ गए। जायसी ने जिस प्रकार प्रेम का वर्णन किया। वह देखते ही बनता है।

''एक नैन कबि मुहमद गुनी।
सोइ बिमोहा जेइं कवि सुनी।
चांद जइस जग विधि औतारा।
दीन्ह कलंक कीन्ह उजिआरा।।''[9]

यहां भी जायसी अपने आपको कवि कहते हैं तथा यह भी बताते हैं की उनकी एक ही आंख थी। एक नैन होने के बावजूद उनके पास पारखी नज़र थी। जिससे उन्होंने पद्मावती जैसी अद्भुत नायिका का चित्रण किया। जिस किसी ने भी पद्मावती का रूप वर्णन सुना वही जायसी पर मोहित हो गया कि एक नयन होने के बावजूद कोई ऐसा अद्भुत सौंदर्य वर्णन कर सकता है। चांद जैसी पद्मावती को उसने जमीन पर नीचे उतारा। चांद में तो फिर भी कलंक होता है परंतु जायसी ने पद्मावती का ऐसा चित्रण किया जिससे सारा जगत रोशन हो गया। ऐसा चित्रण कोई सामान्य कवि नहीं कर सकता। वह अद्भुत कल्पनाशीलता के धनी थे। जायसी मूलतः कवि हैं अपनी सृजनात्मक प्रतिभा की दृष्टि से और बारंबार अपने दावे के अनुसार भी। उसी तरह, जिस तरह कालिदास कवि हैं, जायसी के पूर्ववर्ती अमीर खुसरो कवि हैं, या फारसी के निजामी कवि हैं। पद्मावत में बारंबार वे अपने को कवि कहकर ही पाठक के सामने प्रस्तुत होते हैं।[10] पद्मावत से शेरशाह की स्तुति करने के बाद जायसी कहते हैं–

''दीन्ह असीस मुहम्मद
करहु जुगहि जुग राज।
पातसाहि तुम्ह जग के
जग तुम्हार मुहताज।।''[11]

इस दोहे की जीवंतता, विनयशीलता, आत्माभिमान, लोक की मिठास और आशीर्वाद का समन्वय एक कवि का ही हो सकता है, संत या सूफी का नहीं। जायसी के काव्य में एक मिठास है, सरलता है, जो उनके समकालीन कवि कुतुबन और मंझन में नहीं थी। पद्मावत का उपसंहार खंड देखते ही बनता है, जिसमें जायसी की कवि प्रतिभा झलकती है–

''मुहम्मद यही कवि जोरि सुनावा।
सुना जो प्रेम पीर गा पावा।।
जोरी लाइ रकत के लेई।
गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।।
औ मन जानि कवित अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत मंह चीन्हा।।
कहां सो रतनसेनि अस राजा।
कहां सुआ असि बुधि उपराजा।।
कहां अलाउदीन सुलतानू।
कहं राधै जेइं कीन्ह बखानू।।
कंह सुरूप पदुमावति रानी।
कोइ न रहा जग रही कहानी।।
धनि सो पुरुख जस कारति जासू।
फूल मरै पै मरै न बासू।।
केइं न जगत जस बेचा
केइं न लीन्ह जस मोल।।
जो यह पढ़ै कहानी
हम संवरै दुइ बोल।।''[12]

उपसंहार खंड के इस अंश में जायसी यह बताते हैं की मुहम्मद अर्थात् मलिक मुहम्मद जायसी यह कविता जोड़ कर सुना रहे हैं। जिस किसी ने भी इस कथा को सुना है वह प्रेम की पीर को जान गया। जायसी फिर बताते हैं कि यह कविता जो मैं जोड़ कर सुना रहा हूं यह रक्त की लेई से ही जोड़ी गई है और आंखों के पानी जल से भीगी हुई गाढ़ी प्रीति अर्थात् प्रेम की चर्चा की गई है। जायसी कहते हैं कि कहां रत्नसेन राजा हैं, कहां बुद्धिमान तोता, कहां अलाउद्दीन सुल्तान है और कहां राघव चेतन ही है। आज रानी पद्मावती का भी कोई नामोनिशान नहीं है। जायसी कहानी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि इस जगत में अगर कोई चीज रहती है तो मात्र कहानी। जिस प्रकार फूल मर जाता है परंतु उसकी खुशबू नहीं मरती। जायसी तो चले गए परंतु जायसी के प्रेम के दृष्टिकोण की महक, साहित्य की खुशबू तब तक जिंदा रहेगी जब तक उनके पाठक उसे इसी प्रकार पढ़ते रहेंगे।

अंत में जायसी कहते हैं की यह संसार नश्वर है। सभी को एक न एक दिन चले ही जाना है परंतु जो कोई भी इस रचना को पढ़े वह दो बोल बोल कर मुझे भी याद कर लें। कवि हमेशा से समाज में अपनी पहचान चाहता है। 'संवरै दुइ बोल' बेहद मार्मिक और श्लिष्ट पंक्ति है। पूरा पद पढ़ने के बाद हमारे सामने न राजा रत्नसेन आता है और न रानी पद्मावती आती है। अंत में अगर कोई व्यक्ति यदि याद रहता है तो वह है जायसी, जो समाज में अमर हो जाना चाहता है। वह पाठकों से बार-बार आग्रह करता है कि उसके बारे में कोई दो बोल जरूर बोले, यही नहीं वह अपने साथ अपने मित्रों का उल्लेख भी अपने काव्य में करते हैं। शायद अपने साथ अपने मित्रों को भी समाज में अमर बना देना चाहते हो। इस तरह का कार्य कोई जागरूक संवेदनशील

कवि ही कर सकता है। उस समय अपने मित्रों का काव्य में उल्लेख करना कोई रूढ़ि नहीं थी। यह कवि की मौलिक उद्‌भावना का परिचय देती है।

''चारि मीत कवि मुहमद पाए।
जोरि मिताई सरि पहुंचाए।।
युसूफ मलिक पंडित औ ग्यानी।
पहिलैं भेद बात उन्हं जानी।।''[13]

जायसी के विपरीत ऐसे बहुत से कवि हैं जो कर तो भक्ति रहे थे पर कविता बन गई। भक्ति के साथ-साथ कवि होने का यह लाभ उन्हें मिल गया। तुलसीदास स्वंय यह कहते हैं कि—''कवित्त विवेक एक नहीं मोरे।''

द्विवेदी जी ने कबीर पर लिखते हुए कहा कि ''कबीर की कविता बाइप्रोडक्ट है, कर तो रहे हैं वे भक्ति लेकिन यदि कविता भी बन गई तो यह एक तरह से अतिरिक्त हमको मिल गया।''14

जायसी पद्‌मावत में पद्‌मावती का चित्रण करते हैं। हीरामन तोता पद्‌मावती का नख-शिख वर्णन करता है। यह वही पद्‌मावती है जिसका प्रथम दर्शन करके ही राजा रत्नसेन बेहोश हो जाता है। यही राजा अपना सारा राज-पाट छोड़ पर पद्‌मावती को पाने के लिए जोगी बन जाता है। पद्‌मावती जैसी अद्‌भुत सौंदर्य की स्वामिनी का चित्रण करने के बाद अंत में जायसी अपने बुढ़ापे का वर्णन करते हुए अपनी बात करते हैं। पद्‌मावत ईश्वर की वंदना से शुरू होकर जायसी पर खत्म होती है। दूसरी तरह से देखा जाए तो 'पद्‌मावत' में खूबसूरती चारों ओर बिखरी पड़ी है। हर एक दृश्य व हर एक वस्तु का सूक्ष्म दृष्टि से चित्रण है। पद्‌मावती तो उनमें श्रेष्ठ है। इतनी खूबसूरती का चित्रण करने के बाद जायसी अपना तथा अपने बुढ़ापे का चित्रण करते हैं, जो एक अलग विरोध ले कर आता है। जायसी शायद यह कहना चाह रहे हों कि व्यक्ति चाहे जितना आकर्षक क्यों न हो उसका अंत अवश्य होगा। जायसी के लिए कितना कठिन रहा होगा अपनी कलम से उत्पन्न इस खूबसूरत आकृति को नष्ट कर देना।

आज भी जायसी बेहद प्रासांगिक है। जब दुनिया पैसे, रूप, रंग, चमक, चकाचौंध की तरफ भागती जा रही है। सभी को यह जानना बहुत जरूरी है। दुनिया में पैसा उतना जरूरी नहीं जितना प्रेम है। पैसे के बिना तो फिर भी जिया जा सकता है परंतु प्रेम के बिना जीना व्यर्थ है, अलाउद्दीन की यह पंक्ति यहां सटीक बैठती है कि—

''छार उठाइ लीन्हि एक मूंठी।
दीन्हि उड़ाय पिरिथमी झूठी।''[15]

यह त्रासदी सिर्फ उस समय की ही नहीं है। यह आज की त्रासदी भी है। यह पृथ्वी के झूठी हो जाने की त्रासदी है। अलाउद्दीन बहुत बड़ा शासक था। उसके पास धन-दौलत, पैसा, ऐश्वर्य, सेना सब कुछ था, परंतु फिर भी वह पद्‌मावती को उस रूप में प्राप्त नहीं कर सका, जिस रूप में वह चाहता था। पद्‌मावती उसे मिली पर राख के रूप में। वहीं दूसरी ओर रत्नसेन जोगी रूप में फटे-पुराने कपड़ों में पद्‌मावती को पाने निकल जाता है। उसे किसी चीज़ का कोई होश नहीं है। उसके पैरों में कांटे चुभ रहे हैं, खून निकल रहा है, कपड़े फटे हुए हैं, फिर भी रत्नसेन उसे प्राप्त कर लेता है। अलाउद्दीन के पास पृथ्वी अर्थात् इतने बड़े साम्राज्य का शासन था, सत्ता थी फिर भी वह सत्ता (शासन) उसके कोई काम नहीं आई। वह जिसे चाहता था। उसे प्राप्त न कर सका।

अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि जायसी सूफी सिद्ध नहीं थे बेशक वह सूफी परंपरा में नहीं थे। परंतु उनका प्रेम को व्याख्यायित करने का अंदाज सूफियाना था। जायसी संत परंपरा में कहीं नजर नहीं आते परंतु उनका मन वैरागी था। वह प्रेम की साधना करते थे इसलिए साधक थे। जायसी को कवि कहने के लिए खुद उन्होंने ही आग्रह किया है। कवि का मानवीय हृदय, मर्मस्पर्शिता, संवेदनशीलता, सजगता तथा जीवंतता उनके पास थी।

संदर्भ ग्रंथ–

1. हिंदी साहित्य कोश भाग-2 सं. धीरेन्द्र वर्मा पृ. 402
2. 'पदमावत्' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 22
3. 'जायसी' विजय देव नारायण साही पृ. 28
4. 'जायसी' विजय देव नारायण साही पृ. 5
5. 'जायसी' विजय देव नारायण साही पृ. 9
6. जायसी 'विजय देव नारायण साही' पृ. 24
7. 'जायसी ग्रंथावली' रामचंद्र शुक्ल पृ. 23
8. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 23
9. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 20
10. 'जायसी' विजय देव नारायण साही पृ. 2
11. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 12
12. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 5, पृ.713
13. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 21
14. 'पुनर्लेखन' सं. प्रो. सुधीश पचौरी, प्रो. रमेश गौतम, पृ. 20
15. 'पद्‌मावत' वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 712

ए-3/10, सेक्टर-11, रोहिणी, दिल्ली-110085

मानवता के पक्षधर कवि

डॉ. सारिका कालरा

विभिन्न धार्मिक मत-मतांतरों, टकराहटों, सांप्रदायिक विद्वेष से परिपूर्ण समय और समाज के बीच मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य मानव-मानव के बीच एकता की कहानी बयान करता है। जायसी का जन्म अनुमानतः 1464 ई. माना जाता है। इस समय में कई तरह के संघर्ष दिखलाई पड़ते हैं। यह भारतीय इतिहास की पंद्रहवीं शती थी। राजनीतिक दृष्टि से मुहम्मद गौरी के बाद दिल्ली सुल्तानों की तीन शताब्दियों में शेरशाह सूरी अंतिम सुल्तान था। बाबर हमलावर के रूप में आकर मुगल शहंशाहों की बुनियाद डाल चुका था। भारतीय धर्म और भारत के लिए अपेक्षाकृत नए धर्म के बीच सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के कारण तरह-तरह की दृष्टियां टकरा रही थीं। यही वह समय था जब भक्ति एक आंदोलन का रूप धारण कर रही थी। धार्मिक दृष्टि से इस काल में नाथ संप्रदाय शैव मत का प्रधान प्रचलित रूप था। बारहवीं शताब्दी के अंत में सूफी संतों का आगमन भारत में होने लगा था। सूफी दरवेश नाथपंथी योगियों के संपर्क में आए। सूफी साधना तथा साहित्य पर इनका विशेष प्रभाव पड़ा। दूसरी तरफ कबीर, नानक, दादू संत मानव मात्र की एकता का संदेश सुना रहे थे। ये संत मानवता के पोषक थे। हिंदू-मुस्लिम एकता इन संतों का पुनीत प्रयोजन था। विभिन्न धर्म-प्रचारक तथा सूफी साधक हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। ये वो लोग थे जो सरल नैतिक जीवन के हिमायती थे। भक्ति के नाम पर आडंबर इनके सिद्धांतों में निहित नहीं था। जब सूफी साधकों की इस भावना का संयोग हिंदू धर्म से हुआ तो एक नवीन तत्व का जन्म हुआ।

जायसी के समय तक आते-आते यह उल्लेखनीय बात हुई कि धार्मिक विचारों का अंतर कम से कम साहित्यिक क्षेत्र में लगभग मिट-सा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस अंतर को कुछ इस तरह व्याख्यायित करते हैं—''ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के ही घरों की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है, जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।'' (त्रिवेणी, रामचंद्र शुक्ल)। ये सूफी संत अपनी उदारता, मनुष्य के प्रति सहानुभूति और प्रेम की उदात्त भावना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। जायसी पर इन्हीं सूफी विचारकों का प्रत्यक्ष प्रभाव रहा है। जायसी का समस्त साहित्य अपने युग के सांस्कृतिक समन्वय का आख्यान है। वैसे तो हिंदी के सभी सूफी कवियों ने अपने साहित्य के द्वारा इसी संवेदना का विस्तार किया है परंतु जायसी का स्थान उनमें सर्वोपरि है। वे एक चिंतनशील विचारक थे। प्रेम उनके जीवन तथा काव्य का प्राण तत्व है। उनकी हर कृति में यह प्रेम तत्व अनिर्वचनीय रूप में विद्यमान है। मानव प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम है। उनके अनुसार जीवन की सार्थकता का सार मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम तथा सद्भावना में निहित है। उनकी हर प्रेम कहानी प्रतीकात्मक रूप से ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक है। शोध के आधार पर जायसी की उपलब्ध तथा प्रकाशित कृतियां हैं— कहारनामा, मसलानामा, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा, कन्हावत तथा पद्मावत।

कहारनामा की परिणय कथा के द्वारा कवि जायसी ने प्रेम-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है। प्रेम का पथ दुर्गम है। इस दुर्गम पथ पर चलकर ही आनंद तक पहुंचा जा सकता है। इस ग्रंथ में निहित महरा और महरी की प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति कवि का लक्ष्य है।

''यामे-सार इस्क पथ जानेहु
अउर कहावत मानेहु रे।'' —(कहरानामा)

'कन्हावत' जायसी के सांप्रदायिक सद्भाव का प्रमाण है। यह पौराणिक तथा लोक प्रचलित कृष्ण-कथा पर आधारित एक प्रेमाख्यान है। सूफी साधकों में कृष्ण काव्य के वे प्रथम महाकवि हैं। जायसी के अनुसार कृष्ण की प्रेम कथा विश्व में अनुपम है—

''अइस प्रेम कहानी दोसर जग महं नाहि।
तुरकी अरबी फारसी सब देखउ अवगाहि।।''
—(कन्हावत)

उनकी कृति 'अखरावट' में सर्वत्र एक सांप्रदायिक सद्भाव के दर्शन होते हैं। उनकी दृष्टि में हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही परम पिता परमात्मा की संतान हैं—

''तिन्ह संतति उपराजा भातहि भांति कुलीन।
हिंदू तुरूक दुवौ भए अपने अपने दीन।। ''
—(अखरावट)

'पद्मावत' जायसी का कीर्ति-स्तंभ है। 57 खंडों में विभक्त यह रचना हिंदी का गौरव ग्रंथ है। यह इतिहास और लोककथा का एक मिलाजुला प्रेमाख्यान है। जायसी प्रेम के ही कवि हैं। प्रेम ही उनके जीवन तथा काव्य का प्राण तत्व है। उनके अनुसार जीवन की सार्थकता मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम से ही है। यह जीवन का सर्वोत्कृष्ट तत्व है और मानव मंगल का मूल है—

''तीन लोक चौदह खंड सबै परै मोहि सूझि।
पेय छांड़ि किछु औरून लोना जौं देखौं मन बूझि।
—(पद्मावत)

जायसी की इस प्रेम-कथा का अंत रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार एक त्रासदी के साथ होता

है। ''पद्मावत ऐसी ट्रैजडी है, जिस का आदि से अंत तक चित्रण एक विराट जीवनोत्सव के रूप में हुआ है।'' (हिंदी काव्य का इतिहास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 54)। मानवीय जीवन के जितने पक्ष संभव हो सकते हैं उन सभी का अंकन पद्मावत में हमें मिलता है। पद्मावती-रत्नसेन की प्रेम कथा के माध्यम से जायसी मानवीय और मानवेतर संवेगों की विविधता के विभिन्न स्तरों पर उतरते हैं और उनका एक सार्थक समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। कथा लौकिक संदर्भों से होती हुई आध्यात्मिकता का स्पर्श करती है।

जायसी बहुज्ञ हैं। इस तथ्य के समर्थन में उनकी कृतियों से कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। अकेले 'पद्मावत' में ही ऐसे ढेरों प्रसंग हैं, जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करते हैं। पद्मावती के अनोखे रूप सौंदर्य वर्णन, रत्नसेन-नागमती-पद्मावती का प्रेम दर्शन, विरह, ऋतु वर्णन, व्रत, त्योहार, रीति-रिवाज, ईश-वंदना, ज्योतिष ज्ञान, पाक कला ज्ञान आदि कई विषय उन्होंने पद्मावत् में चित्रित किए हैं। लेकिन सबसे उल्लेखनीय तथ्य जायसी के संबंध में यह उभरकर आता है कि एक मुस्लिम कवि होते हुए भारत भूमि की कथा का वर्णन करना। उनका 'पद्मावत' धर्म की संकीर्णता से अछूता रहकर मानवता की सृष्टि करता है। यद्यपि जायसी ने हिंदू शास्त्रादि ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया था, फिर भी संत समाज के संपर्क में रहने के कारण वे बहुश्रुत थे। उन्हें हिंदू तथा इस्लाम दोनों धर्मों की अच्छी जानकारी थी। बारहमासा वर्णन सूफी महाकवि जायसी के भारतीय जन-जीवन तथा जन-परंपराओं के प्रति असीम अनुराग तथा अनन्य आस्था का परिचायक है। बारहमासा वर्णन में नागमती के विरह व्यथित-हृदय के साथ प्राकृतिक परिवेश का अत्यंत मनोहर, मधुर और मनोवैज्ञानिक सामंजस्य जायसी ने प्रस्तुत किया है–

''बरिसै मघा झंकोरी-झंकोरी।
मोर दुह नैन चुवहिं जस ओरी।''

भारतीय तथा फारसी काव्य-परंपराओं के अनुसार विरह वर्णन में नायिका की सभी मनोदशाओं का मर्मभेदी निरूपण किया है–

''बिनु जल मीन तपी जस जीऊ।
चात्रिक भइउ कहत पिउ पिउ।।
जरिउं विरह जस दीपक बाती।
पंथ जोवत भइउं सीप सेवाती।।
डारि डारि जेउं कोइल भई।
भइउं चकोरि नींद निरी गई।।

नायक का वियोग वर्णन भी फारसी प्रेमकाव्य की सामान्य विशेषता है, जिसका सफलतापूर्वक निर्वाह रत्नसेन के वियोग वर्णन में देखा जा सकता है।

'पद्मावत' के प्रेम-वर्णन में भारतीय परंपराओं, सूफी आस्थाओं तथा इस्लाम की मान्यताओं का सफलतापूर्वक समाहार हुआ है–

''वेद पंथ जै नहिं चलहि तै भूलहिं बन मांझ।''

'पद्मावत' की नायिका पद्मावती वेदमत की पारंगत विदूषी है–

''चतुर वेदमत सब ओहि पाहा।
रिग, यजु, साम अथरबन माहा।।''

जायसी का प्रेम दर्शन अद्वैतवाद से अनुप्राणित है। अद्वैत ही एकमात्र ऐसा तत्व है, जो मानव मात्र की अनेकता में एकता स्थापित करता है। उनके 'आखिरी कलाम' में भी अद्वैतवाद की झलक देखने को मिलती है–

''सबै जगत दरपन के देखा।
आपन दरसन आपुहि देखा।।''

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुरूप वे निष्काम कर्म के समर्थक थे। गृहस्थ रहते हुए भी संन्यास की साधना में विश्वास करते थे–

''जोगि उदासी दास, तिन्हहिं न दुख औ सुख हिया।
घरही माहं उदास, मुहमद सोइ सराहि।।
–(अखरावट)

'पद्मावत' में चित्तौड़ की महानता तथा हिंदुओं की दृष्टि से उसकी पवित्रता की चर्चा उन्होंने अनोखे ढंग से की है–

''चितउर हिंदुन कर अस्थाना।
सत्रु तुरूक हठि कीन्ह पयाना।
है चितउर हिंदुअन कै माथा।
गाठ परे तजि जाइ न जाता।।''

जायसी ने अपने काव्य के माध्यम से जो विचार, कथाएं जनता के सम्मुख रखीं, वे निश्चित रूप से राष्ट्रीय थीं। अपने प्रेमाख्यानों के लिए अवधी भाषा का चुनाव कर उन्होंने समाज के साथ अपना घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। पद्मावत के अंत में भी उनकी यही मानवीय दृष्टि दिखाई देती है। अलाउद्दीन जब चित्तौड़ के गढ़ में प्रवेश करता है तब तक नागमती और पद्मावती जौहर कर चुकी होती हैं। अलाउद्दीन के हाथ एक मुट्ठी राख ही आती है, पद्मावती नहीं। ये पंक्तियां पद्मावत की अत्यंत मार्मिक पंक्तियां हैं–

''छार उठाई लीन्हिं एक मुट्ठी।
दीन्हि उढाइ पिरथमी झूठी।
जौं लगि ऊपर छार न परई।
तब लगि नाहिं जोतिस्ना मरई।''

अलाउद्दीन जीत कर भी नहीं जीतता। यहां जायसी जीवन के बहुत निकट खड़े दिखाई देते हैं। यही जीवन का सार भी है। पद्मावती रूपी आकर्षण के पीछे भागते रहने के बाद अंत में जिस तरह अलाउद्दीन खाली हाथ रह जाता है, ऐसे ही मनुष्य भी अंत में बाहरी आकर्षण, छल, दंभ के वशीभूत हो तत्व रूप में राख अर्थात् कुछ भी नहीं पाता है। जायसी की इन पंक्तियों को अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में भी देखा जा सकता है। अहं और अस्त्र से संपन्न आज की सर्वशक्तिमान शक्तियां मानव मात्र के लिए बड़ी चुनौती हैं। राख में तब्दील हो चुकी चित्तौड़ की रानियां विनाशकारी युद्ध का भयंकर दुष्परिणाम हैं। जहां कोई नहीं जीतता। आंसू ही शेष रह जाते हैं। भविष्य में युद्ध के परिणाम भयंकर होंगे। विजित और विजेता के पास आत्मग्लानि और पश्चात्ताप के आंसू ही शेष रह जाएंगे। जायसी इन पंक्तियों के माध्यम से भविष्य की मानवता को एक संकेत देते हैं और उसे चेताने का प्रयास करते हैं। विश्व परिवेश में जायसी का काव्य सार्वभौमिक सद्भाव, शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की कामना का संदेश देता है।

ए-281, कालकाजी, नई दिल्ली-110019

प्रेम की पीर के कवि

सकीना अख्तर

प्रेम मानव जीवन की दिव्यतम विभूति है। इस विभूति को आत्मसात कर सूफी कवियों ने इसे ईश्वर प्राप्ति का साधन बना लिया। उन्होंने ईश्वर को असीम सौंदर्य के रूप में स्वीकार किया और जगत के समस्त उपादानों में उसी की झलक पाई। यही कारण है कि सूफियों ने ऊंच-नीच, भेद-भाव तथा जात-पात से ऊपर उठकर समस्त मानव जाति को प्रेम के गुप्त तार से बांधते हुए, कट्टरपंथियों की संकीर्ण मानसिकता के विरुद्ध अपनी व्यापक जीवन दृष्टि तथा आदर्शों का परिचय दिया। इन्हीं सूफी कवियों के सिरमौर हैं मलिक मुहम्मद जायसी। जायसी उत्तर प्रदेश के 'जायस' के निवासी थे—''जायस नगर मोर अस्थानू।''

बचपन से ही वे साधु-संतों की संगति में रहने लगे थे। 'पद्मावती' के अलौकिक रूप सौंदर्य का रचयिता स्वयं अत्यंत कुरूप, एक नेत्र विहीन तथा कान से रहित था। जब उनकी इसी कुरूपता का तत्कालीन बादशाह शेरशाह सूरी ने उपहास उड़ाया तो उन्होंने बादशाह के इस संवेदनहीन आचरण का बड़ी विन्रमतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा, ''मोहि का हंससि, के कोहरहिं,'' अर्थात् ''तुम मुझ पर हंस रहे हो या मुझे रचने वाले उस कुम्हार (ईश्वर) पर।'' यह सुनकर शेरशाह अत्यंत लज्जित हुआ।

जायसी आत्म सजग कवि थे। स्वयं अपना परिचय देते हुए वे कहते हैं—

''मुहम्मद कवि जो प्रेम का
न तन रक्त न मांसु।
जेइं मुख देखा तेइं हंसा
सुना तो आए आंसु।।''

एक अन्य स्थान पर वे अपने इर्द-गिर्द के लोगों अर्थात् जायसवासियों के, उनके काव्य के प्रति उदासीन रवैया का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

''भंवर आई बनखंड हुति
लेहि कंवल कै बास।
दादुर बास न पावहि
भलेहि जे आछहिं पास।।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि दूर-दूर से भंवरे रूपी काव्य प्रेमी उनकी कीर्ति सुनकर उनकी कंवल रूपी कविता की सुगंध लेने आते हैं किंतु आस-पास के मेंढक (निवासी) उनके काव्य की सुगंध से अपरिचित हैं।

भले ही जायसी जैसे भावात्मक प्रेम की पीर से भरे हृदय वाले कवि की तत्कालीन समाज से उनकी काव्य प्रतिभा का सही मोल न जान पाने की शिकायत रही हो परंतु आज जब हम हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो जायसी न केवल एक श्रेष्ठ कवि, बल्कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच 'प्रेम' का एक सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित करने वाले महान व्यक्ति के रूप में दिखाई देते हैं। यद्यपि समाज में व्याप्त वर्ग विभाजन तथा जाति-पाति के ढकोसलों का संत कबीर ने भी कठोर शब्दों में विरोध किया है किंतु उनकी वाणी खंडनात्मक रही है। उसमें डांट-फटकार अधिक है, जबकि जायसी ने सहिष्णुता तथा समन्वय बुद्धि का परिचय देते हुए बड़े ही मार्मिक तथा कोमल शब्दों के माध्यम से मानव हृदय को परिवर्तित करने का, उनके बीच की खाई को पाटने का सार्थक प्रयास किया है। जिसमें वे बहुत हद तक सफल भी हुए हैं। निम्नलिखित उद्घोष से उनके धार्मिक समन्वय की भावना प्रतिध्वनित होती है—

''बिरछि एक लागी दुई डारा,
एकहि ते नाना प्रकारा।
माता के रक्त पिता के बिंदू
अपने दुवो तुरक और हिंदू।।''

यह तथ्य ध्यातव्य है कि जहां सत्ता के लोभी शासक वर्ग ने अपने राजनीतिक लाभ के लिए हिंदुओं और मुसलमानों में धर्म तथा संस्कृति के नाम पर दूरी पैदा कने के प्रयास किए वहीं जायसी जैसे संवेदनशील कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय देते हुए हिंदी साहित्य की प्रेमाख्यान परंपरा में सर्वश्रेष्ठ कहलाए जाने वाले प्रेमाख्यान 'पद्मावत' की रचना की। अब तक जायसी की प्रमुख रूप से तीन रचनाएं प्रकाश में आई हैं—'आखिी कलाम', 'पद्मावत' और 'अखरावट'। पद्मावत को छोड़कर अन्य दो रचनाएं धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें इस्लाम धर्म की सैद्धांतिक विवेचना की गई है। 'अखरावट' को स्वयं कवि ने ज्ञान का ककहरा कहा है। इसमें ईश्वर, जीव, गुरु, धर्माचार, सृष्टि निर्माण के रहस्य का निरूपण किया गया है। इसकी रचना बारह खड़ी प्रणाली पर की गई है।

'आखिरी कलाम' में सृष्टि के अंत अर्थात् कयामत की अवस्था, हजरत जिब्राईल तथा अन्य फरिश्तों का वर्णन, पैगंबर मुहम्मद तथा उनके पूर्ववर्ती पैगंबरों तथा संपूर्ण आदम जात के पुनर्जीवन की धारणाओं को

दोहा, सोरठा, चौपाई में छंदोबद्ध किया गया है। इसमें कई स्थानों पर हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथों और पुराणों में प्रयुक्त शब्दों का इस्लामी शब्दों के पर्याय रूप में प्रयोग हुआ है। जैसे उन्होंने 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' में नारद का प्रयोग शैतान के लिए–

''ना छूंत एक मारत मुनि गुना,
कपट रूप नारद कर चुना।''
–(आखिरी कलाम, पृ. 342)

'बैकुंठ' का प्रयोग 'बिहिश्त' (जन्नत) के रूप में–

''होइ बैकुंठ जो आयसु ठेलेऊं,
दूत कहें मुख गेहूं मेलेऊं।।''
–(वही, पृष्ठ 359)

'कविलास' (कैलाश) को स्वर्ग के रूप में–

''पहिले दरस देखावहु,
पुनि पठावहु कविलास।''

जायसी की रचनाओं को पढ़कर ऐसी प्रतीत होता है कि उन्होंने न केवल भारतीय भाषा एवं छंदों को अपनाया बल्कि संपूर्ण भारतीय संस्कृति तीजों-त्योहारों को भी आत्मसात कर लिया है। उनके सबसे लोकप्रिय प्रेमाख्यान 'पद्मावत' के नायक-नायिका मुसलमान न होकर हिंदू घराने के राजकुमार तथा राजकुमारी हैं। जहां एक ओर उन्होंने इनके प्रेम को इहलौकिकता से परलौकिकता, व्यक्तिकता से समष्टिगतता की पराकाष्ठा तक पहुंचाया है, वहीं हिंदू समाज से जुड़े लोक जीवन के विभिन्न लोक व्यवहारों जैसे रहन-सहन, आचार-विचार, विभिन्न लोकोत्सव, जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, तीर्थ, व्रत, अंध विश्वास, जादू-टोना, सिद्धि टोटका, मनौतियां, पांसे का खेल, अभिसार, वीर पूजा, स्वामीभक्ति, सपत्नी कलह, सती प्रथा, गौना, विभिन्न देवी-देवताओं यथा–शिव पार्वती, हनुमान, लक्ष्मी, कुबेर आदि का चित्रण किया है। लोक प्रचलित कथाएं जैसे नारायण-बाली की कथा, गोपीनाथ-जलंधर की कथा, दानवीर कर्ण तथा इंद्र की कथा आदि का भी सुंदर वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त जायसी ने अनेक स्थानों पर प्रसंगानुसार भारतीय ज्योतिष, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद, नक्षत्र ज्ञान आदि का भी उल्लेख किया है जिससे यह विदित होता है कि उन्हें इन विषयों पर अच्छा खासा ज्ञान प्राप्त था।

जायसी ने पद्मावती के नख-शिख वर्णन, षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा वर्णन में भारतीय साहित्य परंपरा की परिपाटी का अनुसरण किया है। इस महाकाव्य में जायसी ने इतिहास और कल्पना, इहलौकिकता में परलौकिकता, सांसारिकता में आध्यात्मिकता तथा लोक कथा में सूफी सिद्धांतों को उन्मीलित कर अपनी समन्वयकारी दृष्टि का प्रमाण दिया है।

वस्तुतः पद्मावत एक प्रेमाख्यान है। इसमें प्रेम के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया गया है। सर्वप्रथम सुए के मुख से सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन सुनकर चित्तौड़ का राजा रत्नसेन मूर्च्छित हो जाता है। गुण-श्रवण द्वारा उसके हृदय में पद्मावती के लिए प्रेम जागृत हो जाता है। वह उसकी एक झलक पाने के लिए आतुर हो जाता है। कवि के अनुसार प्रेम की पीर अत्यंत गहरी होती है। जिसके हृदय में यह घाव लगता है, वही इसकी पीड़ा समझ सकता है। वास्तव में यह भाव अनिर्वचनीय है, इस भाव को वही समझ सकता है जिसने इस मार्ग का अनुसरण किया हो। वही प्रेम के अपार समुद्र में गिरकर लहरों के थपेड़ों से बेसुध होता है और यह विरह रूपी लहरें उसे प्रेम भंवर में घुमाती रहती हैं, जिससे निकल पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। वह कभी चेतनावस्था में होता है और कभी अचेतन हो जाता है। वह न तो जी पाता है और न ही मर पाता है–

''पेम घाव दुख जान न कोई।
जेहि लगि जानै पै सोई।।
परा सो पेम समुद्र अपारा।
लहररिहं लहर होई विसंभारा।।
बिहर भंवर होई भांवरि देई।
खिन खिन जीव हिलोरहिं तोई।।
खिनहि निसान जुड़ि जिड़ आई।
खिनहिं ठठै निससै बौराई।।
सिनहि पति खिन होइ मुख सेता।
खिनहि चेत खिन होई अचेता।।
कठिन मरन ते पेम व्यवस्था,
न जिअं जिवन न दसई अवस्था।।''

प्रेम पथ की कठिनाई के विषय में प्रसिद्ध सूफी संत मंसूर हल्लाज ने कहा है–''ईश्वर से मिलन तभी संभव है, जब हम कष्टों के मध्य से होकर गुजरें।'' इसी संदर्भ में एक अन्य प्रसिद्ध सूफी संत हजरत शेख सैयद अब्दुल कादिर जीलानी कहते हैं–

''वे हेजा वाना दर आ
अज दरे काशा नयेया।
के कसे नेस्त बजुजु
दर्दे तो दरखा नये ना।।''

भावार्थ यह है कि मेरे झोंपड़े के दरवाजे में बेपर्दा भीतर चला जा, क्योंकि मेरे घर में दर्द के अतिरिक्त कुछ और नहीं पाएगा।

यद्यपि ईश्वर तक पहुंचने का पथ दर्द से भरा हुआ है, फिर भी उसके सच्चे भक्त तथा प्रेमी प्रेम के इस कठिन खेल को सच्चे मन तथा दृढ़ निश्चय के साथ खेलने को तत्पर रहते हैं। उनका मानना है कि जिसने भी यह खेल खेला, उसके इहलोक तथा परलोक दोनों सफल हो गए। जायसी कहते हैं कि दुख के भीतर ही प्रेम की मधु सन्निहित है। जो इसे एक बार चख लेता है वह जीवन मरण के चक्र से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। तथा जो इस प्रेम के पथ का पथिक नहीं बनता उसका इस संसार में जन्म लेना ही बेकार है–

''भलेहि पेम है कठिन दुलेहा।
दुई जग तरा पेम जेइ खेला।।
दुख भीतर जो पेम मधु राखा।
जग नहिं मरन सबै जो चाखा।।''
जो नहिं सीस पेम पथ लावा।
सो प्रिथिवी महं काहेक आवा?''

प्रेम को जीवन की कसौटी मानने वाले जायसी ने 'पद्मावत' में आदर्श प्रेम की स्थापना करते

हुए दिखाया है कि जिस प्रकार एक सच्चा साधक ईश्वर को पाने के लिए, उस परमधाम तक पहुंचने के लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है और बड़ी से बड़ी कठिनाई से टकरा जाता है। ठीक उसी प्रकार राजा रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए अपना राज-पाठ, सुख-वैभव, सगे-संबंधियों यहां तक कि अपनी पत्नी रानी नागमती को त्याग कर सोलह सौ मित्रों के साथ योगी बन कर परमधाम अर्थात् सिंहलद्वीप की ओर चल पड़ता है–

''तजा राज राजा भा जोगी।
ओर किंगरी का गहे वियोगी।।''

सिंहलद्वीप पहुंचने के लिए उन्हें कई प्रकार की विषमताओं का सामना करना पड़ता है। अंततः सात समुद्र पार कर वे निश्चित स्थान पर पहुंच जाते हैं। यहां जायसी ने सात समुद्रों का वर्णन सूफी साधना की सात आध्यात्मिक अवस्थाओं के लिए भी किया है।

वहां राजा रत्नसेन अपने साथियों के साथ मंदिर के द्वार पर बैठकर भिक्षा मांगता है। जब राजा गंधर्वसेन के दूत उससे पूछते हैं कि तुम्हें भिक्षा में क्या चाहिए तो वह बिना किसी संकोच के अपने मन की अभिलाषा प्रकट करते हुए कहता है कि वह पद्मावती के लिए भिखारी बना है–

''हौं पदुमावति कर भिखमंगा।
दिस्टि न आव समुंद औ गंगा।।''

परंतु जब बसंत पंचमी के दिन उसे पद्मावती के दर्शन होते हैं तो वह उसकी एक झलक पाते ही मूर्च्छित हो जाता है और होश आने पर पद्मावती को अपने समक्ष न पाकर जल बिन मछली के समान तड़पने लगता है। उसके करुण विलाप को व्यक्त करते हुए जायसी कहते हैं–

''जस बिछोह जल मीन दुहेला।
जल हुति काढ़ि अगिनि यह मेला।।
चंदन आक दाग होई परे।
बुझहि न ते आखर पर जरै।।''

यह विरह वेदना केवल रत्नसेन को ही नहीं सताती बल्कि पद्मावती भी इसे समान रूप से झेलती है। रत्नसेन के प्रेम में विरह विताड़ित उसका सुख चैन लुट जाता है। सुखदाई वस्तुएं दुखदाई बन जाती हैं। चंद्रमा, चंदन तथा रेशम की मुलायम साड़ी जो अब तक शीतलता प्रदान करते थे, अब उनके स्पर्श मात्र से ही उसे जलन होने लगती है। रात्रि भी कल्प के समान लंबी प्रतीत होती है–

''पदुमावती तेहि जोग संजोगा।
परी पेम बस गहें बियोगा।।
नींद न परै रैनि जो आवा।
सेज के बांध जानु कोई लावा।।
दहै चांद और चंदन चीरू।
करै तन विरह गंभीरू।।
कल्प समान रैनि हठि बाढ़ी।
तिल तिल मरि जुग जुग बर गाडी।।''

'पद्मावत' में पद्मावती के विरह के विविध रूप देखने को मिलते हैं। पद्मावती वियोग खंड से लेकर पद्मावती रत्नसेन सूली खंड तक जायसी ने पद्मावती के विरहिणी रूप का ऊहात्मक वर्णन किया है। संयोग के कुछ पलों को छोड़कर विरह की यह पीड़ा अंतिम स्वास तक अर्थात् पद्मावती के सती हो जाने तक रहती है।

रत्नसेन तथा पद्मावती के विरह वर्णन के अतिरिक्त इस प्रेमाख्यान में जिस पात्र की विरह वेदना का सबसे गहन तथा मार्मिक रूप में चित्रण हुआ है वह है राजा रत्नसेन की पहली पत्नी रानी नागमती। नागमती का विरह वर्णन न केवल हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है, बल्कि विश्व साहित्य में भी अद्वितीय स्थान रखता है। नागमती का चरित्र चित्रण एक आदर्श भारतीय हिंदू नारी के रूप में हुआ है। नागमती का विरह, रत्नसेन तथा पद्मावती के विरह से भिन्न है। जहां इन दोनों के विरह का अधिकांश भाग पूर्व राग पर आधारित है और परस्पर है, वहीं नागमती का विरह एकपक्षीय तथा प्रवास विरह है। उसकी वेदना आत्मानुभूति से प्रेरित होने के कारण अत्यंत गंभीर तथा हृदयस्पर्शी बन गई है। उसका प्रेम दांपत्य रति से उत्पन्न प्रेम है।

'पद्मावत' के पांच खंडों में नागमती के वियोग का वर्णन है। पहला नागमती वियोग खंड, दूसरा नागमती संदेश खंड, तीसरा चित्तौड़ आगमन खंड, चौथा नागमती विलाप खंड और पांचवां पद्मावती सती खंड। इन खंडों का प्रत्येक छंद विरहानुकूल पत्नी के हृदय की गहन अनुभूति को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यंजित करता है।

अपने पति द्वारा सर्वस्व त्याग कर परदेस जाने के पश्चात् नागमती उसके स्वदेश लौट आने की प्रतीक्षा में दिन-रात पथ पर आंखें बिछाए विलाप करती रहती है–

''नागमती चित्तउर पथ हेरा।
पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।।''

नागमती के वियोग वर्णन में जायसी ने बारहमासा पद्धति अपनाई है। संयोग में मनोमुग्धकारी प्रतीत होने वाली प्रकृति विरहाकुल नागमती के लिए मनोदग्धकारी बन जाती है। प्रत्येक ऋतु उसे प्राणघातक अनुभूति होती है। भावविह्वल होकर वह पेड़-पौधों तथा पक्षियों को अपने मन का हाल कहती है। कवि कहता है कि इस विरहाग्नि के कारण उसका शारीरिक गठन, रंग-रूप सब परिवर्तित हो गया है। वह इतनी कृशकाय हो गई है कि उसके शरीर में मांस का लेशमात्र भी नहीं रह गया है। वह केवल हड्डियों का पिंजर मात्र बन कर रह गई है–

''सारस जोरि किमि हरी,
मारि गएऊ किन खग्गि।
झुरि-झुरि पांजरि धनि भई,
विरह कै लागी अग्गि।।''

वह पति वियोग में दिन-रात कोयल के समान कुहुक-कुहुक कर रोती रहती है और आंखों से रक्त के आंसू बहाती है–

''कुहुकि-कुहुकि जस कोइलि रोई।
रक्त आंसू धुंधली बन बोई।।''

उसकी पीड़ा की विषमता देख कर उसकी सखियां भी चिंतित हो जाती हैं। उसकी इस शोचनीय दशा को देख कर उन्हें यह प्रतीत होता है कि कहीं वह रोते-बिलखते अपने प्राण ही न त्याग दे। उसकी अवस्था मरणासन्न व्यक्ति के समान दयनीय हो जाती है। उसकी सखियां उसके प्राणों की रक्षा हेतु हर संभव उपचार करती दिखई देती हैं–

''सखि हिय हेरि हार मैन मारी।
हहरि पटान तजै अब नारी।
खिन एक अव पेट महंस्वांसा।
खिनहि जाइ सब होइ निरासा।।
पौनु डोलावहि सींचहि चोला।
पहरक समुझि नारि मुख बोला।।
प्रान पयान होत केहं राखा।
को मिलाव चात्रिक कै भाखा।।''

इस प्रकार रोते-बिलखते बारह मास बीत जाते हैं। नागमती के शोक में संपूर्ण प्रकृति शोकाकुल हो जाती है। नागमती अपने पति को पक्षियों द्वारा संदेश भेजना चाहती है किंतु विडंबना यह है कि उसकी विरह की ज्वाला से डर कर कोई भी पक्षी उसके समीप नहीं जाता कि कहीं उनके पंख न जल जाएं, जैसे कि वृक्षों के पत्ते जल गए और निपात हो गए–

''जेहि पंखी कहं अढवौं,
कहि सौ विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जटि,
तखिर होइ निपात।।''

जायसी कहते हैं कि उसकी विरह ज्वाला के धुएं से मेघ, भौंरे, पतंगे, कोयल, कौए, सांप सभी काले हो गए और पहाड़ जल कर अंगार हो गए–

''अस परजरा विरह कर कठा।
मेघ श्याम भै धुआं जो उठा।
बिरह सांस तस निकलै झारा।
धिकि धिकि परवत होहिं अंगारा।।
भवंर पतंग जरै औ नागा।
कोइलि भुजइल औ सब कागा।।''

नागमती के विरह का चरम यह है कि वह चाहती है कि यदि उसके जीते जी उसकी उसके पति से भेंट संभव नहीं है, तो उसके शरीर की भस्म को उस मार्ग पर डाल यिा जाए जहां से उसका पति चले, ताकि वह उसके चरणों का स्पर्श पा सके–

''यह तन जारौ छार के
कहौ कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं,
कंत धरै जहां पाउ।।''

जहां एक ओर नागमती पतिव्रता भारतीय नारी के आदर्श रूप को प्रस्तुत करती हुई दुखी मन से अपने प्राण त्याग देना चाहती है, वहीं दूसरी ओर उसके मन में पति-दर्शन की अभिलाषा बनी रहती है। अंततः वह भौंरे तथा कौवे द्वारा रत्नसेन को यह संदेश भिजवाती है–

''पिय सो कहेउ संदेसड़ा,
ऐ भौरा ए काग।
सो धनि बिरह जरि मुई,
तेहि धुआं हम लाग।।''

पक्षी द्वारा नागमती का विरह संदेश सुनकर रत्नसेन को उसकी पीर का अहसास होता है और वह अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहता है कि काश मेरे पंख होते तो मैं नागमती के पास उड़ कर पहुंच जाता–

''जस तू पंखि होहु दिन भरऊं।
चाहौ कबहु जाइ उड़ि बरऊ।।''

कुल मिलाकर देखा जाए तो जो गहनता, तीव्रता तथा समर्पण भाव नागमती के विरह वर्णन में देखने को मिलता है वह रत्नसेन का नागमती के प्रति नहीं दिखाई देता।

इस प्रकार जायसी ने एक दुखांत प्रेम कथा के माध्यम से प्रेम की पीर का जो चित्रण किया है वह आज भी साहित्य प्रेमियों के हृदयों पर अपनी गहरी छाप छोड़ता है। जायसी के विरह वर्णन के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि ''जो वेदना, जो कोमलता, जो सरलता और गंभीरता, इनके वचनों में है वह अत्यंत दुर्लभ है। जायसी को हम विप्रलंभ शृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं।''

जायसी महाकवि थे, सूफी भक्त भी लेकिन उनकी रचनाओं में सूफी एवं भारतीय संस्कृति के सामंजस्य की प्रवृत्ति मिलती है।

**हिंदी अधिकारी, कश्मीर केंद्रीय विश्वविद्यालय,
ट्रांसिट कैंपस, सोनवार, श्रीनगर, कश्मीर**

भारतीय साहित्य परंपरा का अनूठा प्रतिमान 'पद्मावत'

र. शौरिराजन

भारतीय साहित्य आत्मज्ञान को, मानवीय मूल्यों को, और स्नेहशील बंधुभाव को सृजित, प्रस्तुत एवं प्रसारित करने वाला साहित्य है। वेदकालीन श्रुति-स्मृतियों से लेकर परवर्ती इतिहास-पुराणों के सहारे, आधुनिक काव्य, नाटक, उपन्यास, कथा, निबंधों के संबल पर बढ़ती-फैलती भारतीय साहित्य परंपरा सार्थक भूमिका निभाती आ रही है। साथ ही, वह धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तत्त्वों, वृत्तों से अनुप्राणित होती रहती है। मुख्यतः भारतीय साहित्य का संवर्धन और प्रवर्धन धर्म-संप्रदायों के प्रभावी सहयोग से हुए। वैदिक सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, जैन मत, वैष्णव, शैव, शाक्त, तांत्रिक, नाथ-सिद्ध संप्रदाय, भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक अभिभावक रहे और अब भी रहते हैं। बाद में विदेशी आक्रमणों के प्रभाव भी उनके साथ मिल गए। इससे भारतीय साहित्य धारा को नूतन आयामों और आयतनों में से गुजरना पड़ा। अब वह 'अविभक्तम विभक्तेषु' की संहिता को सार्थक बनाती हुई बढ़ रही है।

भारत में फारसी-अरबी का परिचय मुस्लिम आक्रमणों के आगमन से हुआ। फारसी का धार्मिक-दार्शनिक साहित्य सूफी संतों के उपदेशों में था, जो तफसीर (टीका), हदीस (परंपरा), तसव्वुफ (रहस्यवाद), कलाम (सूक्तियां) की सूरत में था। तेरहवीं सदी में मौलाना रजीउद्दीन सगनि, काजी हमीदुद्दीन नागौरी, शेख जयालुद्दीन हंसवी, अमीर हसन सिज्जी वगैरह आलियों ने कुरान शरीफ की टीकाएं (व्याख्याएं), परंपरा विवरण, रहस्यवाद आदि पर कई ग्रंथ लिखे थे। ये सब उत्तर भारत में आक्रमणकारी तुर्कियों द्वारा लाए गए और फैलाए गए।

बारहवीं सदी का तुर्की हमलावर महमूद गजनवी मजहब, ज़बान व साहित्य का प्रेमी था। भारत पर आक्रमणों में फारसी-अरबी के अनेक कवि, लेखक, अदीबों को साथ लाया था और भारत में बसा लिया। गजनवी के वंशज कुतुबुद्दीन ऐबक, नासिरुद्दीन महमूद शाह, मुहम्मद गोरी, मुहम्मद तुगलक आदि भी भाषा और साहित्य के प्रेमी, अभिभावक रहे। मुहम्मद खाने रशीद के प्रमुख दरबारी कवि और रचनाकार अमीर खुसरो फारसी और हिंदवी (हिंदी) के मशहूर कवि, लेखक थे। उनका जन्म 1256 ई. में उत्तर प्रदेश के पटियाली गांव में हुआ था।

उत्तर भारत में शासक तुर्कों और शासित हिंदुओं के मेल-मिलाप से एक नई बोलचाल की भाषा का जन्म हुआ, जो इदुरू में छावनियों, बाजारों की सामान्य भाषा थी। लगभग 200 वर्ष तक यह मिली-जुली बोलचाल की कच्ची भाषा रही। इसमें साहित्य रचना 14वीं सदी के बाद प्रारंभ हुई। तब इस खिचड़ी भाषा का नाम 'जबान ए हिंदवी' था। उसका जन्म और विकास फारसी और ब्रज, अवधी, पंजाबी, सिंधी भाषाओं के संपर्क-व्याघात से हुआ। वह देश के जनमानस की आम भाषा बनती जा रही थी।

भक्ति आंदोलन के अनेक संत अपनी रचनाओं, प्रवचनों द्वारा उस हिंदवी भाषा का प्रसार कर रहे थे। विशेषकर सूफी संतों ने उसी भाषा के माध्यम से उपदेश दिए, गीत रचकर सुनाए। बंदा नवाज गेसूदराज (1321-1400 ई.) नामक सूफी संत ने हिंदवी में 'मीरत-उल-अशिकीन' नामक ग्रंथ रचा। मौलाना दाऊद ने 'चंदायन' नामक प्रेम गाथा ग्रंथ की रचना अवधी में की। इसके बाद कुतुबन ने 'मृगावती' नामक अवधी काव्य की रचना की। यह एक राजपूती प्रेम गाथा थी। मंझन ने ई. 1532 में 'मधुमालती' नामक श्रेष्ठ काव्य रचा था। 1540 ई. में मलिक मुहम्मद जायसी ने सूफी मसनवी ढंग पर 'पद्मावत' नामक वृहद प्रबंध काव्य की रचना पूरी की। इसमें लौकिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक तत्त्वों का काव्यमय विवेचन किया गया है और इतिहास, कल्पना, कवित्व गरिमा, कोमल कल्पना, आलंकारिक वर्णन का समाहार प्रस्तुत किया गया है।

इस्लाम धर्म से विकसित प्रेममार्गी दार्शनिक तत्त्वबोध है सूफी मत (तसव्वुफ), जो आत्म-चिंतन, स्वानुभूति, प्रेमोपासना-प्रधान संप्रदाय माना जाता है। कुरान और हदीस की कुछ पंक्तियों को जोड़कर इसका निर्माण हुआ है। सूफी मत के लक्ष्य हैं—परमात्मा संबंधी सत्य ज्ञान, सांसारिक (भौतिक) विषय-वस्तुओं से विरक्ति और त्याग, सदाचार, धर्म समन्वय, प्रेम साधना, मानवता से स्नेह सौजन्य और परमात्म चिंतन। सूफी सिद्धांत हैं—''सूफी ला कूफी'' (सूफियों का कोई निजी धर्म संप्रदाय नहीं है।)

सूफी संत बस्कतुल्लाह ने समझाया, ''प्रेमी हिंदु तुरक में हर रंग समा देवल और मसील में दीप एक दी भाव'' (मंदिर और मस्जिद में जलने वाला दीप समान है, एक है।)

इस भूमिका समेत प्रसिद्ध प्रेममार्गी सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी विरचित यह जर प्रबंध काव्य 'पद्मावत' को पहचानने का यह लघु प्रयास है।

अवध प्रांत के जायस नगर में रह कर संत कवि ने 'पद्मावत' की रचना पूरी की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शोध-सिद्ध वक्तव्य हैं—

मलिक मुहम्मद जायसी प्रसिद्ध सूफी फकीर

शेख मोहिदीन के शिष्य थे और जायस में रहते थे। इनकी एक छोटी-सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी अक्षरों में छपी मिली है। यह लगभग ई. 1528 में बाबर के समय में लिखी गई थी। इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा है।... जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है 'पद्मावत', जिसका प्रारंभिक निर्माण काल 1520 ई. के आस-पास है। आगे चलकर शेरशाह सूरी के शासनकाल में लगभग 20 वर्ष के बाद ई. 1540 में पूरा किया। 'पद्मावत' का एक बंगला अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने ई. 1650 में आलो उजालो नामक कवि से कराया था।... 'पद्मावत' की हस्त-लिखित प्रतियां अधिकतर फारसी अक्षरों में मिली हैं।... जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से दो मील दूर एक जंगल में रहा करते थे। वहीं इनकी मृत्यु हुई।

'''पद्मावत' प्रेमगाथा की परंपरा में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है। इसमें इतिहास और कल्पना का योग है। चित्तौड़ (राजस्थान) की महारानी पद्मिनी (पद्मावती) का इतिहास हिंदू हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाला है। इस कहानी का पूर्वार्ध तो बिलकुल कल्पित है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर है।... प्रेममार्गी सूफी कवि ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्त्व का आभास दिया है, जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है।''

'पद्मावत' का संक्षिप्त कथानक—सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती (पद्मिनी) सुशील, सुंदरी तरुणी थी। उसके पास वाचाल, सुशिक्षित हीरामन नामक तोता था। राजकुमारी के लिए सुयोग्य वर की तलाश में निकला हीरामन एक बहेलिए के हाथ में फंस गया। राजस्थान के चित्तौड़ राज्य के नरेश रत्नसेन ने उसे खरीद लिया। रत्नसेन का वह स्नेही साथी बन गया। तोते ने एक दिन सिंहल की राजकुमारी पद्मिनी के अनुपम, रूप-लावण्य का मोहक वर्णन रतनसेन को सुनाया, तो वह पद्मिनी को पाने का मोह न छोड़ सका। वह संत योगी के वेश में सिंहल देश पहुंच गया। उसके साथ सैकड़ों अजेय वीर योद्धा भी गए। वहां सिंहल नरेश को तुमुल युद्ध में हराकर विजय दक्षिणा के रूप में पद्मिनी को रत्नसेन ने ग्रहण किया। उसको साथ लेकर रत्नसेन चित्तौड़ आ पहुंचा।

उन दिनों दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन था। उसने पद्मिनी के बारे में सुना तो उसे पाने की कामना से चित्तौड़ के राजा रत्नसेन को आज्ञा पत्र भेजा। रत्नसेन ने बादशाह को फटकारा, भर्त्सना की। बादशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। पर जीत न सका। राजा से छल पूर्वक संधि करके, उसे बंदी बना लिया। वीर क्षत्राणी पद्मिनी ने साहस करके पति को बादशाह के चंगुल से छुड़ा लिया। बाद में रत्नसेन पड़ोसी कुंभलमेर के राजा से लड़ते हुए वीरगति पा गया। पति के शव के साथ जलती चिता में बैठकर पद्मिनी सती हो गई। भारी सेना के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई करने आ रहे अलाउद्दीन को राजा रत्नसेन, रानी पद्मिनी की राख ही मयस्सर हुई।

इस काव्य कथा में और कोई पात्र, वृत्तांत वर्णन और चिंतन परिणाम पाए जाते हैं, जो प्रबंध को प्रवाहपूर्ण और प्रौढ़तम बनाते हैं।

उपसंहार खंड में जायसी ने कहा—

''मुहम्मद यहि कवि जोरि सुनावा।
सुना जो पेम पीर गा पावा।।
जोरी लाइ रकत कै लेई।
गाढी प्रीति नैन जल भेई।।
औ मन जानि कवित अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत यहं चीन्हा।।''

''...मुहम्मद (जायसी) ने यह काव्य रचकर सुनाया। जिसने सुना, उसे प्रेम की पीड़ा का अनुभव हुआ। इस प्रेम कथा को रक्त की लेई लगाकर जोड़ा है। इसकी गाढ़ी प्रीति को आंसुओं से भिगोया है। मन में यह समझ कर ऐसा कवित्व रचा है कि शायद जगत में यही निशानी बची रह जाए।...''

'पद्मावत' महाकाव्य को मूल और संजीवनी व्याख्या सहित श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्रामाणिक, उपयोगी, उपादेय महाग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया है (1955 ई. में)।

इस ग्रंथ के अनुसार 653 गीत हैं और 58 विषय सूची खंड हैं—स्तुति खंड, सिंहल द्वीप वर्णन खंड, जन्म खंड, मंडप गायन खंड, पद्मावती वियोग खंड, पद्मावती सुआ (तोता) भेंट खंड, वसंत खंड आदि।

जायसी ने अपनी प्रेममार्गी मान्यता का निवेदन किया—

''मानुस पेम भएउ बैकुंठी।
नाहिं त काह छार एक मूंठी।।
पेम पंथ जौं पहुंचे पारा।
बहुरि न आइ मिलै एहि छारां।।''

महापंडित श्री वासुदेव शरण अग्रवाल का यह जायसी और पद्मावती संबंधी अभिमत महत्त्वपूर्ण है—

''हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में जायसी कृत 'पद्मावत' शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। अवधी भाषा का जैसा ठेठ रूप और मर्मस्पर्शी माधुर्य यहां मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबंध काव्यों के अनेक गुण एकत्र प्राप्त हैं। मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त ऐतिहासिक कथा वस्तु, भाषा की विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर, सर्वांगीण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिंतन—ये इस काव्य की विशेषताएं हैं। 'पद्मावत' हिंदी साहित्य का जगमगाता हुआ हीरा है।... फारसी के प्रेम काव्य या मसनवी कथाओं का और भारतीय प्रेम गाथाओं का 'पद्मावत' पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त सहजयानी सिद्धों की साधना चर्या, नाथ गुरुओं की योग-निर्गुण परंपरा एवं मुसलमानी संतों की सूफी परंपरा का प्रभाव भी जायसी पर पूरी मात्रा में पड़ा है। जायसी का संदेश है—''मानुस पेम भएउ बैकुंठी।''

24, 41 स्ट्रीट, सेक्टर-8, के. के. नगर,
चेन्नई-600078 (तमिलनाडु)

जायसी : लौकिक से अलौकिक की यात्रा

डॉ. विवेक गौतम

जायसी के पूर्व भी प्रेमाख्यान लेखक हुए, जिनमें हिंदू भी शामिल हैं। जायसी के बाद भी उन्नीसवीं शताब्दी तक महत्त्वपूर्ण प्रेमाख्यान लेखक हुए परंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जायसी को ही महाकवि तुलसीदास की टक्कर का माना है।

जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। 'मलिक' शब्द वंश की उपाधि-परंपरा है। इनके पूर्वज अरब से थे। ऐसा कहा जाता है कि इनके माता-पिता जायस नगर के 'कंचाने' मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था। इनकी मां मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थीं। परिवार का संबंध जायस नामक स्थान के साथ होने के कारण इन्हें जायसी कहा जाता है। अतः कवि का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी है।

जायसी ने अपनी एक कृति 'आखिरी कलाम' की रचना 936 हिजरी में बाबर के शासनकाल में की थी। इस कृति में कवि ने अपने जन्म के संबंध में कहा है—

''भौ अवतार मोर नव सदी।
तीस बरसि ऊपर कवि बदी।।''

विद्वानों ने इस पंक्ति का अर्थ अपने-अपने ढंग के अनुसार लगाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा परशुराम चतुर्वेदी ने इस पंक्ति के आधार पर जायसी का जन्मकाल 900 हिजरी (सन् 1492 के आस-पास) माना है। डॉ. जयदेव और सैयद कल्ले मुस्तफी ने भी इसी मत की पुष्टि की है। डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ ने सन् 1498 ई., डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, इंद्रचंद्र नारंग ने इसे 1398-1494 के बीच माना है, जबकि डॉ. रामपूजन तिवारी जायसी के जन्म की तिथि सन् 1464 ई. मानते हैं।

जायसी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह एक बार शेरशाह सूरी के दरबार में गए। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हंस पड़ा। उन्होंने अत्यंत शांत भाव से पूछा—''मोहि कां हससि, कि कोहरहि?'' अर्थात तू मुझ पर हंसा या उस कुम्हार पर? इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा मांगी। ऐसा भी कहा जाता है कि वह शेरशाह के दरबार में नहीं गए थे बल्कि उनकी ख्याति सुनकर शेरशाह ही उनके पास आया था।

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी परंपरा से तो प्रभावित थे ही परंतु उनका संपर्क हिंदू संप्रदायों यथा गोरखपंथी, रसायनी, वेदांती आदि से भी प्रगाढ़ था। अतः उन्हें इन संप्रदायों के बारे में बहुत-सा ज्ञान प्राप्त था। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में हठयोग, वेदांत, रसायन आदि की अनेक बातों का उल्लेख मिलता है। उन्होंने हठयोग की इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों की चर्चा ही नहीं की बल्कि सुषुम्ना नाड़ी में नाभिचक्र (कुंडलिनी) और दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) का भी बार-बार वर्णन किया है। योगी ब्रह्म की अनुभूति के लिए कुंडलिनी को जगाकर ब्रह्मद्वार तक पहुंचने का प्रयत्न करता है। उसकी साधना में अनेक विघ्न आते हैं। जायसी ने योग के इस निरूपण में अपने इस्लाम की कथा का भी विचित्र मिश्रण किया है। अंतराय के स्थान पर उन्होंने शैतान को रखा है और उसे नारद नाम दिया है। यही नारद दशमद्वार का पहरेदार है और काम, क्रोध आदि इसके सिपाही हैं। यही साधकों को बहकाता है। कवि ने नारद को झगड़ा करवाने वाला समझकर ही शायद शैतान बनाया है। इसी प्रकार पद्मावत में रसायनियों के प्रसंग आए हैं। गोरखपंथियों की भी बहुत बातें जायसी ने अपनी रचनाओं में साधिकार प्रयुक्त की हैं। सिंहल द्वीप में पद्मिनी स्त्रियों का होना और योगियों का सिद्धि-प्राप्ति के लिए वहां जाना ऐसे ही प्रसंग हैं। जायसी एक जिज्ञासु साधक थे। न केवल मुसलमान संस्कृति अपितु हिंदू साधकों के विश्वासों में, मान्यताओं में भी उन्हें गहरी दिलचस्पी थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में व्यापक जीवन-दर्शन की झलक मिलती है।

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे तथा बहुत ही विनम्र। कोई उद्दंडता वाणी में नहीं मिलती। जायसी को सिद्ध योगी मानकर बहुत-से लोग उनके शिष्य बने। कहते हैं कि उनके शिष्य पद्मावत के पदों से इतने अभिभूत थे कि वे उन्हें यहां-वहां झूम-झूमकर गाते फिरते थे। ऐसा कहा जाता है कि उनका एक चेला नागमती का बारहमासा गा-गाकर भीख मांगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने वह बारहमासा सुना। उन्हें निम्न दोहा बड़ा प्रिय लगा—

''कंवल जो बिगसा मानसर,
बिनु जल गयउ सुखाई।
सूखि बेलि पुनि पलुहै,
जो पिय सींचे आइ।।''

राजा को जब पता चला कि इसके रचयिता जायसी थे, तो उन्होंने सम्मानपूर्वक उन्हें अपने दरबार में बुलाया और मान-सम्मान किया।

जायसी की रचनाओं में लोक पक्ष एवं आध्यात्मिक पक्ष में सर्वग्राह्य सामंजस्य मिलता है, जिसके कारण उनकी प्रेम की पीर तथा उस परम शक्ति में लीन हो जाने की भावना ने व्यापक तौर पर समाज को प्रभावित किया। जिस प्रकार तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के रूप में लोकमानस को एक अद्‌भुत ग्रंथ दिया, उसी प्रकार जायसी ने पद्‌मावत के रूप में एक ऐसा मानक ग्रंथ दिया, जो जीवन-दर्शन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण था और आज भी है।

जायसी द्वारा 24 ग्रंथों के रचे होने की बात कही है और पूरी फेहरिस्त भी प्रस्तुत की है, जो इस प्रकार है–

1. पद्‌मावत, 2. अखरावट, 3. सखरावत, 4. चंपावत, 5. इतरावत, 6. मटकावत, 7. चित्रावत, 8. खुर्वानामा, 9. मोराईनामा, 10. मुकहरानामा, 11. मुखरानामा, 12. पोस्तीनामा, 13. होलीनामा, 14. आखिरी कलाम, 15. घनावत, 16. सोरठ, 17. जपनी, 18. मैनावत, 19. मेखरावटनामा, 20. कहारनामा, 21. स्फुट कविताएं, 22. लहतावत, 23. सकरानामा, 24. मसला या मसलानामा।

जायसी ने इस्लामी एवं हिंदू विश्वासों को समन्वयात्मक ढंग से अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है। ब्रह्म मानव शरीर में ही समाया हुआ बताया गया है। इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि को भी कवि ने शरीर में ही प्रदर्शित किया है। इस शरीर को ही जगत मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी में अनुस्यूत हैं। मस्तक मक्का है, हृदय मदीना है, जिसमें पैगंबर का नाम सदा रहता है। श्रवण, आंख, नाक और मुख को क्रमशः जिब्राईल, मैकाईल, इसराफील और इजराईल समझना चाहिए। नाभिमंडल (कुंडलिनी) के पास कोतवाल के रूप में शैतान का पहरा है। वह नौ द्वारों पर नित प्रति घूमता है और दशम् द्वार की रक्षा करता है।

कवि विश्वव्यापी ईश्वर तत्त्व को घट-घट में समाया हुआ मानता है। उसकी मान्यता है कि ब्राह्य सृष्टि मानव शरीर में भी विनिर्मित है। ब्रह्म आदि की साधना के लिए तीर्थों पर जाने की आवश्यकता नहीं; सब कुछ 'काया नगरी' में ही स्थित है।

जो ब्रह्मांड सो पिंड है। उपनिषदों में ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा की एकता को बार-बार समझाया गया है! अर्थात् जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। वस्तुतः पिंड और ब्रह्मांड की एकता का अर्थ है अनंत और अंत की एक-दूसरे पर निर्भरता। इसी तथ्य को लेकर साधना के क्षेत्र में रहस्यवाद की उत्पत्ति हुई, जिसकी प्रेरणा से योग में पिंड या घट के भीतर ही ब्रह्म का एक विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट हुआ और उसके पास तक पहुंचने की परिकल्पना की गई। जायसी ने लिखा है–

''सातों दीप नवों खंड आठौ दिसा जो आहिं।
जो बरह्मांड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं।।''

जायसी ने जीव और ब्रह्म के अभेद-तत्त्व की स्थापना की है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि बूंद में ही समुद्र समाया हुआ है अर्थात् मनुष्य के शरीर के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्मांड है–

''बुन्दहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हैरान, मुहमद आपुहि आपु मंह।।''

कवि ने ठाकुर के विषय में भी ब्रह्म और सृष्टि को इस प्रकार परिभाषित किया है–

''ठा-ठाकुर बड़ आप गोसाईं।
जेहि सिरजा जग अपनिहि नाईं।
आपुहि आपु जो देखे चहा।
आपनि प्रभुता आप सौं कहा।।
आपुहि कागद, आपु मसि,
आपुहि लेखनहार।
आपुहि लिखनी, आखर,
आपुहिं मंडित अपार।।''

परमात्मा को प्राप्त करने के विविध मार्ग हो सकते हैं। परंतु जायसी प्रेममार्ग को ही सर्वोपरि मानते हैं। जायसी ने नमाज, तरीकत, हकीकत, मारिफत और शरीअत को इस पंथ का महत्त्वपूर्ण अंग माना है। इस्लामी सृष्टि-रचना की कल्पना से उनका कोई मतभेद नहीं है। कुरान में आदम को खुदा के रूप-रंग का कहा गया है। जायसी ने भी कहा है–''उहै रूप आदन अवतरा।'' स्वर्ग से आदम के निष्कासन की कहानी को भी जायसी ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। आदम के अल्लाह से वियोग के दुख को जायसी ने साधारण जीव के रूप में मानकर इस्लामी कल्पना पर सूफी मत की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है। डॉ. शिवसहाय पाठक के शब्दों में–''यद्यपि कायानिष्ठ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए 'चारि बसेरे सों चढ़े सत सों उपरै पार' वाली सूफी साधकों की विशिष्ट साधना पद्धति है तथापि जायसी ने योगमार्ग की साधना की बातें भी स्वीकार की हैं।'' जायसी ने योगियों की पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग बड़ी कुशलता से किया है। अनहदनाद, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, शून्य, सहचार, चक्र, कमल, कुंडलिनि, नौ पौरी, दशम् द्वार आदि अनेक योगसाधनापरक शब्द उनकी रचनाओं में मिलते हैं।

मूल्यों के मानवीय संदर्भों में जायसी ने शुद्ध काव्य की भाव-व्यंजना के माध्यम से जीवन के मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। कवि ने अपनी ओर से किसी मूल्य की भूमिका प्रस्तुत नहीं की, न ही नैतिक आदर्शों की अभिव्यक्ति की है। जीवन के व्यापक विस्तार में अनुभवों को जिस सघनता के साथ और मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया गया है, उसमें व्यापक मानवीय मूल्यों की अनुगूंज निरंतर होती रहती है। स्वयं कवि ने पृथ्वी विजय की असारता को दो मुट्‌ठी राख के समान झूठा कहा है और कथन की इस कारुणिक व्यंजना में सघन-विषाद की जो अनुभूति व्यंजित हुई है, उसमें

समस्त मानवीय जीवन की असारता के बीच मूल्य-दृष्टि को निहित देखा जा सकता है। इस करुणा में मानवीय प्रेम की सघनता को लक्षित किया जा सकता है। पिछले विवेचन में हमने देखा है कि जायसी की रचना की मूल-दृष्टि ईश्वर अथवा अध्यात्म नहीं है, उनकी भावाभिव्यक्ति के केंद्र में मनुष्य रहा है और यह मनुष्य सामान्य जीवन बिताने वाला व्यक्ति है। उनकी दृष्टि में इस मनुष्य का सामान्य जीवन क्रम रहा है, जिसके अंतर्गत उसके चरित्र के सभी पक्ष, अच्छे-बुरे आ जाते हैं। अपने इस जीवन-क्रम में मनुष्य सारी मानवीय करुणा के बीच अपने मूल्यों को व्यंजित करता है। जिस प्रकार भवभूति ने करुण-रस को काव्य के रसों में व्याप्त सर्वोपरि रस माना है, उसी प्रकार जायसी ने इस मानवीय करुणा को व्यापक धर्म स्वीकार किया है, जिसकी व्याप्ति में वस्तुतः मानव-प्रेम के विविध आयाम व्यंजित होते हैं। जायसी ने इस क्रम में मनुष्य के मूल्यों को व्यंजित करने की जो दृष्टि अपनायी है, वह शुद्ध रचना की है। इसी कारण वह जीवन के सभी पक्षों के स्वीकार के बीच हमको ऐसी निर्मल दृष्टि देते हैं। जिससे हम सारे घटना क्रम को मानवीय संवेदना के साथ ग्रहण करते हैं।

अपने युग के अन्य प्रमुख कवियों में जायसी की यह रचना-दृष्टि धर्म और मूल्य की अवधारणा के संबंध में विशिष्ट है और अधिक रचनात्मक भी। जैसा हमने देखा है, कबीर की रचना-दृष्टि प्रखर है और वह मूल्यों की अभिव्यक्ति में स्पष्टतः सत् और असत् के अलगाव को मान कर चलती है। वस्तुतः कबीर ने अपने काव्य में जीवन के यथार्थ को उसकी संपूर्णता में ग्रहण नहीं किया। उनका व्यक्तित्व केवल कवि का नहीं रहा है और इस कारण उन्होंने रचना के स्तर पर संपूर्ण जीवन को अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न भी नहीं किया। यह बात भिन्न संदर्भ में सूरदास के बारे में भी सही है, उनकी दृष्टि मानवीय जीवन में विशेष मूल्यों के अन्वेषण की रही है, जो व्यापक मानवीय अनुभव के बीच अभिव्यक्ति ग्रहण करती है। तुलसीदास ने, जैसा हम देखते हैं, एक ओर व्यापक मानवीय परिस्थितियों तथा पात्रों के माध्यम से भी धर्म-दृष्टि को और उसमें निहित मूल्यों को अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में जायसी की स्थिति किंचित भिन्न है, वह सूफी संप्रदाय तथा उसकी धर्म-दृष्टि को व्यापक रूप में स्वीकार करते हैं। जैसा हम देखते हैं, वह अपने रचना-क्रम में निरंतर युगीन परिस्थिति और व्यापक मानवीय संदर्भो के यथार्थ की अभिव्यक्ति से ही मानव-धर्म को व्यंजित करते हैं। अध्ययन के क्रम में यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है कि भक्ति-युग के कवि सुधारक, दार्शनिक, साधक होने की अपेक्षा मुख्यतः कवि हैं। यह बात जायसी के संदर्भ में सबसे अधिक ठीक मानी जा सकती और यही कारण है कि अन्य कवियों ने धार्मिक मूल्यपरक भूमिकाओं को निर्मित करने में अपने समकालीन जीवन तथा युगीन परिस्थितियों की अपेक्षा पौराणिक तथा मिथकीय कल्पनाओं का अधिक उपयोग किया है। जबकि जायसी ने अपनी मूल-दृष्टि अपने युग के यथार्थ जीवन की ट्रेजडी से ग्रहण की है। एक श्रेष्ठ रचनाकार रूप में जायसी का उद्देश्य न पाठकों के मनोरंजन का है और न आध्यात्मिक संदेश देने का। इन दोनों स्थितियों से स्वतंत्र रह कर जायसी रचना के स्तर पर अपने अनुभव को ऐसा अर्थ प्रदान करते हैं जो मनुष्य के जीवन में मानवीय मूल्यों का आभास देता है।

जिस रचनात्मक तटस्थता को साहित्य में निरंतर महत्त्व दिया गया है, वह जायसी की मूल्य-दृष्टि रही है। इस तटस्थता के साथ उनकी रचना में निरंतर उदार-भाव बना रहा है। उन्होंने इस भाव-स्तर पर अपनी कथा के संयोजन-विस्तार में सभी प्रकार के मतों-विचारों को समाहित किया है। यह उनकी रचना में निरंतर लक्षित है कि बिना स्वीकार या प्रतिबद्धता के वह सब कुछ ग्रहण कर सकते हैं। यहां इन समस्त मतों और साधनाओं को जायसी का स्वीकार मिला हो, यह असंगत है। वस्तुतः उनकी रचनात्मक आंतरिक संवेदना में यह सब तिरोहित होकर व्यापक मानवीय मूल्य-दृष्टि व्यंजित करते हैं।

जायसी ने प्रेम की व्यापक और सघन व्यंजनाओं में क्रमशः करुणा की व्याप्ति का अनुसंधान किया है। परंतु यह स्मरणीय है कि उनकी रचना में सूफी मत के अनुसार प्रेम की गरिमा को स्थापित करना नहीं रहा है। इसमें प्रेम और युद्ध समान महत्त्व के साथ अभिव्यक्ति ग्रहण करते हैं। निरंतर गतिशील निर्मम इतिहास के साथ मिथ-कल्पना का भावात्मक स्वप्न-जगत् अनुभूत हुआ है। यहां पाठक व्यापक मानवता के नैतिक मूल्य का सूक्ष्म स्तर पर आस्वाद करता है। कवि के अनुसार विषाद की करुण अनुभूति को प्रेम की सुगंध स्वीकार किया जा सकता है। कवि मानवीय जीवन में मृत्यु का उल्लेख करता है और आत्मा के शरीर से मुक्त होने की बात कहता है और यह पिंजरे से तोते के उड़ जाने के बाद का कथन है। सखियां कहती हैं कि ''तोते ने पिंजरा था उसे सौंप दिया। इस पिंजरे में दस द्वार हैं, फिर इसमें रहने वाला बिल्ली के आक्रमण से कैसे बच सकता है।'' इन सहज उक्तियों में सघन स्तर पर जीवन की असारता की व्यंजना है। इस क्रम में जीवन की नश्वरता के साथ साधना की परम मूल्य-दृष्टि भी व्यंजित होती है।

जायसी अपने युग में दो समानांतर सामंती समाजों के बीच युग-जीवन को विघटित-विशृंखलित रूप में देख रहे थे लेकिन उन्होंने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति द्वारा आत्मा से परमात्मा की एकात्मकता का व्यापक संदेश दिया।

डी-61, प्रथम तल,
ईस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110091

जायसी के काव्य में साधना के सांप्रदायिक प्रतीक

जागृति

हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध काव्य 'पद्मावत' के प्रणेता मलिक मुहम्मद जायसी सूफी साधकों तथा कवियों में प्रमुख हैं, जो अपने अंतर्मन के स्वर 'प्रेम की पीर' को जन बोली में संजोकर जनता तक पहुंचाने में सफल हुए। जायसी का व्यक्तित्व, शारीरिक गठन की दृष्टि से प्रभावशाली नहीं था। उनके कुरूप होने के साथ ही काने और बहरे होने की बात अनेक किंवदंतियों में प्रसिद्ध है। उन्होंने स्वयं अपने एक नयन और एक श्रवण होने की बात लिखी है–

''एक सूझा एकै नयनाहां।
उआ सूक जस नखतन्ह मांहा।।''
××× ××× ×××
''मुहम्मद बाई दिस तजा,
इक सरबन इक आंख।''[1]

कहते हैं कि इस कुरूप चेहरे को देखकर एक बार बादशाह शेरशाह हंस पड़ा। जायसी ने उसे देखकर बड़े शांत भाव से पूछा–''मुझ पर हंस रहे हो या उस कुम्हार–बनाने वाले ईश्वर पर?''[2]

''प्रतीक का प्रयोग उस प्रस्तुत दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है, जो अदृश्य या अप्रस्तुत वस्तु को अपने साहचर्य से प्रतिविधान करती है।''[3] जायसी का कथन–मुझ पर हंस रहे हो या उस कुम्हार (बनाने वाले ईश्वर) पर? स्पष्ट है कुम्हार को ईश्वर के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। कुम्हार शब्द का प्रयोग होते ही बिंब के रूप में ईश्वर शब्द को बोध होता है। प्रतीकवाद का उद्देश्य है कि ''वस्तु को मस्तिष्क में इस रूप में बिंबित किया जाए कि वह तो अदृश्य रहे, पर किसी वस्तु के साथ उसके सादृश्य से यह बिंब मस्तिष्क में आ जाए।''[4] किसी अन्य स्तर की समनुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। प्रतीक अपने मूल का परिचायक होता है।

'पद्मावत' लौकिकतः तो रत्नसेन की प्रेमिका और पद्मावती है, परंतु अलौकिक रूप में वह ब्रह्म है। वह परम तेज का प्रतीक है। पद्मावती अपने पंचभौतिक सौंदर्य में चंद्रमा है, जिससे मिलने के लिए रत्नसेन रूपी सूर्य व्याकुल होता है। जो सूर्य को भी प्रकाशित करने वाली महाज्योति है, वहीं पद्मावती का अमूर्त रूप है। जायसी इसी रूप के लिए सूर्य का प्रतीक प्रस्तुत करते हैं। पद्मावती का भौतिक देह उस अमूर्त ज्योति का मूर्त रूप है, जो सौंदर्य के समस्त तत्त्वों से अलंकृत है, जो षोडश शृंगार-मंडित है और जिसके सोलह कलाओं से पूर्ण सौंदर्य को चंद्रमा मानकर संपूर्ण काव्य में वर्णन किया है। पद्मावती रत्नसेन के हृदय को प्रकाशित कर देती है।

पुरुष और प्रकृति के लिए सूर्य-चंद्र–

''अब हौं सुरुज चांद वह छाया।
जल बिनु मीन रकत बिनु काया।।
किरिन-करा भा प्रेम अंकरू।
जो ससि सरंग, मिलौ होइ सूरू।।
तहां भंवर जिउ कंवला गंधी।
भइ ससि राहु केरि रिनी बंधी।।''[5]

सूर्य-चंद्र पुरुष और प्रकृति हैं। रत्नसेन रूपी सूर्य अशांत, उष्ण और तीव्र आलोक से संयुक्त है। पद्मावती रूपी चंद्रमा शान्त, स्निग्ध, शीतल और सूर्य को अपनी ओर आकृष्ट करता है। विवाह के बाद इन दोनों की सामरस्य स्थिति दिखाई गई है। इनके सामरस्य स्थिति को ही हम अद्वय भाव, यामल भाव कह सकते हैं। जायसी ने सूर्य और चंद्रमा के इस रूपक को सिद्धों से प्राप्त किया था। चंद्र-सूर्य, इला-पिंगला, वाम-दक्षिण आदि को वश में करना, सिद्धों से प्राप्त हठयोगियों की साधना का उद्देश्य है। सूर्य-चंद्र प्रतीकों का प्रयोग विविध रूपों में किया गया है।

''जायसी ने सूफी प्रेम–साधना के अंतर्गत कुंडली योग की सब परिभाषाओं को अंगीकार कर लिया है। इसके कारण पद्मावत पर भारतीयता का गहरा रंग चढ़ गया है। सूफी साधनात्मक शब्दावली सरल बनकर भारतीय भावनाओं के साथ इस प्रकार घुल मिल गई थी कि पढ़ते समय दोनों में कोई विरोध और पार्थक्य नहीं दिखाई देता।''[6] रत्नसेन भेष बदलकर गोरखपंथी योगी का रूप धारण कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा में आगे बढ़ता है। वह हाथ में किंगरी, सिर पर चक्र, गले में जोगपट्ट तथा रुद्राक्ष, कानों में मुद्रा तथा शरीर पर कंथा डालकर पद्मिनी की खोज में निकल जाता है।

अनहद नाद के लिए घड़ियाल–

''घरी घरी घरीयार पुकारा।
पूजी बार सो आपनि मारा।।
नौ पौरी पर दसवं दुवारा।
तेहि पर बाज बाज राज घरीयारा।।''[7]

जायसी ने अनहद नाद के लिए घड़ियाल शब्द को प्रतीक रूप में लिया है। साधना के चरम अवस्था में साधक जब चरमोत्कर्ष की अवस्था में होता है तो अनहद नाद की ध्वनि सुनाई देती है, जो उसकी तल्लीनता को केंद्रित रखने में सहायक होती है।

ब्रह्मरंध्र के लिए दशम द्वार–

''दसवं दुआर गुपुत एक ताकी।

अगम चढ़ाव बाट सुठी बांकी।।
भेदी कोई जाई ओहि घाटि।
जौ लै भेद चढ़ै होइ चांटी।।
दसवं दुआर तारुका लेखा।
उलटी दिस्टी जो लाव सो देखा।।''[8]

उल्टी दृष्टि या गगन-दृष्टि–

''उलटि दिठि माया सों रुठी।
पलटि न फिरी जानि कै झूठी।।
दसवं दुआर ताल कै लेखा।
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।।''[9]

नाथ योगियों में 'उल्टा–साधन' का बहुत प्रचार था। इसे उजार साधन भी कहा जाता है। जायसी ने काव्य साधन के अंतर्गत अनेक स्थलों पर 'गगन दृष्टि' या 'उल्टी-दृष्टि' का प्रयोग किया है। अद्‌भुत ज्योति को देखने के लिए साधक ने गगन-दृष्टि का उल्लेख किया है।[10]

पद्‌मावत में अध्यात्म और काव्य–दोनों में पद्‌मावती और रत्नसेन का भेंट खंड शिखर के समान है। ज्ञात होता है कि कवि ने प्रतीक का सहारा लेकर अपने काव्यों को आध्यात्मिक अर्थों का एक कोश ही बना डाला है। सहजयान के अनुसार मस्तिष्क में जो सहस्रार चक्र है, उसी का नाम उष्णीश कमल है। उस उष्णीश कमल में महासुख का निवास है। महासुख कमल में शरीर का जो रूप है उसे सहज सुंदरी कहा जाता है। उस सहज सुंदरी के साथ सिद्ध योगी सदा-सदा के लिए युगबद्ध होकर महासुख का अनुभव करते हैं। शरीर के सात चक्र ही सात खंड हैं। उसके ऊपर आठवां चक्र उष्णीश कमल का कविलास है। प्रेमपंथ में आगे बढ़ने वाला ही कविलास को प्राप्त करता है, वहां मृत्यु नहीं महासुख का स्थान है। वहां पहुंच कर साधक सहज सुंदरी के साथ विलास करता है। इसे ही शिव या शक्ति का सम्मिलन कहते हैं। वही जायसी का सुखबास है।

''धातु कमाई सिखे तै जोगी।
अब कस जस निरधातु वियोगी।।
कहां सो खोए वीरौ लोना।
जेही ते होइ रूप औ सोना।।''[11]

जायसी के काव्य में रहस्याभिव्यक्ति प्रतीत पद्धति बड़ी सहायक रही है। रहस्य का तात्पर्य है गुप्त और गूढ़। प्रेम का विषय गोप्य भी है और गूढ़ भी है। लौकिक प्रेम भी गोप्य और गूढ़ रखा जाता है। गूढ़ भी है क्योंकि इसे वही जानता है जिसने प्रेम किया है। फिर भी लौकिक प्रेम का कुछ आधार होता है। प्रेमी-प्रेमिका स्वरूप, संपर्क और सान्निध्य के अनुसार एक-दूसरे से बंधते हैं–नायिका–(पद्‌मावती)–लौकिक ज्योति रूप प्रतीक। नायक–(रत्नसेन)–साधक प्रेमी आत्मा का प्रतीक। सिंघल यात्रा आध्यात्मिक यात्रा का प्रतीक।

जायसी ने पद्‌मावती के माध्यम से ईश्वरीय ज्योति और अलौकिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया है। रत्नसेन आत्मा का प्रतीक है। इन नायक-नायिकाओं की प्रेम कथा के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के प्रेम की प्रतीकात्मक कथा की भी अभिव्यक्ति करता है। यहां यह द्रष्टव्य है कि प्रेम मार्ग में प्रेमिका तो प्रतीक मात्र है। प्रेम मार्गी साधना में अध्यात्म के प्रति वैसा ही तीव्र आकर्षण दिखाया गया है जैसा कामी को नारी के प्रति होता है। प्रेमी और प्रेमिका के सम्मिलन में अध्यात्म दर्शन के साक्षात् आनंद को देश और काल किसी प्रकार तिरोहित नहीं कर सकते। इसीलिए प्रेमी और प्रेमिका का मिलन स्वयं में एक पूर्ण प्रतीक है।

सूफी कवियों ने ईश्वर और प्रेम के प्रतीक रूप में समुद्र का प्रयोग किया है। छह समुद्र षट्‌चक्रों का भी भी प्रतीक है, सातवां सहस्रार का प्रतीक है–

''बुंदहिं समुद्र समान,
यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान,
मुहम्मद आपुहि आपु महं।।''[12]

षट्‌चक्रों को पार करके साधक दिव्य आध्यात्मिक लोक में प्रवेश करता है। वहां उसे ईश्वरीय ज्योति के दर्शन होते हैं। इस यात्रा में गुरु को महत्त्वपूर्ण माना गया है। रत्नसेन का गुरु हीरामन शुक है।

सूफी साधक मुसलमान होने के कारण परमेश्वर को साकार नहीं मान सकते। निराकार, अरूप और अव्यक्त मानते हुए भी वे परमेश्वर की प्राप्ति प्रेम के द्वारा ही करते हैं। प्रेम का स्फुरण, प्रेम का विकास, तड़पन, उन्माद, विरह और अंत में संभोग की अनुभूति ठीक वैसे ही इनके यहां मिलती है जैसे लौकिक प्रेमी को मिलती है। स्पष्ट है कि इनमें रहस्यवाद ही प्राप्त होगा। साधक अनुरागमय होकर प्रेम की मस्ती से ओत-प्रोत होकर शरीर रूपी नौ द्वारों से गुजर कर दशम द्वार तक पहुंचता है। कहा जाता है सहस्रार का अमृत इसी दशम द्वार से प्राप्त होता है। सूफी साधना में यात्रा के प्रतीकों का बड़ा महत्त्व है। सूफी साधना में साधक प्रेम के मार्ग का पथिक (सालिक) माना गया है। उसे अपने गंतव्य की प्राप्ति के लिए यात्रा का चार अवस्थाओं को पार करना पड़ता है।

शरीअत (धर्म ग्रंथों के विधि निषेध का सम्यक् परिपालन)।

तरीकत (बाह्य क्रियाकलापों से दूर रहकर हृदय शुद्धि के द्वारा ईश्वर का चिंतन)।

हकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक् बोध, जिससे साधक तप्त दृष्टि से पूर्ण और त्रिकालज्ञ हो जाता है)।

मारिफत (सिद्धावस्था–जिसमें साधक साध्य में लीन होकर प्रेममय हो जाता है)।

रत्नसेन चार बसेरों को पार करते हुए पद्‌मावती को प्राप्त करता है। रत्नसेन का पहला पड़ाव सागर तट पर होता है। रत्नसेन का यहां तक का मार्ग विशेष कठिन नहीं है। 'शरीअत' अर्थात् विधि पर पूरी आस्था थी। वे इसे साधनावस्था का प्रथम सोपान कहते थे–

''सांची राह 'सरीअत' जेही बिसनाव न होई।
पांव रखै तेहि सीढ़ी, निभमर पहुंचे सोई।।''[13]

जितना की दूसरी अवस्था 'तरीकत' में

प्रवेश करते समय (समुद्र की भीषणता और भयंकरता) का पथ–

''पै गोसाइं सन एक विनती।
मारग कठिन जाब केहि भांती।।
सात समुद्र असूझ अपारा।
मारहिं मगरमच्छ घरियारा।।''[14]

रत्नसेन प्रेमपंथ का एक सत्यनिष्ठ पंथी है। वह छह सागरों को पार करके सातवें सागर तक पहुंचता है। यहां से तीसरी 'हकीकत' यात्रा प्रारंभ होती है–

''सतएं समुद्र मानसर आए।
मन जो कीन्ह सहस सिधि पाए।।
देखि मानसर रूप सहोवा।
हिस हुलास पुरइनि होइ छावा।।
भा अधियारा रैनि मसि छूटी।
भा भिनुसर किरिन रबि फूटी।।''[15]

चौथी अवस्था 'मारिफत' की है। ये चारों अवस्थाएं ही कल्ब या हृदय के बीच उपस्थित होती हैं। जायसी ने इन चारों अवस्थाओं का उल्लेख किया है–

''जोगी दृष्टि दृष्टि सों लीन्हा।
नैन रोपि नैनहि जिउ दीन्हा।।
जैही मद चढ़ा पतारेहि पाले।
सुधि न रही ओहि एक पियाले।।''[16]

ये चारों अवस्थाएं परमात्म के अनुग्रह से ही कल्ब या हृदय के बीच उपस्थित होती हैं और 'अहवाल' कहलाती हैं। इस 'अहवाल' की स्थिति में भक्त अपने को भूलकर ब्रह्मांड में झूलने लगता है।

जायसी के काव्य में साधना के सांप्रदायिक प्रतीक को ध्यान में रखा जाए, जैसे– मृगावती का राजकुंवर, पद्मावत का रत्नसेन, मधुमालती का मनोहर, चित्रावली का सुजान इस यात्रा के जोगी पथिक के रूप में चित्रित हैं। ये सब योगी वेष में प्रिया-प्रियतम की प्राप्ति के लिए निकल पड़ते हैं। यह अवश्य है कि ये यात्री गोरखपंथी साधुओं का वेष धारण करते हैं, किंगरी, कंथा, मुद्रा, अधारी, रुद्राक्ष, बाघंबर, खड़ाऊ, जोगपट्ट, चक्र, आदि इनके प्रसाधन है। ये यात्री बनने और प्रियतम को पाने के लिए यह सब धारण करते हैं। ये धार्य वस्तुएं प्रेम-साधना पथ में तप और त्याग का प्रतीक हैं। फारसी काव्य परंपरा में गुल-बुलबुल, शमा-परवाना प्रतीकों का प्रयोग खूब मिलता है। ईरान बड़ा ही सरसब्ज और प्राकृतिक दृश्यों से भरा पूरा देश है। सूफियों के रक्षक उनके प्रतीक ही रहे हैं।

कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। रूढ़िवादिता से जुड़े पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों संप्रदाय के लोग आदर और मान की दृष्टि से देखते थे। बहुत दिनों तक एक साथ रहते हुए हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के सामने अपना अपना हृदय खोलने लग गए थे। जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मस्त होने और मस्त करने का समय आ गया था।

जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिंदू मुसलमान का दस्तान हमजा। नल और दमयंती की कथा मुसलमान जानने लगे थे और लैला मजनूं की हिंदू। ईश्वर तक पहुंचने वाला मार्ग खोजने की सलाह भी दोनों कभी-कभी साथ बैठकर करने लगे। एक तरफ हिंदू भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और उधर सूफी महात्मा मुसलमानों को इश्क मिजाजी से इश्क हकीकी का सबब पढ़ाते आ रहे थे। जायसी ने अपने काव्य में हिंदू-मुसलमान दोनों ही संप्रदाय के प्रतीकों का प्रयोग किया है।

जायसी के कुछ प्रतीक इस्लामी और फारसी काव्य परंपरा के हैं। कुछ प्रतीक उनके तवस्सुफ (साधनापरक) के हैं। कुछ प्रतीक हठयोग साधना के और भारतीय परंपरा के हैं। कुछ प्रतीक लोक जीवन से गृहीत हैं। प्रतीक देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप होते हैं, उनके निर्माण में परंपरागत संस्कारों का हाथ होता है।

जायसी ने प्रेम की पीर की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के ही घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है, जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। वहां धर्म का कोई भेद नहीं होता है। देखा जाए तो जायसी ने अपने काव्य प्रतीकों के ओट से धर्म बाधा को बखूबी टाला है। इसके साथ ही प्रेमी-प्रेमिका के सम्मिलन से आध्यात्मिक दर्शन के अद्‌भुत सौंदर्य का वर्णन किया है।

संदर्भ संकेत–

1. जायसी : जायसी ग्रंथावली, प्रस्तावना।
2. जायसी : जायसी ग्रंथावली, प्रस्तावना।
3. इनसाइकलोपीडिया ब्रिटेनिका, पृ. 700।
4. हाइटेड सिंबलिज्म, पृ. 98।
5. जायसी : जायसी ग्रंथाली, पृ. 39।
6. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, 'पद्मावत', प्रस्तावना।
7. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 16।
8. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 43।
9. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 92।
10. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 110।
11. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 171।
12. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 308।
13. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 49।
14. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 49।
15. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 67।
16. जायसी : जायसी ग्रंथावली, पृ. 69।

हिंदी विभाग,
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, आंध्र प्रदेश

लोकमंगल एवं समन्वयवाद के पक्षधर

अशोक कुमार जाजोरिया

जायसी सांस्कृतिक चेतना-सम्पन्न कवि थे और जिस कवि की सांस्कृतिक चेतना स्पष्ट और समृद्ध होती है, वह समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाता है। जायसी ने भी पद्मावत में अपनी सांस्कृतिक दृष्टि को अभिव्यक्ति देने के उद्देश्य से विभिन्न मतों, वादों और दार्शनिक दृष्टियों में सामंजस्य स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है। उनकी वह समन्वयपुष्ट सांस्कृतिक दृष्टि प्रेम-वर्णन, दर्शन, धार्मिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक व साहित्यिक चिंतन में देखी जा सकती है। पद्मावत में मसनवी शैली और भारतीय शैली में वर्णित प्रेम का समन्वित रूप दिखाया गया है। यही कारण है कि कवि द्वारा वर्णित प्रेम-भाव में मानसिक पक्ष की प्रधानता और शारीरिक पक्ष वहां गौण होकर आया है। ईरानी मसनवियों के अनुसार नायक के प्रेमावेश को दिखाना ही प्रमुख उद्देश्य रहता है जबकि यहां नायक रत्नसेन के प्रेमावेग के साथ-साथ पद्मावती नायिका में प्रेमातिशयता भी देखने को मिलती है। भारतीय परंपरा में नायिका के प्रेमावेग को ही दिखलाया जाता रहा है। कवि ने यहां नायक-नायिका—दोनों में ही तुल्य प्रेमावेग दिखाकर दोनों देशों में प्रचलित प्रेम-वर्णन की पद्धतियों को समन्वित रूप प्रदान किया है। पद्मावत में लोक-जीवन की झलक दिखाकर जायसी ने भारतीय प्रेम-वर्णन परंपरा को भी महत्त्व दिया है। इस स्थिति को हम पद्मावती की विदाई के दृश्य में भी देख सकते हैं। पद्मावती के दार्शनिक समन्वय का अनुशीलन करें ते इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जायसी ने भारतीय और अभारतीय—दोनों ही तत्त्वों को वर्णित कर अपने हृदय की विशालता दिखलाई है। जायसी ने जिस रहस्यवाद का वर्णन किया है, वह अधिकांश रूप में भारतीय अद्वैतवादी दर्शन से प्रभावित है। अद्वैतवाद ब्रह्म अर्थात् आत्मा और परमात्मा को एक मानता आया है। जायसी में इस भाव को सर्वात्मवाद के परिप्रेक्ष्य में देखना ही उचित प्रतीत होता है।

पद्मावत में भारतीय हठयोगियों की योग-साधना और सूफी साधना की चार अवस्थाओं—शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत—का वर्णन एक साथ कर जायसी ने यहां भी साधना में समन्वय करने का प्रयत्न किया है। सिंहल द्वीप के वर्णन में इस स्थिति को देखा जा सकता है—

"नवों खंड नव पौरी ओ तहं वज्र-केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़े सत सों अतरे पार।।
नव पौरी पर दसवं दुआरा।
तेहि पर बाज राज घरियारा।। "

पद्मावत के आरंभ में जायसी ने जो सृष्टि-वर्णन किया है, वहां सात द्वीपों और नौ खंडों की चर्चा की है। यह चर्चा पुराणों के अनुसार है, किंतु यहां उन्होंने मुस्लिम जीव-दर्शन में प्रचलित नूर की उत्पत्ति की चर्चा भी की है। सृष्टि के पांच तत्त्वों की अपेक्षा जायसी ने प्राचीन यूनानियों की कल्पना अनुसार चार भूतों की बात की है, और वे हैं—पृथ्वी, जल, तेज, और वायु। भारतीय पांच तत्त्वों में आकाश को भी माना गया है जबकि फारस, अरब आदि मुस्लिम देशों में इसे एक स्थूल तत्त्व ही स्वीकारा गया है। इससे स्पष्ट है कि जायसी ने भारतीय और अभारतीय जीवन-दर्शन के अंतर्गत प्रचलित विभिन्न तत्त्वों में समन्वय स्थापित कर दोनों जातियों—हिंदू और मुसलमानों में व्याप्त खाई को पाटने की सफल कोशिश की है।

धार्मिक मान्यताओं में समन्वय करके ही जायसी ने अपनी सांस्कृतिक दृष्टि को स्पष्ट कर दिया है। जायसी के युग में हिंदू समाज में धर्म के क्षेत्र में विविध संप्रदाय प्रचलित थे। इनमें प्रमुख थे—वैष्णव, शैव और शाक्त। इनमें किसी प्रकार का कोई सामंजस्य नहीं था। जायसी ने अपनी सांस्कृतिक दृष्टि के आधार पर इनमें सामंजस्य करने का प्रयत्न भी किया गया है। जायसी ने सिद्धों और संतों की ताड़ना तथा उपदेशपरक प्रणाली के विपरीत कांतासम्मित मधुर शैली और भावनामूलक संवेदनाओं की अभिव्यंजना का सहारा लेकर अपना कथ्य समाज तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया। जन-भाषा का सहारा लिया, प्रचलित लोक-कथाओं के माध्यम से मानव-जीवन के कोमल पक्षों—दांपत्य-प्रेम आदि को अपनी सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न बनाया। मुस्लिम परिवार में उत्पन्न होकर भी जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन ने सिंहल द्वीप के मन्दिर के द्वार पर एवं बसन्त-पूजा के समय पद्मावती द्वारा देव-पूजन का वर्णन कर अपनी सदाशयतापूर्ण सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय दिया है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति प्रचंड तूफानों में भी अपनी गरिमा की पताका फहराती रही है। जायसी के युग में सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रतीक अनेकानेक कलात्मक कृतियों के भंडार मंदिर और भव्य भवन तो नष्ट हो रहे थे, किंतु जन-साधारण के मनों में परंपरागत रूप से विद्यमान सांस्कृतिक

मूल्यों—नैतिक धारणा, सौंदर्योपासक दृष्टि, मानव-मात्र के प्रति मैत्रीभाव, सामाजिक जीवन के प्रति आस्था, सहिष्णुता समन्वयवादी भाव आदि को नष्ट करना सरल कार्य नहीं था। जायसी ने इसी भाव को हृदयंगम किया और पद्मावत में भारतीय परंपरा, आचार-विचार-मूलक संस्कृति को अपना कर सजीव चित्रण प्रस्तुत किया। यह उनकी सांस्कृतिक दृष्टि का स्पष्ट और ज्वलंत प्रमाण है। वास्तव में पद्मावत अपने युग का प्रेमाख्यान मात्र नहीं है, इसमें तो सांस्कृतिक इतिहास को भी निश्छल अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। पद्मावत में हिंदू और मुस्लिम संस्कृति का समन्वित रूप देखने को मिलता है किंतु यह भी स्पष्ट है कि जायसी ने हिंदू संस्कृति को अधिक महत्त्व दिया है। पद्मावत में जायसी की सांस्कृतिक दृष्टि का प्रमाण साहित्यिक समन्वय भी है। पद्मावत के कथानक में इतिहास और कल्पना का मणिकांचन संयोग दिखाकर इस कृति को अन्यतम रूप दिया गया है। इस प्रेमाख्यान में भारतीय और मसनवी काव्य-शैलियों का समन्वित चित्र प्रस्तुत करना भी कवि के काव्य-कौशल का ही परिचायक है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जायसी का पद्मावत भारतीय प्रेम-भावना एवं मसनवी प्रेम-कथा के समन्वित रूप का द्योतक है। जायसी ने इसमें दर्शन, धर्म, संस्कृति और काव्य-रूप आदि का सामंजस्य प्रस्तुत करके न केवल इस कृति को अन्यतम रूप दिया है, अपितु अपनी सांस्कृतिक दृष्टि को भी उजागर कर दिया है।

जायसी की प्रेम-भावना पद्मावत हिंदी प्रेम-गाथा काव्य की परंपरा में सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ के रूप में सम्मानित है। प्रेममूलक साधना-पद्धति के आधार पर जिस प्रेम-पद्धति का वर्णन पद्मावत में हुआ है, वह एक नवीन और अद्भुत वस्तु है। सूफी साधना में परम सत्ता का चित्रण प्रायः प्रियतमा के रूप में किया गया है। परमात्मा और आत्मा के बीच सूफी साधुओं ने प्रेम-संबंध को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। पद्मावत में कवि ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। लौकिक दृष्टि से देखें तो राजा रत्नसेन और पद्मावती की कहानी लौकिक प्रेम-कथा ही है, किंतु जायसी ने बड़ी कुशलता से उसे आध्यात्मिकता से संपृक्त कर दिया है। हिंदी के विद्वानों ने पद्मावत के प्रेम-वर्णन को आध्यात्मिकता से जोड़कर ही देखा है। आचार्य शुक्ल की टिप्पणी है कि ''एक प्रबंध के भीतर शुद्ध भाव (रति भाव) के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबंधों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्रों में जाता दिखाई पड़े, जायसी का प्रमुख लक्ष्य है।''

डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ के शब्दों में—''पद्मावत में जो प्रेम की व्याख्या की गई है, उसमें जहां शरीर पक्ष की अवमानना कर सूक्ष्मता की ओर कवि की लेखनी चल देती है, वहां ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कवि आध्यात्मिक प्रेम की झाकियां हमें दे रहा है।'' वस्तुतः जायसी के प्रेम-वर्णन में लौकिक और अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानसिक और व्यवहारिक प्रेम का समन्वय भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कवि ने भारतीय आदर्शवाद तथा फारसी पद्धति की ऊहात्मकता को पद्मावत में समन्वित कर दिया है। भारतीय प्रेम पद्धति में सामान्य नारी की ओर से प्रयत्न करना दिखाया जाता है जबकि फारसी शैली में नायिका को पाने की तीव्रता पुरुष में अधिक दिखाई जाती है। फारसी तथा उर्दू भाषा के साहित्य की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं कि उनके प्रेम-वर्णन से यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्रेम पुरुष के लिए है अथवा स्त्री के लिए। किंतु सूफी संतों ने अधिकतर परम सत्ता को माशूक और अपने को आशिक मानकर ही प्रेमाभिव्यक्ति की है। जायसी ने भी पद्मावती को परम सत्ता तथा रत्नसेन को जीव मानकर इस प्रेमगाथा की सृष्टि की है। उसकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने भारतीय व फारसी, लौकिक और अलौकिक, भावात्मक तथा अव्यवहारात्मक प्रेम का समुचित समन्वय कर दिया है। साहित्य के क्षेत्र में जितने प्रकार की प्रेम-पद्धतियों तथा कथानक रूढ़ियों का प्रचलन है, सब का यथोचित समाहार करने में भी कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतीय साहित्य में दांपत्य-प्रेम-वर्णन की चार पद्धतियों का उल्लेख किया है। इन पद्धतियों में पहली वह है जिसका विकास विवाह संबंध हो जाने के पीछे और पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट स्थितियों में दिखाई देता है। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, शुद्ध और निर्मल होता है। दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह से पूर्व होता है और विवाह इसका परिणाम होता है। तीसरी प्रकार के प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अंतःपुर, उद्यान आदि के भोग-विलास के रंग-रहस्य के रूप में दिखाया जाता है। प्रायः इस प्रकार का प्रेम पौरुषहीन, निस्सार और विलासमय होता है। चौथे प्रकार का प्रेम गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन और स्वप्न-दर्शन आदि से बैठे-बिठाए उत्पन्न हो जाता है।'' आचार्य शुक्ल ने यह स्पष्ट किया है कि जायसी के पद्मावत में चौथे प्रकार का प्रेम वर्णित है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस प्रेम में शारीरिक चेष्टाओं—आलिंगन, चुम्बन आदि को महत्त्व नहीं दिया गया है, बल्कि शृंगार के मानसिक पक्ष को ही प्रधानता दी गई है। हीरामन से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनकर राजा रत्नसेन राज्य, परिवार, वैभव और विलास को त्यागकर उसे पाने के लिए चल पड़ता है। मार्ग में विविध कष्टों को झेलता हुआ अंत में अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। पद्मावती भी विरहाग्नि में जलती हुई मिलन के लिए व्याकुल दिखाई गई है। इस प्रकार दोनों और प्रेम का वेग और प्रयत्न दिखाने में जायसी को सफलता प्राप्त हुई है।

फारसी और भारतीय प्रेम-पद्धति में एक अंतर भी है। फारसी मसनवियों का प्रेम एकांतिक, लोकवाही तथा आदर्शात्मक होता है। वह संसार की वास्तविक स्थितियों से दूर, सांसारिक अथवा सामाजिक बातों से अलग

एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में दिखाया जाता है। वह एक प्रकार से प्रेमोन्माद के रूप में सामने आता है। भारतीय प्रेम-पद्धति में लोक-कर्त्तव्य तथा लोक-संबद्ध व्यवहारात्मकता को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यहां प्रेम को लोक-व्यवहार से अलग न दिखाकर उसके सौंदर्य को जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रस्फुटित होता हुआ दिखलाया गया है। यह तो सर्वथा निश्चित है कि पद्मावत में अभिव्यक्त प्रेम लौकिक होकर भी अलौकिक है। प्रेम का आधार सौंदर्य होता है। यही कारण है कि जायसी ने सौंदर्य वर्णन करते हुए नख-शिख तथा हास-विलास आदि का चित्रण किया है। जायसी सौंदर्योपासक कवि थे। वे तो सौंदर्य को ही परमात्मा मानते थे। यही कारण है कि पद्मावत में सौंदर्य की विराट अवतारणा में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। मानसरोदक खंड में पद्मिनी तथा उसकी सखियों का सौंदर्य-वर्णन अनुपम, व्यापक तथा प्रभावशाली है। नायिका की वेणी, मस्तक, भौं, कटाक्ष, नेत्र, नासिका, मुख, अधर, दांत, कुच और कटि को विभिन्न उपमानों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए सौंदर्य की दृष्टि की गई है। पद्मावती-रत्नसेन-भेंट खंड में लौकिक प्रेम का चरम रूप देखने को मिलता है। यदि प्रेम का परिणाम मिलन और शारीरिक भोग-विलास मान लिया जाए तो यह खंड अपने-आप में स्वाभाविक भी कहा जा सकता है और अद्भुत भी। विशेष बात यह है कि इन्हीं खंडों में आध्यात्मिक संकेत भी बड़े हृदयस्पर्शी हैं। पद्मावती के अलौकिक सौंदर्य का स्पर्श पाने के लिए मानसरोवर का हिलोरें लेने लगना, पद्मावती के सौंदर्य की झलक पाकर रत्नसेन का मूर्छित हो जाना, उसे पाने के लिए अनेक कष्ट सहना, आदि संदर्भ अलौकिकता को ही व्यक्त करते हैं। यही स्थिति पद्मावत में चित्रित अलौकिक या आध्यात्मिक प्रेम को स्पष्ट कर देती है। वास्तविकता यह है कि पद्मावत में लौकिक और अलौकिक—दोनों प्रकार के प्रेम का अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है। नायक-नायिका के मध्य वाक्चातुर्यपूर्ण हास-परिहास और छेड़-छाड़ को भारतीय पद्धति में पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। यह स्थिति पद्मावत में उपलब्ध है। जायसी ने तो भावात्मक और व्यवहारिक प्रेम पद्धतियों का भी सम्मिश्रण कर दिया है। एक वाक्य में यह भी कहा जा सकता है कि मानसिक पक्ष प्रबल और प्रमुख हो गया है। जायसी का प्रेम कोरी वासना नहीं है, उसमें तो भावुकता का रंग ही पर्याप्त गहरा है। अतः कह सकते हैं कि जायसी की प्रेम-भावना में भारतीय और फारसी साहित्य का पूर्ण प्रभाव है। जायसी ने बड़ी कुशलता से सभी प्रकार की प्रेम-पद्धतियों को सूफी साधना के अनुसार ढालकर एक ऐसी प्रेम-पद्धति का प्रतिपादन किया है, जिसमें देशी, विदेशी, भौतिक-आध्यात्मिक, भावात्मक, व्यवहारात्मक, एकांतिक तथा लोकादर्श आदि सभी का पूर्ण सम्मिश्रण है। जायसी के प्रेम-निरूपण में वेदना, रुदन, पीड़ा, ताप और वियोग आदि का आधिक्य होते हुए भी आत्मसमर्पण की गरिमा है, कष्ट-सहिष्णुता की महिमा है, रस-माधुर्य का औदार्य है, देवी-संपदा का माधुर्य है, ईश्वरीय सौंदर्य की उज्ज्वल झलक है और है परम सत्ता का दिव्य आलोक।

पद्मावत में भारतीय संस्कृति—पद्मावत भारतीय संस्कृति का अद्भुत महाकाव्य है। इसमें जायसी ने भारत के जन-जीवन में व्याप्त सांस्कृतिक मान्यताओं और धारणाओं का निरूपण तो किया ही है, साथ ही उन मूल्यों का भी चित्रण किया है जो भारतीय जीवन की श्रेष्ठता और उच्चता के परिचायक है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत यह विश्वास बहुत गहराई से व्याप्त है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। वह घट-घट में समाया हुआ है। जायसी ने इसीलिए यह लिखा है कि ''परगट गुपुत सो सरब बियापी'' भारतीय जन-जीवन में सत्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। संभवतः इसी तथ्य को प्रमाणित करते हुए जायसी ने भी स्थान-स्थान पर यह उल्लेख किया है कि जहां सत्य है, वहीं पर धर्म साथी होता है। यह सृष्टि सत्य द्वारा बंधी हुई है। लक्ष्मी भी सत्य की दासी होती है और जहां सत्य होता है, वहां साहस से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सत्यवादी लोग ही सत्य पुरुष कहलाते हैं और सत्य की रक्षा के निमित्त ही सतियां चिता पर चढ़ती हैं। जो सत्य की रक्षा करता है, वह दोनों लोकों से तर जाता है। जायसी ने भी दान के महत्त्व को पद्मावत के माध्यम से स्पष्ट किया है। उन्होंने यह संकेत दिया है कि दान के समान संसार में कुछ भी नहीं है। यहां तो एक देने से दस गुना लाभ होता है। दानी धर्मात्मा का मुख सभी देखना चाहते हैं और दानी दोनों लोकों में काम आता है। यहां जो दान दिया जाता है, वह वहां परलोक में मिल जाता है। यदि कोई दान नहीं देता तो उसका धन चोर चुरा ले जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य को सदैव उच्च विचार रखने चाहिए। उच्चता का ही महत्त्व होता है। इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर जायसी ने जीवन में उच्च पद पाने और उन्नत स्थिति प्राप्त करने की ओर संकेत करते हुए कहा है कि—''मानव को सदैव ऊंचा बनने का प्रयास करना चाहिए, ऊंचा साहस करना चाहिए, दिन-प्रतिदिन ऊंचाई की ओर ही पैर बढ़ाना चाहिए और उच्च विचार वाले पुरुषों का सत्संग करना चाहिए। इस प्रकार उच्चता को महत्त्व देते हुए जायसी ने भारतीय संस्कृति में वर्णित उच्चता की महिमा को स्वीकार किया है।'' भारतीय संस्कृति में धन की बड़ी निंदा की गई है, क्योंकि इसके कारण ही मनुष्य पतन के गर्त में जा गिरता है। पद्मावत में आया है—''धन से अंहकार उत्पन्न होता है और लोभ बढ़ जाता है। यह लोभ विष की जड़ ही है। लोभ के आते ही मनुष्य में दान की प्रवृत्ति नहीं रहती और वह सत्य से बहुत दूर चला जाता है। दान और सत्य तो भाई-भाई है।'' जायसी ने यह भी संकेत दिया है कि—''धन से ही अप्सराएं प्राप्त होती हैं, धन से गुणहीन व्यक्ति गुणवान बन जाता है और धन से ही ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। धन को पाकर व्यक्ति यह भूल जाता है कि धन कभी किसी

का अपना नहीं होता है, वह तो पिटारे में बंद रहने वाला सांप है।''

भारतीय संस्कृति में नारी को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। नारी की पतिपरायणता का भी गुणगान किया गया है। जायसी ने पद्मावत में नारी की महत्ता को स्वीकार किया है और उन्होंने पतिपरायण नारी पद्मावती का चित्र प्रस्तुत किया है। पद्मावती और नागमती दोनों ही पतिपरायण नारी हैं और पति को ही अपना जीवन-धन समझती हैं। बुरे व्यक्ति के प्रति भी भलाई करने का प्रावधान है। जायसी ने भी यही बात कही है कि जब गोरा और बादल बादशाह अलाउद्दीन के साथ छल-कपट का व्यवहार करने के लिए राजा रत्नसेन को सलाह देते हैं तब रत्नसेन को उनकी यह सलाह अच्छी नहीं लगती है। वह तो यह कहता है—''जहां मेरू तहं अस नहिं भाई।'' अर्थात् हे भाई, जहां मेल है वहां ऐसा नहीं होता है तथा ''मंदहि भल जो करै भलु सोई, अंतहु भला भले कर होई।'' अर्थात् शठ के साथ जो भला करे, वही भला है क्योंकि अंत में भले का ही भला होता है। जो शत्रु विष देकर मारना चाहे, उसे अपनी ओर से विष नहीं देना चाहिए, बल्कि उसके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। भारतीय संस्कृति में जो सौंदर्य संबंधी धारणा व्यक्त हुई है, उसी को आधार बनाकर जायसी ने पद्मावती के सौंदर्य का चित्रण किया है। जायसी के सौंदर्य-निरूपण में कलुषता के लिए कोई स्थान नहीं है। वहां तो सौंदर्य अद्भुत नवीन, क्षण-क्षण पर प्रभावित करने वाला बतलाया गया है। वास्तव में सौंदर्य-निरूपण के माध्यम से जायसी ने भारतीय संस्कृति का ही पक्ष लिया है। भारतीय जन-जीवन और संस्कृति में देवोपासना के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की गई है। जायसी ने इस सांस्कृतिक मूल्य को भी अपनाया है। उनकी काव्य-नायिका पद्मावती बसंत पंचमी के शुभ अवसर पर महादेव जी की पूजा करने जाती है। अपने आराध्य देवता शिव के चरणों में गिरकर प्रार्थना करती है। इस उपासना-अर्चना और प्रार्थना का फल यह होता है कि पद्मावती को शीघ्र ही रत्नसेन के आगमन का शुभ समाचार मिल जाता है।

भारतीय संस्कृति में गुरु को सर्वोपरि माना गया है और उसे ईश्वर से भी महान बताया गया है। इसी आधार पर जायसी ने भी लिखा है कि जब तक मैंने गुरु को नहीं पहचाना था, तब तक मेरे और उसके बीच में करोड़ों अंतर पड़े हुए थे, जब मैंने उसे पहचान लिया तो बीच में कोई भी पर्दा नहीं रहा। अब तो तन-मन-प्राण और यौवन सब कुछ वहीं है जहां गुरु है। यह विश्वास पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रहा है कि इस सृष्टि में कहीं-न-कहीं कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है। उस अदृश्य शक्ति में विश्वास करना आवश्यक है। जायसी ने इसी आधार पर लिखा है कि जब राजा रत्नसेन दलबल के साथ सिंहल द्वीप से चलकर चितौड़ को जाने लगे, तब राजा के आने का समाचार रानी नागमती को किसी अदृश्य शक्ति द्वारा अनायास ही प्राप्त हो गया। परिणामस्वरूप उसकी विरहजनित तपन जाती रही और उसके जीवन में वर्षा ऋतु आ गई। उस विराट या परम सत्ता को सर्वत्र व्याप्त और सर्वत्र विद्यमान माना गया है। जब कभी भी उस परम सत्ता के निवास की चर्चा हुई है, तब उसके निवास को अलौकिक निवास कहा गया है। जायसी ने भी अपने पद्मावत में उस परमसत्ता के निवास को अलौकिक स्थान कहकर चित्रित किया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि पद्मावत में भारतीय संस्कृति के अनेक तत्त्व देखने को मिलते हैं और साथ-ही-साथ विविध सांस्कृतिक मूल्यों को महत्त्व भी दिया गया है।

पद्मावत में प्रकृति-चित्रण—जायसी के पद्मावत में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। प्रकृति-चित्रण के प्रमुख रूप ये हैं—आलंबन रूप में प्रकृति-चित्रण, उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण, रहस्यात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण, मानवीकरण रूप में प्रकृति-चित्रण, अलंकार रूप में प्रकृति-चित्रण और उपदेशात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण आदि। पद्मावत के अंतर्गत प्रकृति-चित्रण के सभी प्रमुख रूप देखने को मिलते हैं। पद्मावत में जहां प्रकृति के आलंबन रूप के दर्शन होते हैं, वहां वह दो रूपों में चित्रित हुआ है—एक तो जायसी ने बिंब ग्रहण प्रणाली के आधार पर प्रकृति के आकर्षक और भयानक रूप का चित्रण किया है और दूसरे नाम-परिगणन प्रणाली को अपनाकर प्राकृतिक वस्तुओं के नाम भर गिना दिए गए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि पद्मावत में ये दोनों ही रूप देखने को मिलते हैं। मानसरोदक के वर्णन में प्रकृति के रमणीय रूप की आकर्षक झांकी देखने को मिलती है तो भयानक रूप की झांकी किलकिला समुद्र के वर्णन में देखी जा सकती है। परिगणन प्रणाली का प्रयोग सिंहल द्वीप के उन समस्त वृक्षों के नाम गिनाने में किया गया है जो वहां के उद्यानों में लगे हुए थे। वास्तव में आलंबन रूप में जो सौंदर्य है, उसे पद्मावत में भी देखा जा सकता है।

प्रकृति के उद्दीपन रूप की झांकी भी पद्मावत में देखने को मिलती है। प्रकृति कहीं तो सुखद भावों को उद्दीप्त करती हुई चित्रित की गई है और कही दुःखद भावों को अभिव्यक्ति देती हुई सामने आई है। जायसी को आकाश और पृथ्वी सभी शोभायमान लगते हैं। बिजली की चमक के साथ बरसता हुआ वर्षा का जल ऐसा प्रतीत होता है मानों सोने की वर्षा हो रही हो तथा दादुर और मोर आदि के शब्द भी मधुर जान पड़ते हैं। विरह-विधुरा नागमती के हृदय में यही आकर्षक प्रकृति दुःखद भावों को उद्दीप्त करती हुई उसे पीड़ा पहुंचाती है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियां देखिए—

''पद्मावति चाहत ऋतु पाई।
गगन सोहावन भूमि सोहाई।।
चमकि बीजु बरसै जल सोना।
दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रंग राती पीतम संग जागी।
गरजै गगन चौंकि गर लागी।।
खड्ग बीजु चमके चहुं ओरा।
बुदवान बरसहिं घन घोरा।।''

जायसी ने अपने पद्मावत में शास्त्र-प्रचलित उपमानों का ग्रहण तो किया ही है, पर उनकी दृष्टि जन-जीवन में प्रचलित प्राकृतिक उपमानों में आकंठ रमण करती रही है। यहां उसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा—''रत्नसेन पद्मावती के रूप-सौंदर्य की चर्चा से अभिभूत होकर सिंहल की ओर चल पड़ा। इधर नागमती उसके विरह से बेहाल है। कवि के अनुसार उसके हिय की दशा वैसी बन गई है जैसे कि तालाब के जल के सूखने के बाद नीचे की मिट्टी की परतों में दरारें पड़ जाती हैं, वे दरारें वर्षा के पानी से ही भरा करती हैं। आज नागमती का हृदय भी सूखे सरोवर की मिट्टी की तरह टूक-टूक हो गया है। प्रिय की कृपा-दृष्टि पड़ने पर ही उसका भग्न हृदय जुड़ सकेगा। पद्मावत का कवि वातावरण के निर्माण के लिए भी प्रकृति के आलंबनगत बिंबों की छवि-अंकन में पूर्णतः सफल रहा है। केवल कतिपय स्थल ही ऐसे हैं जहां परिगणन के आधिक्य के कारण पाठक कवि से तादात्म्य संबंध करने में असमर्थ रहता है। वे स्थल भी वहीं हैं जहां उन फलों की चर्चा है जो वहां उत्पन्न ही नहीं होते तथा चित्तौड़ में विरहिणी नागमती के अश्रु-प्रवाह के साथ 'जल आप्लावन' के दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया गया है।''

जायसी ने सिंहल द्वीप के प्रकृति-वैभव में जहां प्रकृति की क्षण-क्षण परिवर्तनशील प्रकृति का चित्रण किया है, वहां अंत में ऐसे आध्यात्मिक संकेत भी दिए हैं जिनमें लगता है कि यही सिंहल द्वीप ही मानों परमधाम है और यहीं व्यक्ति का भटका हुआ मन सच्ची शांति प्राप्त कर सकता है अन्यत्र नहीं। लौकिकता के वातावरण में अत्यंत मनोरम अलौकिक स्वरूप का सम्यक् निदर्शन कवि ने ऐसे स्थलों के वर्णन में ही प्रस्तुत है जो कि पद्मावत काव्य की एक अमर धरोहर है जो साधकों और प्रेमियों को युगों तक प्रेरणा देती रहेगी। कवि के अनुसार सिंहल द्वीप के समीप पहुंचने पर लगता है कि मानों स्वर्ग समीप आ गया है। इस द्वीप के चारों ओर आम्रकुंजों का सघन-आच्छादन है। यह आच्छादन स्वर्ग से धरती तक जुड़ा हुआ है। धूप आदि विघ्नों को लांघकर जो साधक वहां पहुंचता है, उसका चित्त दुख को भूलकर सच्ची शांति का अनुभव करता है। कवि ने यहां प्रकृति की असीम व्यापकता, सघनता, चिरंतनता और स्वर्गीय रमणीयता की कल्पना का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है, केवल इतना ही नहीं सरोवर के समीप जाते ही साधक की भूख-प्यास भी शांत हो जाती है और कवि कहता है कि जो जितना अच्छा गोताखोर होगा वही इस सरोवर की सीपी को पाने में समर्थ होगा—

''देखि रूप सरोवर कै गइ पियास और भूख।
जो मरजिया होई तहं, सो पावै वह सीप।।''

पद्मावत में इस प्रकार के अन्य भी अनेक स्थल है जहां कवि प्रकृति और मानवीय प्रेम के प्रतिबिंबो द्वारा रहस्यात्मक प्रेम की पृष्ठभूमि का चित्रण करता है। ''राजा सुआ संवाद'' खंड में इस शैली का प्रयोग किया गया है। उपमान, आलंबन, आध्यात्मिक संकेत आदि के माध्यम से पद्मावत में प्रकृति के चितेरे जायसी ने नीति सिखाने एवं उपदेश देने के लिए भी प्रकृति-चित्रण का सहारा लिया है पर स्थल एक तो बहुत अधिक नहीं है और दूसरे उनमें नीति और उपदेश के आधिक्य के कारण नीरसता भी आ गई है। आचार्यों के मत में ऐसे स्थलों के कारण जहां काव्य के प्रबंध में शिथिलता आती है वहां सौंदर्य का वर्धन भी नहीं हो पाता। इसलिए श्रेष्ठ कवि ऐसे स्थलों को काव्य में विशेष स्थान नहीं देते। यहां केवल एक उदाहरण दिया जा रहा है। जहां कवि प्रकृति के दृष्टांत द्वारा प्रेमी के मन में अवस्थित प्रेम की स्थिति का चित्रण कर रहा है—

''मुहमद बाजी प्रेम कै ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहिं के संग ज्यों होय फुलायल तेल।।''

कवि जायसी ने प्रकृति के मानवीकरण रूप की भी झांकी अंकित की है इसीलिए कवि ने मानसरोवर को एक व्यक्ति की भांति चेष्टाएं करते हुए दिखाया है, और ''भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे'' कहकर उसे पद्मावती के चरण-स्पर्श द्वारा पवित्र होते हुए दिखाया है। साथ ही ''भा सीतल पै तपनि बुझाई'' कहकर पद्मावती के शरीर की मधुर एवं शीतल गंध का स्पर्श करते ही उसकी सभी प्रकार की तपन को शांत होते चित्रित किया गया है तथा उस शीतलता का अनुभव करते हुए अंकित किया है। इस तरह एक सरोवर को मानवों की तरह चेष्टाएं करते हुए दिखलाकर कवि ने प्रकृति के मानवीकरण रूप की चर्चा की है। इस प्रकार जायसी ने विभिन्न रूपों में प्रकृति का प्रयोग करके उसके रम्य एवं भयंकर रूपों की झांकी अंकित की है। सबसे अधिक कवि का ध्यान षट्ऋतु वर्णन एवं बारहमासे के वर्णन की ओर गया है। वे ऋतु-वर्णन मनुष्य की रागात्मक वृत्ति के आलंबन रूप में अंकित होने के कारण अत्यंत सरल एवं प्रभावोत्पादक हैं। इनमें कवि की सूक्ष्म-निरीक्षण-क्षमता के साथ-साथ प्राकृतिक परिर्वनों की जानकारी भी विद्यमान है।

सौंदर्य दृष्टि—जायसी सरस हृदय संपन्न प्रेमी कवि थे। जो प्रेमी हृदय होता है, उसके मन में सौंदर्य के प्रति सहज आकर्षण रहता ही है। यों भी सौंदर्य आक्रामक होता है। जायसी की सौंदर्य-दृष्टि कई रूपों में व्यक्त हुई है। पद्मावत के अंतर्गत उन्होंने अपनी सौंदर्य-दृष्टि का परिचय दिया है। सामान्यतः सौंदर्य-विधान की तीन दिशाएं अधिक प्रचलित हैं—रूप-सौंदर्य, भाव-सौंदर्य और कर्म सौंदर्य। इनमें से रूप-सौंदर्य का विधान करते समय कवियों का ध्यान प्रायः भाव के विषय या आलंबन के बाह्य आकृति-सौंदर्य की ओर अधिक रहता है। भाव-सौंदर्य के अंतर्गत बाह्य आकार-प्रकार की अपेक्षा आंतरिक मनोभावों का चित्रण प्रमुख हो जाता है। कर्म-सौंदर्य का विधान करते समय कवियों की दृष्टि आलंबन के उन उदात्त एवं श्रेष्ठ कर्मों की ओर रहती है जो लोकमंगल विधायक होते हैं। यह कर्म-सौंदर्य गत्यात्मक होता है और इसमें बाह्य जगत् के अतिरिक्त

मानसिक जगत् के अंतर्द्वंद्वों का भी समावेश होता है। प्रायः प्रबंध-काव्यों में यह तीनों प्रकार का सौंदर्य-विधान देखने को मिलता है। पद्मावत भी इसका अपवाद नहीं है। पद्मावत के अंतर्गत रूप-सौंदर्य का विधान दो प्रकार से हुआ है—एक तो प्राकृतिक रूप-सौंदर्य की झांकी प्रस्तुत करके और दूसरे मानवीय रूप की आकर्षक छवियों को उद्घाटित करके। प्रकृति के सौम्य रूप-सौंदर्य की झलक पद्मावत में वहां मिलती है जहां कवि सिंहल द्वीप में विद्यमान मानसरोवर की आकर्षक छवि प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार के भयंकर रूप के सौंदर्य का विधान भी सात समुद्रों का वर्णन करते हुए किलकिला नामक छठे समुद्र के वर्णन में किया है। किलकिला समुद्र का वर्णन भयानक प्रकृति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रकृति-सौंदर्य की आकर्षक छवियां जहां पद्मावत की निधि बनी हुई हैं वहीं पर मानवीय रूप-सौंदर्य का विधान भी पद्मावत में अपनी अलग और अद्भुत छटा लेकर आया है। जायसी ने मानवीय सौंदर्य के विधान के निमित्त बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया है। जायसी ने पद्मावत में सिंहलद्वीप की अनुपम सुंदरी पद्मावती के अलौकिक रूप-सौंदर्य का निरूपण करते समय उसके नखशिख का जो वर्णन किया है, उसमें मानवीय रूप-सौंदर्य की आकर्षक झलक सहज की मिल जाती है। पद्मावत में पद्मावती के केश, मांग, ललाट, भौंह, नेत्र, बरौनी, नासिका, अधर, दंत-पंक्ति, रसना, कपोल, कान, ग्रीवा, भुजाएं, स्तन, पेट, पीठ, कटि, नाभि आदि का मनोहर वर्णन देखने को मिलता है। इन सभी अंगों के वर्णन में जायसी ने अपनी अद्भुत कल्पना-क्षमता, सूक्ष्मग्राही-प्रतिभा एवं नवीन और प्रतिपल सर्वोपरि प्रतीत होने वाले सौंदर्य का वर्णन किया है। विस्तार भय से यहां कोई उदाहरण नहीं दिया जा रहा है। संक्षेप में यही कह सकते हैं कि जायसी ने पद्मावती के रूप-सौंदर्य की अद्भुत झांकी प्रस्तुत करते हुए उसकी शरीर यष्टि का आकर्षक वर्णन किया है।

भाव-सौंदर्य की दृष्टि से यदि विचार करें तो भी जायसी भाव-सौंदर्य के चतुर चित्रकार प्रतीत होते हैं। उनके भाव-सौंदर्य में रमणीय सौंदर्य के साथ-साथ अपूर्व आकर्षण विद्यमान है। जायसी प्रेम की पीर के कवि थे। इसी कारण उन्होंने प्रेम-वेदना का अत्यंत सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। उनके ऐसे चित्रण में हृदय को द्रवित करने की क्षमता विद्यमान है और साथ-ही-साथ मन को मुग्ध बनाने की अपूर्व सामर्थ्य भी है। जब राजा रत्नसेन और पद्मावती बिछुड़ जाते हैं तब राजा रत्नसेन के हृदय में व्याप्त प्रेम-वेदना के सौंदर्य का जो चित्र जायसी ने प्रस्तुत किया है, वह न केवल भव्य है, अपितु दिव्य भी है। इसी प्रकार कवि जायसी ने भाव-सौंदर्य का दूसरा उत्तम उदाहरण वहां प्रस्तुत किया है, जहां राजा रत्नसेन बंदी बना लिया जाता है और चित्तौड़ की रानी पद्मावती अपना हार्दिक दुःख व्यक्त करते हुए शोक व्यक्त करती है। रत्नसेन के हृदय में व्याप्त प्रेम-वेदना के सौंदर्य के उदाहरण के साथ-साथ यहां पद्मावती के विषादाकुल मानस के सौंदर्य को भी निम्नांकित उदाहरणों में देखा जा सकता है—

''पदुमिनि चाह जहां सुन पावौं।
परौं आगि औपानि धसावैं।।
टूटौं परबत मेरू पहारा।
चढ़ौ सरग औ' परौं पतारा।।
कहं अस गुरु पावौं उपदेसी।
अगम पंथ को होइ संदेसी।।
पदुमावति बिनु कंत दुहेली।
बिनु जल कंवल सूखि जसि बेली।।
नैन डोल भरि ढारै हिएं न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ बहुरै घरी घरी जिउ जाइ।।''

जायसी के पद्मावत में कर्म-सौंदर्य के चित्र भी भव्यता के साथ अंकित हुए हैं। जब अलाउद्दीन ने अपनी अपार सेना के द्वारा चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी तो राजा रत्नसेन ने दृढ़ता के साथ उस दुर्ग की मरम्मत करा ली जो अलाउद्दीन की सेना ने तोड़ दिया था। दिन भर में जितने कंगूरे टूटते थे, रातों-रात उनकी मरम्मत कराकर उन्हें ज्यों-का-त्यों करा दिया जाता था। राजा रत्नसेन ने बड़ी दृढ़ता और साहसिकता के साथ अलाउद्दीन और उसकी सेना का मुकाबला किया। जायसी ने इस स्थिति का जो वर्णन किया है, वह कर्म-सौंदर्य के अंतर्गत आता है। कर्म-सौंदर्य का एक और चित्र पद्मावत में वहां देखने को मिलता है, जहां गोरा अपने सभी साथियों के मरने के पश्चात् बादशाह की अपार सेना के मध्य अपने पराक्रम का प्रदर्शन करता है और अकेला ही युद्ध के मैदान में असंख्य शाही सेना को गाजर-मूली की तरह काटता हुआ भयंकर मार-काट मचा देता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जायसी ने सौंदर्य के आंतरिक और बाह्य—दोनों प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करके रूप, भाव और कर्म संबंधी सौंदर्य के आकर्षक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन सौंदर्य-चित्रों को देखकर स्पष्ट लक्षित होता है कि जायसी की सौंदर्य-दृष्टि अनेकरूपिणी तो थी ही, वैविध्यपूर्ण, मार्मिक और जीवंत भी थी। हां, इतना अवश्य है कि जायसी की सौंदर्य-दृष्टि में पारंपरिकता अधिक है, नवीनता कम है। चाहे प्रकृति-वर्णन हो और चाहे नारी-सौंदर्य का वर्णन, सर्वत्र जायसी ने पारंपरिक पद्धति के अनुसार ही वर्णन प्रस्तुत किए हैं। इन रमणीय और आकर्षक सौंदर्य-चित्रों के कारण पद्मावत एक विशिष्ट काव्य बन गया है।

उप संपादक, गगनांचल

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत

डॉ. सुनीति रावत

सूफी संत परंपरा के सर्वश्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी साहित्य के भी अग्रणी कवि हैं। यदि उन्हें मात्र 'जायसी' कहकर भी संबोधित किया जाए तो भी उनकी संपूर्णता समक्षता आ जाती है। प्राचीन रचनाकारों की भांति जायसी के जन्म और निवास के स्पष्टीकरण में संदिग्धता और भ्रांति पाई जाती है, किंतु उनकी ही रचना (आखरी कलाम, 10) के अनुसार–

''जायस नगर मोर अस्थानू।
नगरक-गांव आदि उदयानू।।
वहां देवस दस पाहुने आएऊं।
भा बैराग बहुत सुख पायऊं।।''

ये शब्द उन्हें जायस नगर का घोषित करते हैं। उनके ही अनुसार जायस नगर का प्राचीन नाम 'उदयान' भी था। यह नगर आज भी उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में है। इसी जायस नगर के विषय में कवि ने ('पद्मावत', 3) में लिखा है कि–

''जायस नगर धरम अस्थानू।
तहवां यह कवि कीन बखानू।।''

फिर भी कवि के जन्म संवत् व जन्म तिथि के विषय में मतवैविध्य पाया जाता है, कवि जायसी के ('आखरी कलाम', 4) में लिखी कवि उक्ति के साक्ष्य को लेकर साहित्यवेत्ता उनकी जन्म तिथि का निर्धारण करते रहे हैं–

''भा अवतार मोर नौ सदी।
तीस बरीख ऊपर कवि बदी।।''

इस कथन के अनुसार कवि का जन्म 800 हि. से 900 हि. के मध्य हुआ अर्थात् सन् 1397 से 1494 के मध्य। तीस वर्ष उपरांत उन्होंने लेखन कार्य प्रारंभ किया। महाकाव्य 'पद्मावत' की रचना (1540 ई.) के आस-पास आंकी जाती है। कुछ विद्वानों ने 947 हि. को उपयुक्त माना है क्योंकि जायसी द्वारा शेरशाह सूरी के समसामयिक होने में इस तिथि के अनुसार कोई असंगति नहीं आती। कवि जायसी के बाएं अंग, नेत्र और कान के शक्तिहीन होने और शेरशाह के दरबार में उनके उपहास के संदर्भ में कवि ने कहा– ''मटियहि हंसेसि कि कोहरहिं'', सुनकर सुल्तान और दरबारी लज्जित हो गए।

जायसी शारीरिक रूप से परिपूर्ण थे या नहीं, काव्य संरचना में वे परिपूर्ण थे। यह बात उनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाती है। उनकी प्रमुख रचनाएं–'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखरी कलाम', 'चित्रावत' व 'पोस्तीनामा' हैं। अन्य अनेक रचनाओं को भी कवि जायसी रचित कहा जाता है, किंतु इस विषय में पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते।

रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में यदि हम कविवर जायसी को देखें तो उनका महाकाव्य 'पद्मावत' हिंदी साहित्य को विशिष्ट देन ही कहा जाएगा। इसमें राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम गाथा व लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना है। साथ ही एक लोक प्रचलित कथा के संदर्भ में ऐतिहासिकता को भी महत्त्व दिया गया है। इस महाकाव्य में प्रेम की साधना और सिद्धि दोनों ही अवस्थाएं प्रेषित हैं। काव्य में रहस्यवाद को भी दिया गया है। सांस्कृतिक व साहित्यिक महत्त्व भी बना रहता है। प्रेम की श्रेष्ठता और लोकपक्ष को भी स्थान दिया गया है। काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार अत्यंत उत्कृष्ट स्वरूप में मिलता है। यही नहीं हिंदू शैली में वर्णित 'षड्ऋतु' और 'बारहमासा' अद्भुत हैं।

वास्तव में हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य में जायसी का स्थान सर्वोच्च है। इसी कथानक में रहस्यवाद भी चरम पर है। रचनाकार जैसे भावलोक में पहुंच कर अपनी और परमात्मा की एकरूपता का अनुभव करता है। सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक माना गया है और प्रेमी को आत्मा का। जायसी ने भी पद्मावत में पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में कल्पित किया है। उनके आख्यानों में नख-शिख वर्णन रहस्यवादी प्रवृत्ति लिए है। कवि ने इस महाकाव्य में ज्योति और सौंदर्य का प्रेषण इस प्रकार किया है–

''रवि-शशि, नखत दिपहिं ओहि ज्योती।
रतन पदारथ, मानक, मोती।।
जहं-जहं विहंसि सुभावहि हंसी।
तहं-तहं छिटकि ज्योति परगसी।।''

कवि जायसी विरह के विषय में भी लिखते हैं–

''प्रेमहि माह विरह सरसा।।

मेन के घर वधु अमृत बरसा।।''

और रहस्यवाद की चरम सीमा यह कि–

''तन चितउर, मन राउर कीन्हा।
हिय सिंघल बुधि पद्मिनी कीना।।''

पद्मावत में संयोग व वियोग दोनों पक्षों का अद्भुत परिपाक मिलता है। नागमती का प्रेम विरह की मार्मिकता का द्योतक है। वह सौत के प्रति ईर्ष्यालु भी है–

''हाड़ भए सब किंकरी,
नसें भई सब तांति।
रोम-रोम महि धुनि उठे,
कहों बिथा केहि भांति।।''

बारहमासा में शोक और हर्ष की अद्भुत व्यंजना भी है–

''यह तनु जारो द्वार के, कहो कि पवन उड़ाय।
मकु तेहि मारग उरि परे, कंत धरे जहं पाय।।''

'पद्मावत' में रानी नागमती का संदेश, विरह वेदना की चरम अभिव्यक्ति है–

''पिउ सों कहेउ संदेसड़ा,
हे भौंरा हे काग।
सो तनि बिरहे जरि मुई,
तेहिक धुआं हम लागि।।''

महान कवि जायसी आलोचना के घेरे में भी रहे हैं। अत्युक्ति, स्थूल, शिथिल, अश्लील, रचनाकार के रूप में भी उन्हें प्रताड़ित किया जाता रहा है। किंतु उस काल खंड में एक महाकाव्य की रचना स्थितियों का निर्वाह करती रचना, पद्मावत साहित्य के अनेक पक्ष, अंग-उपांगों, रस, छंद, अलंकार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, सभी कुछ कवि की रचना में सौंदर्य वर्धन व विषय प्रेक्षण में आए हैं।

भाषा की दृष्टि से सरसता, स्वाभाविकता, मनोभिव्यक्ति की उत्कृष्टता उनकी रचनाओं में है। यही नहीं प्रसाद व माधुर्य गुण युक्त रचना मन को बांध लेती है। अवधी भाषा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय भी कविवर जायसी को ही जाता है। सूफी प्रेम काव्य परंपरा के वे श्रेष्ठतम रचनाकार हैं। पद्मावत में रचा उनका वियोग पक्ष अधिक समृद्ध माना जाता है किंतु संयोग श्रृंगार भी कवि की रचना क्षमता को प्रेषित करता है।

आलोचना के घेरे में खड़े कवि जायसी की सृजन क्षमता अनन्य है। पद्मावत के अंतिम अंश (653) के आधार पर उनकी दैहिक अवस्था के क्षीण होने का पता चलता है किंतु उम्र के किस पायदान पर कवि खड़े थे, यह कहीं स्पष्ट नहीं है।

जायसी के 'आखरी कलाम' में उनका कहना है कि–

''नौ से बरस छतीस जो भए,
तब यह कविता आखर कहें।।''

इसका अर्थ यह भी लगाया जाता है कि 936 हि. अर्थात् 1529 में उन्होंने अखरावट की रचना की थी ('आखिरी कलाम', 8) व ('पद्मावत', 13-17) में कवि ने शेरशाह सूरी (1540-45) का विवरण भी दिया है, अर्थात् वे उनके समकालीन थे। जायसी की रचनाओं में गुरु परंपरा का उल्लेख भी मिलता है, विशेषकर सैयद अशरफ उनके पथ प्रदर्शक रहे हैं, और मोहदी गुरु शेख बुरहान उनके खेवनहार। 'पद्मावत' में कवि ने अपनी शारीरिक कमियों की ओर स्वयं इंगित करते हुए कहा कि–''एक आंख का होने पर भी कवि मुहम्मद ने काव्य गुना है तथा कुरूप होने पर भी लोग उनका मुंह जोहते हैं।''

कवि जायसी के रचना काल तक यद्यपि काव्य-साहित्य का विकास पूर्णतः नहीं हो पाया था, फिर भी जायसी ने नवीन रचना शैली को अपना कर लोकप्रियता तो प्राप्त की ही, साथ ही 'पद्मावत' जैसी अद्भुत कृति की रचना करके रचनाकारों का मार्गदर्शन भी किया।

जायसी कवि तो थे ही, एक सूफी संत भी थे। अतः उनकी रचनाओं में सूफी परंपरा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। प्रेम तत्त्वदर्शी जायसी अपने प्रेम चित्रण में अत्यधिक सफल रहे हैं। ऐसा संयोग-वियोग श्रृंगार, अद्भुत नख-शिख वर्णन, षट्ऋतु और बारहमासा वर्णन, कथानक का सूफी संयोजन, भाषा लालित्य अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकाव्य 'पद्मावत' कवि की लेखन क्षमता, कथोपयुक्त सांगोपांग वर्णन, उदात्त चरित्र चित्रण, प्रतीकात्मक वर्णन शैली के कारण ही हिंदी साहित्य जगत की उत्कृष्ट रचना है। जायसी को महाकवि की कोटि में लाकर खड़ा करने वाली वृहद तारतम्य प्रधान कथा है, जो काल्पनिक और यथार्थ का अद्भुत संयोजन करके कवि को अमरत्व दे गई या कवि ने अपने लेखन कौशल से कृति को अमर कर दिया, दोनों ही अर्थों में मलिक मुहम्मद जायसी अपना एक विशिष्ट स्थान रच गए।

संदर्भ–

1. 'हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां', डॉ. शिव कुमार शर्मा।
2. 'पद्मावत', वासुदेव शरण अग्रवाल।
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष 57 अंक 4)।
4. पद्मिनी उपाख्यान, रंगलाल बंद्योपाध्याय।
5. जायसी ग्रंथावली, संपादक–माता प्रसाद गुप्त।
6. हिंदी अनुशीलन–भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग (1958)।
7. हिंदी साहित्य कोश-भाग दो, (नामवाची शब्दावलि)।

सी-1/590, पालम विहार, गुड़गांव, हरियाणा

जायसी और उनका प्रेमकाव्य

सुरेंद्र कुमार

जायसी से पहले कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते, पर साधारण जनता 'राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी। मुसलमान हिंदुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिंदू मुसलमान का दास्तान हमजा। ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे। ये कहानियां हिंदुओं के ही घर की थी। इसकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है, जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। कबीर की अटपटी वाणी से भी दोनों के दिल साफ न हुए। जिस प्रकार दूसरी जाति या मत वाले के हृदय हैं, उसी प्रकार हमारे भी हैं, जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम की तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार हमारे हृदय में भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरे को व्याकुल करता है, वैसे ही हमें भी, माता का जो हृदय दूसरे के यहां है, वही हमारे यहां भी, जिन बातों से दूसरों को सुख-दुख होता है, उन्हीं बातों से हमें भी। इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतुबन, जायसी आदि प्रेम कहानी के कवियों द्वारा हुआ। हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।

प्रेम गाथा की परंपरा—इनका काव्य बिलकुल भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिसमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चलती है। उसमें कथारंभ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगंबर की वंदना और उस समय के राजा की प्रशंसा होनी चाहिए। ये सब प्रेम कहानियां पूरबी हिंदी अर्थात् अवधी भाषा में एक नियमक्रम के साथ केवल चौपाई, दोहे में लिखी गई हैं। जायसी ने सात चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है। चौपाई और बरवै मानो अवधी भाषा के अपने छंद हैं। 'बरवै' तो ब्रज भाषा में कहा ही नहीं जा सकता। इस शैली की प्रेम कहानियां मुसलमानों के ही द्वारा लिखी गईं। इन भावुक और उदार मुसलमानों ने इनके द्वारा मानों हिंदू जीवन के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। 'पद्मावत' की हस्तलिखित प्रतियां अधिकतर मुसलमानों के ही घर में पाई गई हैं। उन सबको मैंने विरोध से दूर और अत्यंत उदार पाया।

जायसी का जीवनवृत्त—जायसी की एक छोटी सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' सन् 1528 ई. के लगभग बाबर के समय में लिखी गई थी।

''भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।।''

इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। 'नव सदी' ही पाठ मानें, तो जन्म काल 900 हिजरी सन् 1492 के लगभग ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म के 30 वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।

''सन नव सै सत्ताइस अहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।''

सन् 1520 ई. 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है।

''जायस नगर मोर अस्थानू।
तहां आई कवि कीन्ह बखानू।।''

'तहां आई' से पं. सुधाकर और डॉक्टर ग्रियर्सन ने यह अनुमान किया था कि मलिक मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस के ही रहने वाले थे। उनके घर का स्थान अब तक लोग वहां के कंचाने मुहल्ले में बताते हैं। 'पद्मावत' में कवि ने अपने चार दोस्तों के नाम लिए हैं—यूसुफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख।

जायसी कुरूप और काले थे—

''एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।''

''मुहम्मद बाई दिसि तजा,

एक सरवन एक आंखि।''

इससे अनुमान होता है कि बाएं कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। मलिक मुहम्मद एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। कहते हैं कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दब कर या ऐसी ही किसी और दुर्घटना में मर गए। वे अपने समय के एक सिद्ध फकीर माने जाते थे। अमेठी के राजा उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से कुछ दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्तमान कोट से पौन मील के लगभग है।

मलिक मुहम्मद, निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे। अपने पीर या दीक्षा गुरु सैयद अशरफ जहांगीर तथा उनके पुत्र पौत्रों का ही उल्लेख किया है। 'पद्मावत' और 'अखरावट' दोनों में जायसी ने मानिक पुर कालपी वाली गुरु पंरपरा का उल्लेख विस्तार से किया है। इससे डॉक्टर ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा गुरु माना है। 'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है। सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई संप्रदायों के हिंदू साधुओं से भी उनका बहुत सत्संग रहा, उन्होंने बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त की। हठयोग, वेदांत, रसायन आदि की बहुत सी बातों का सन्निवेश उनकी रचना में मिलता है। इसी प्रकार 'पद्मावत' में रसायनियों की बहुत सी बातें आई हैं। 'जोड़ करना' आदि उनके कुछ पारिभाषिक शब्द भी पाए जाते हैं। गोरख पंथियों की तो जायसी ने बहुत सी बातें रखी हैं। सूफी तो वे थे ही। उन्हें अपने इस्लाम धर्म और पैगंबर पर भी पूरी आस्था थी। जायसी बड़े भावुक भगवद् भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध पहुंचे हुए फकीर माने जाते थे। जिस मिल्लत या समाज में उनका जन्म हुआ, उसके प्रति अपने विशेष कर्त्तव्यों के पालन के साथ-साथ वे सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा-पूरा था। वे जो कुछ थोड़ा बहुत जानते थे, उसे पंडितों का प्रसाद मानते थे। कबीर को वे बड़ा साधक मानते थे। जायसी को सिद्ध योगी मानकर बहुत से लोग उनके शिष्य हुए। 'पद्मावत' को पढ़ने से यह प्रकट हो जाएगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोक पक्ष में और क्या भगवत पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता और गंभीरता विलक्षण दिखाई देती है। जायसी की 'पद्मावत' बहुत प्रसिद्ध हुई। जायसी की एक और छोटी-सी पुस्तक 'अखरावट' है। हुसैन गजनवी के 'किस्सए पद्मावती' नाम का एक फारसी काव्य लिखा। सन् 1752 ई. में राय गोविंद मुंशी ने पद्मावती की कहानी फारसी गद्य में 'तुकफतुल कुलूब' के नाम से लिखी। उसके पीछे मीर जियाउद्दीन 'इब्रत' और गुलाम अली 'इशतर' ने मिल कर सन् 1769 ई. में उर्दू शेरों में इस कहानी को लिखा।

प्रेम तत्त्व—प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन जायसी ने स्थान-स्थान पर किया है। कहीं तो यह स्वरूप लौकिक ही दिखाई पड़ता है और कहीं लोकबंधन से परे। पिछले रूप में प्रेम इस लोक के भीतर अपने पूर्ण लक्ष्य तक पहुंचता हुआ नहीं जान पड़ता। रत्नसेन पद्मावती का प्रेम विषम से सम की ओर प्रवृत्त हुआ है, जिसमें एक पक्ष की कष्ट साधना दूसरे पक्ष में पहले दया और फिर तुल्य प्रेम की प्रतिष्ठा करती है। प्रेम के प्रभाव से प्रेमी की वेदना मानो उसके हृदय के साथ प्रिय के पास चली जाती है। अतः जब वह प्रेम चरम सीमा को पहुंच जाता है, तब प्रेमी तो दुख की अनुभूति से परे हो जाता है। प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनंदमयी और निर्मल हो जाती है। चारों ओर सौंदर्य का विकास दिखाई पड़ने लगता है।

''तीनि लोक चौदह खंड,
सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छांडि नहिं लोन किछु,
जो देखा मन बूझि।।''

प्रेम का क्षीर-समुद्र अपार और अगाध है। जो इस क्षीर-समुद्र को पार करते हैं, उसकी शुभ्रता के प्रभाव से 'जीव' संज्ञा को त्याग शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। प्रेम की यदि एक चिनगारी हृदय में पड़ गई और भगवतप्रेम की यह चिनगारी अच्छे गुरु से प्राप्त हो सकती है। प्रेम की कुछ विशेषताओं का वर्णन जायसी ने हीरामन तोते के मुंह से भी कराया है। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर फिर जा नहीं सकता। पहले उत्पन्न होते और बढ़ते समय तो उसमें सुख ही सुख दिखाई पड़ता है, पर बढ़ चुकने पर भारी दुख का सामना करना पड़ता है—

''प्रीति बेलि जिन अरुझै कोई।
अरुझे, मुए न छूटै सोई।।
प्रीति बेलि ऐसै तन डाढ़ा।
पलुहत सुख, बाढ़त दुख बाढ़ा।।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा।
दूसर बेलि न संचरै पावा।।''

पद्मावती और नागमती के विवाद में जो 'असूया' का भाव प्रकट होता है, वह स्त्री-स्वभाव चित्रण की दृष्टि से है। वह प्रेम के लौकिक स्वरूप के अंतर्गत है।

ईश्वरोन्मुख प्रेम—जायसी का झुकाव सूफी मत की ओर था, जिसमें जीवात्मा और परमात्म में परामार्थिक भेद न माना जाने पर भरी साधकों के व्यवहार में ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाती है। बीच बीच में भी उनका प्रेमवर्णन लौकिक पक्ष में अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता जान पड़ता है। इसी विशेषता के कारण कहीं-कहीं इनके प्रेम की गंभीरता और व्यापकता अनंतता की ओर अग्रसर दिखाई पड़ती है। जगत के समस्त व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते हैं। प्राणियों का लौकिक वियोग जिसका आभास मात्र है। इसी शुद्ध भावक्षेत्र

में अग्नि, पवन इत्यादि सब उस प्रिय के पास तक पहुंचने में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। लौकिक सौंदर्य का वर्णन करते-करते कवि की दृष्टि किस प्रकार उस चरम सौंदर्य की ओर जा पड़ती है। रत्नसेन को पद्मावती तक पहुंचाने वाला प्रेम पंथ जीवात्मा को परमात्मा में ले जाकर मिलाने वाले प्रेम पंथ का स्थूल आभास है। प्रेम पथिक रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप दिखाया गया है।

पद्मिनी ही ईश्वर से मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चैतन्य स्वरूप परमात्मा है, जिसकी प्राप्ति का मार्ग बतलाने वाला सुआ सद्गुरु है। उस मार्ग में अग्रसर होने से रोकने वाली नागमती संसार का जंजाल है। तन रूपी चित्तौड़गढ़ का राज मन है। राघव चेतन शैतान है, जो प्रेम का ठीक मार्ग न बता कर इधर-उधर भटकाता है। माया में पड़े हुए सुल्तान अलाउद्दीन को माया रूप ही समझना चाहिए–

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा।
हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा।
बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा।
बांचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत, सोई सैतानू।
माया अलादीन सुलतानू।।''

'पद्मावत' के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं, सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। जहां प्रथम पक्ष में अर्थात् अभिधेयार्थ में किसी भाव की व्यंजना नहीं है, वहां तो वस्तु व्यंजना स्पष्ट ही है, क्योंकि वहां तक प्रस्तुत अर्थ से दूसरे वस्तु रूप अर्थ की ही व्यंजना है। भगवत्पक्ष में घटने वाले व्यंग्यार्थ गर्भ वाक्य बीच-बीच में बहुत से हैं। हीरामन तोते के मुंह से पद्मिनी का रूप वर्णन सुन राजा उसके ध्यान में बेसुध हो गया। पर राजा केवल संसार के देखने में बेसुध था। अपने ध्यान की गंभीरता में, समाधि की अवस्था में, उसे उस समय परम ज्योति के सामीप्य की आनंदमयी अनुभूति हो रही थी, जिसके भंग होने का दुख वह सचेत होने पर प्रकट करता है।

यहां राजा का पद्मिनी के ध्यान में बेसुध होना कह कर साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर-सान्निध्य प्राप्ति की व्यंजना की गई है। राजा रत्नसेन जब सिंहल के पास सातवें समुद्र में पहुंचता है, तब दुख की सारी छाया हट जाती है। आनंद की आभा फूटती दिखाई पड़ती है और हृदय की कली खिल जाती है। जबकि सारे भ्रम और संताप उद्धार होते दिखाई पड़ने लगते हैं और ब्रह्म की आनंदमयी ज्योति के साक्षात्कार से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होती जान पड़ने लगती है। यह दशा उस सच्चे भावुक जिज्ञासु की है, जो गुरु से ब्रह्म ज्योति का आभास पाकर उसी की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इस संसार में सब व्यवहार उसे आज्ञानांधकार के समान लगने लगते हैं।

साधक के विघ्नों का स्वरूप दिखाने के लिए ही कवि ने राजा रत्नसेन के लौटते समय तूफान की घटना का आयोजन किया है। हठयोगी अपनी साधना के लिए शरीर के भीतर तीन नाड़ियां मानते हैं। मेरुदंड या रीढ़ की बाईं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी है। इन दोनों के बीच में सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। 'नौ पौरी' नाक, कान, मुंह आदि नव द्वार हैं। दशम द्वार ब्रह्मरंध्र है, जिसके पास तक पहुंचने में बहुत से विघ्न या अंतराल पड़ते हैं। रत्नसेन का सिंहल द्वीप में जाना भी हठयोगियों के प्रवाद के अनुकरण पर है। गोरखपंथी जोगी सिंहल द्वीप को सिद्धपीठ मानते हैं। लड़की का मायके से पति के पास जाना और जीव का ईश्वर के पास जाना, दोनों में एक प्रकार के साम्य की कल्पना निर्गुणोपासक भावुक भक्तों में बहुत दिनों से चली आती है। जायसी ने ग्रंथ के आरंभ में ही पद्मावती और सखियों के खेलकूद का ऐसा माधुर्यपूर्ण वर्णन किया है।

पद्मावत की प्रेम पद्धति–पद्मावत की जो आख्यायिका दी जा चुकी है, उससे स्पष्ट है कि वह एक प्रेम कहानी है। अब संक्षेप में यह देखना चाहिए कि कवियों में दांपत्य प्रेम का आविर्भाव वर्णन करने की जो प्रणालियां प्रचलित हैं–

1. सबसे पहले उस प्रेम को लीजिए जो आदि काव्य रामायण में दिखाया गया है। उसका विकास विवाह संबंध हो जाने के पीछे और पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट स्थितियों में दिखाई पड़ता है।
2. दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह के पूर्व का होता है, विवाह जिसका फलस्वरूप होता है।
3. तीसरे प्रकार के प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अंत'पुर, उद्यान आदि के भीतर भोग विलास या रंग रहस्य के रूप में दिखाया जाता है, जिसमें सपत्नियों के द्वेष, विदूषक आदि के हास-परिहास और राजाओं की स्त्रैणता आदि का दृश्य होता है।
4. चौथे प्रकार का प्रेम वह है, जो गुण श्रवण, चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन आदि से बैठे बिठाए उत्पन्न होता है और नायक या नायिका को संयोग के लिए प्रयत्नवान करता है।

इन चार प्रकार के प्रेमों का वर्णन नए और पुराने भारतीय साहित्य में है। ध्यान देने की बात यह है कि विरह की व्याकुलता और असह्य वेदना स्त्रियों के मत्थे अधिक मढ़ी गई है। प्रेम के वेग की मात्रा स्त्रियों में अधिक दिखाई गई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जायसी ने 'पद्मावत' में जिस प्रेम का वर्णन किया है, इसमें वे कुछ विशेषता भी लाए हैं। जायसी के शृंगार में मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक गौण है। चुंबन, आलिंगन

आदि का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है, केवल मन के उल्लास और वेदना का कथन अधिक किया है। प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारत के प्रेम में नायिका के प्रेम का। जायसी ने आगे चलकर नायक और नायिका दोनों के प्रेम की तीव्रता समान करके दोनों आदर्शों का एक में मेल कर दिया है।

फारसी की मसनवियों का प्रेम एकांतिक, लोक बाह्य और आदर्शात्मक होता है। साहस, दृढ़ता और वीरता भी यदि कहीं दिखाई पड़ती है, तो प्रेमोन्माद के रूप में, लोक कर्तव्य के रूप में नहीं। भारतीय प्रेम पद्धति आदि में तो लोकसंबद्ध और व्यवहारात्मक थी ही, पीछे भी अधिकतर वैसी ही रही। आदि कवि के काव्य में प्रेम लोक व्यवहार से कहीं अलग नहीं दिखाया गया है। जायसी ने यद्यपि इश्क के दास्तान वाली मसनवियों के प्रेम के स्वरूप को प्रधान रखा है, पर बीच-बीच में भारत के लोक-व्यवहार संलग्न स्वरूप का भी मेल किया है। इश्क की मसनवियों के समान 'पद्मावत' लोकपक्ष शून्य नहीं है। कवि ने जगह-जगह पद्मावती को जैसे चंद्र, कमल इत्यादि के रूप में देखा है, वैसे ही उसे प्रथम समागम से डरते, सपत्नी से झगड़ते और प्रिय के हित के अनुकूल लोक व्यवहार करते भी देखा है। प्रेम का लोक पक्ष कैसा सुंदर है। लोक व्यवहार के बीच भी अपनी आभा का प्रसाद करने वाली प्रेम ज्योति का महत्त्व कुछ कम नहीं।

जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं, इससे उनकी प्रेम गाथा पारिवारिक और समाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है। उसमें भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है। पर है वह प्रेम गाथा ही, पूर्ण जीवन गाथा नहीं। ग्रंथ का पूर्वार्ध—आधे से अधिक भाग—तो प्रेम मार्ग के विवरण से ही भरा है। उत्तरार्ध में जीवन के और अंगों का संनिवेश मिलता है, पर वे पूर्णतया परिस्फुट नहीं हैं। दांपत्य प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य की और वृत्तियां, जिनका कुछ विस्तार के साथ समावेश है, वे यात्रा, युद्ध, सपत्नी कलह, मातृ स्नेह, स्वामीभक्ति, वीरता, छल और सतीत्व हैं। पर इनके होते हुए भी 'पद्मावत' को हम श्रृंगार रस का प्रधान काव्य ही कह सकते हैं।

तोते के मुंह से पद्मावती का रूप वर्णन सुनने से राजा रत्नसेन को जो पूर्वराग हुआ, जिस प्रकार का हंस के मुख से दमयंती का रूप वर्णन सुनकर नल को या नल का रूप वर्णन सुनकर दमयंती को हुआ था। पूर्व राग में ही विप्रलंभ श्रृंगार की बहुत-सी दशाओं की योजना श्रीहर्ष ने भी की है और जायसी ने भी। किसी पुरुष या स्त्री के रूप, गुण आदि को सुनकर झट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करने वाला भाव लोभ मात्र कहा जा सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं।

पूर्व राग रूप गुण प्रधान होने के कारण सामान्योन्मुख होता है, पर प्रेम व्यक्ति प्रधान होने के कारण विशेषोन्मुख होता है। प्रेम भी लोभ ही है, पर विशेषोन्मुख। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम दूसरे की आंखों नहीं देखता अपनी आंखों देखता है। अतः राजा रत्नसेन तोते के मुंह से पद्मावती का अलौकिक रूप वर्णन सुन जिस भाव की प्रेरणा से निकल पड़ता है, वह पहले रूप लोभ ही कहा जा सकता है। प्रेम लक्षण उसी समय दिखाई पड़ता है, जब वह शिव मंदिर में पद्मावती की झलक देख बेसुध हो जाता है। इस प्रेम की पूर्णता उस समय स्फुट होती है जब पार्वती अप्सरा का रूप धारण करके उसके सामने आती है और वह उनके रूप की ओर ध्यान नहीं देकर कहता है—''भलेहि रंग अछरी तोर राता। मोहिं दूसरे सौं भाव न बाता।।'' अतः रूप वर्णन सुनते ही रत्नसेन के प्रेम का जो प्रबल और अदम्य स्वरूप दिखाया गया है, वह प्राकृतिक व्यवहार की दृष्टि से उपयुक्त नहीं दिखाई पड़ता। राजा रत्नसेन तोते के मुंह से पद्मावती का रूप वर्णन सुन उसके लिए जोगी होकर निकल पड़ा और अलाउद्दीन ने राघव चेतन के मुंह से वैसा ही वर्णन सुन उसके लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। क्योंकि एक प्रेमी के रूप में दिखाई पड़ता है और दूसरा रूप लोभी लंपट के रूप में।

अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातें ठहरती हैं—(1) पद्मावती का दूसरे की विवाहित स्त्री होना और (2) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना। दोनों प्रकार के अनौचित्य अलाउद्दीन की चाह को प्रेम का स्वरूप प्राप्त नहीं होने देते। यदि इस अनौचित्य का विचार छोड़ दें, तो रूप वर्णन सुनते ही दोनों के हृदय में जो चाह उत्पन्न हुई वह एक दूसरे से भिन्न नहीं जान पड़ती। रत्नसेन के पूर्व राग के वर्णन में जो यह अस्वाभाविकता आई है, इसका कारण है लौकिक प्रेम और ईश्वर प्रेम दोनों को एक स्थान पर व्यंजित करने का प्रयत्न। शिष्य जिस प्रकार गुरु से परोक्ष ईश्वर के स्वरूप का कुछ आभास पाकर प्रेममग्न होता है। राजा रत्नसेन के सिंहल पहुंचते ही कवि ने पद्मावती की बेचैनी का वर्णन किया है। पद्मावती को अभी तक रत्नसेन के आने की कुछ भी खबर नहीं है। यद्यपि आचार्यों ने वियोग दशा को काम दशा ही कहा है, पर दोनों में अंतर है।

समागम के सामान्य अभाव का दुख काम वेदना है और विशेष व्यक्ति के समागम के अभाव का दुख वियोग है। जायसी के वर्णन में दोनों का मिश्रण है। रत्नसेन का नाम तक सुनने के पहले वियोग की व्याकुलता कैसे हुई, इसका समाधान कवि के पास यदि कुछ है तो रत्नसेन के योग का अलक्ष्य प्रभाव—''पद्मावती तेहिं योग संयोगा। परी प्रेम बस गहे वियोगा।।'' उस कामदशा में पद्मावती को धाय समझा रही है कि हीरामन सूआ आकर रत्नसेन के रूप गुण का वर्णन करता

है और पद्मावती उसकी प्रेम व्यथा और तप को सुनकर दयार्द्र और पूर्व रागयुक्त होती है। पूर्वराग का आरंभ पद्मावती में यहीं से समझना चाहिए। अतः इसके पहले योग की दुहाई देकर भी वियोग का नाम लेना ठीक नहीं जंचता।

विवाह हो जाने के पीछे पद्मावती का प्रेम दो अवसरों पर अपना बल दिखाता है। एक तो उस समय जब राजा रत्नसेन के दिल्ली में बंदी होने का समाचार मिलता है और फिर उस समय जब राजा युद्ध में मारा जाता है। राजा के बंदी होने का समाचार पाने पर रानी के विरह विह्वल हृदय में उद्योग और साहस का उदय होता है। वह गोरा और बादल के पास आप दौड़ी जाती है और रो-रो कर अपने पति के उद्धार की प्रार्थना करती है। राजा रत्नसेन के मरने पर रोना-धोना नहीं सुनाई देता। राजा के बंदी होने पर जिस प्रकार कवि ने पद्मावती के प्रेमप्रसूत साहस का दृश्य दिखाया है, उसी प्रकार सतीत्व की दृढ़ता का भी। पद्मावती के नवप्रस्फुटित प्रेम के साथ-साथ नागमती का गार्हस्थ परिपुष्ट प्रेम भी अत्यंत मनोहर है। पद्मावती प्रेमिका के रूप में अधिक लक्षित होती है, पर नागमती पतिपरायण हिंदू पत्नी के मधुर रूप में ही हमारे सामने आती है। उसे पहले पहल हम रूपगर्विता और प्रेमगर्विता के रूप में देखते हैं। ये दोनों प्रकार के गर्व दांपत्य सुख के द्योतक हैं। राजा के निकल जाने के पीछे फिर हम उसे प्रोषितपतिका के उस निर्मल स्वरूप में देखते हैं, जिसका भारतीय काव्य और संगीत में प्रधान अधिकार रहा है।

जायसी के भावुक हृदय ने स्वकीया के पुनीत प्रेम के सौंदर्य को पहचाना। नागमती का वियोग हिंदी साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का अत्यंत उत्कृष्ट निरूपण है। पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा से उत्पन्न प्रेम मार्ग की व्यावहारिक जटिलता को जिस दार्शनिक ढंग से कवि ने सुलझाया है, वह ध्यान देने योग्य है। कवि के अनुसार जिस प्रकार करोड़ों मनुष्यों का उपास्य एक ईश्वर होता है, उसी प्रकार कई स्त्रियों का उपास्य एक पुरुष हो सकता है। पुरुष की यह विशेषता उसकी सबलता और उच्च स्थिति की भावना के कारण है, जो बहुत प्राचीन काल से बद्धमूल है। इस भावना के अनुसार पुरुष स्त्री के प्रेम का ही अधिकारी नहीं है, पूज्य भाव का भी अधिकारी है। इसी प्रकार की युक्तियों से पुरानी रीतियों का समर्थन प्रायः किया जाता है।

मकान नं.-23, मोती बाग गांव,
नई दिल्ली-110021

चित्तौड़गढ़ किला

प्रेम और समन्वय के चितेरे

डॉ. शिव सहाय पाठक महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी एवं सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा के अन्वेषी अध्येता हैं। 'चित्ररेखा' की खोज एवं उसके संपादन के बाद जर्मनी से फारसी लिपि में प्राप्त 'कन्हावत' का संपादन (1980) उल्लेखनीय है। पद्मावत का काव्य सौंदर्य (1956), चित्ररेखा (1959), मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य (1962), हिंदी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन (1978) उनके शोधपरक ग्रंथ हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की शिष्य परंपरा में रहते हुए उन्होंने वैदिक एवं लौकिक संस्कृत, प्राकृत-पालि-अपभ्रंश के साहित्य एवं भाषा वैज्ञानिक चिंतन को न केवल आत्मसात किया है, अपितु 'अपभ्रंश : भाषा और व्याकरण' ग्रंथ भी लिखा है। वे फारसी साहित्य और लिपि में भी निष्णात हैं, जिसके बगैर जायसी के ग्रंथों की मूल प्रतियों से पाठ-संपादन एवं व्याख्याएं संभव न थीं। संप्रति वे 'पद्मावत' के पाठ संपादन में लगे हैं। अस्सी वर्षीय डॉ. पाठक जायसी के 'कहारनामा' की प्रति का भी संधान कर उसे प्रकाशित करवाना चाहते हैं। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिंदी) के बाद उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. एवं डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। वे विक्रम विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं डीन रहे हैं। जायसी और सूफी काव्य परंपरा के संबंध में उनसे **बी. एल. आच्छा** द्वारा लिया गया साक्षात्कार यहां प्रस्तुत है

आच्छा—डॉक्टर साहब आपने जायसी और सूफी काव्य परंपरा पर अपना शोधकार्य केंद्रित किया है। इस दिशा की प्रेरणा आपको ये कहां मिली?

डॉ. पाठक—मैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी का विद्यार्थी रहा। एम.ए. के लघु-शोध प्रबंध का विषय था—'पद्मावत का काव्य सौंदर्य।' आचार्य द्विवेदी निर्देशक थे। बाद में जब पीएच.डी. की बात आई तो उन्होंने मुझे डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के आचार्य पं. नंददुलारे वाजपेयी के पास भेजा। डॉ. वाजपेयी ने मुझसे कहा कि आचार्य शुक्ल ने जायसी के तीन ग्रंथों का ही उल्लेख किया है, जबकि उनके दो दर्जन से अधिक ग्रंथ संभावित हैं। उन्होंने भारत भर के पुरातत्त्व संग्रहालयों, साहित्यिक संस्थानों के साथ विदेशी ग्रंथागारों या व्यक्तियों के पुस्तकालयों में उनकी पांडुलिपियों की खोज करने के लिए प्रेरित किया। हैदराबाद के निजाम के संग्रहालय (सालारेजंग संग्रहालय), रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के संग्रहालयों, नागरी प्रचारिणी सभा, उदयपुर, जोधपुर आदि के संग्रहालयों में उनकी निरंतर खोज करता रहा।

आच्छा—तो आपको कहां से क्या हासिल हुआ?

डॉ. पाठक—सालारेजंग संग्रहालय में मुझे चित्ररेखा के 29 पृष्ठ मिले, जो फारसी लिपि में थे। यह रचना आधी-अधूरी थी। मैंने आचार्य द्विवेदी को बताया तो उन्होंने डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल से मार्गदर्शन लेने को कहा। डॉ. अग्रवाल ने इस पाण्डुलिपि को देखा तो रो पड़े। बोले—'तुम संपादन कार्य कर लो, इसकी भूमिका मैं लिखूंगा। उन्होंने सात पृष्ठ की भूमिका लिखी। 1957 में पहली बार चित्ररेखा की खोज हुई और मेरी प्रकाशित पुस्तक की भूमिका डॉ. अग्रवाल एवं आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखी। 1966 में उसके द्वितीय संस्करण में उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद वाली पूर्ण प्रति के माध्यम से पाठ-संपादन का कार्य किया। यह कार्य करते हुए मुझे 'महरीबाईसी' की पांडुलिपि भी प्राप्त हुई। महरीबाईसी की खोज डॉ. माताप्रसाद गुप्त पहले ही कर चुके थे। इसमें 22 बड़े छंद थे, पर किताब का नाम नहीं था। इसमें महरी (सामंत-सामंतिन) नाम बार-बार आया है और 22 छंद थे, अतः इसे महरीबाईसी नाम दे दिया गया। बाद में मुझे रामपुर के नवाब साहब के पुस्तकालय में दूसरी और तीसरी पांडुलिपि मिली। नाम भी मिल गया—कहारनामा या कहरानामा। पर अभी मैंने इसका संपादन नहीं किया है। इसकी कथा अध्यात्म से संबंधित है। इसमें 22 के बजाय 32 बड़े-बड़े छंद हैं।

आच्छा—आपने चित्ररेखा का दूसरा संस्करण 'चित्ररेखा-मसलानामा' शीर्षक से प्रकाशित किया है।

डॉ. पाठक—हां, नागरी प्रचारिणी सभा में 'पद्मावत' की एक प्रति देखते हुए उसके अंत में 'मसला' का भी पता चला। मसला अरबी शब्द 'मिस्ल' से बना है, जिसका अर्थ है, उदाहरण, कहावतें या लोकोक्तियां। ये उक्तियां बहुत चमत्कारिक हैं—

''रूप निरंजन छांडि कै, माया देखि लोभाइ।
कुत्ता चौक चढ़ाइए, चाकी चाटन जाइ।।''

कुत्ते को चौके में चढ़ा दीजिए, फिर भी वह चक्की चाटने ही जाता है। ऐसे ही लोग निरंजन रूप को छोड़कर माया के लोभ में फंसे रहते हैं। 'मसलानामा' मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से अभिव्यक्ति को जीवंत और लोक-धर्मी बना देता है।

आच्छा—ये प्रतिया फारसी में उपलब्ध हुई हैं,

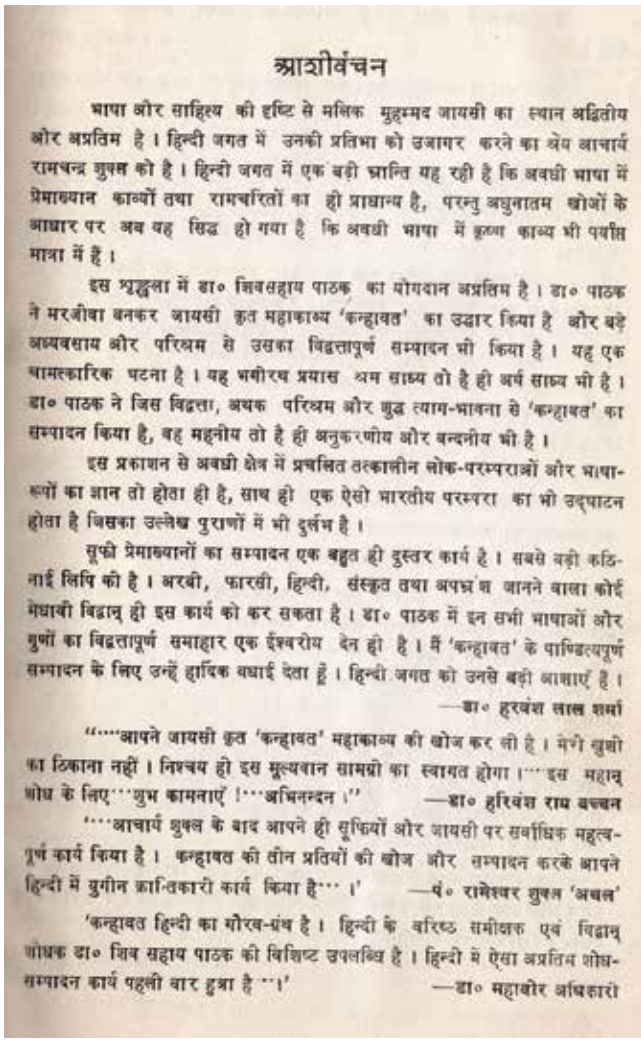

आशीर्वचन

भाषा और साहित्य की दृष्टि से मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान अद्वितीय और अप्रतिम है। हिन्दी जगत में उनकी प्रतिभा को उजागर करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। हिन्दी जगत में एक बड़ी भ्रान्ति यह रही है कि अवधी भाषा में प्रेमाख्यान काव्यों तथा रामचरितों का ही प्राधान्य है, परन्तु अधुनातम खोजों के आधार पर अब यह सिद्ध हो गया है कि अवधी भाषा में कृष्ण काव्य भी पर्याप्त मात्रा में है।

इस शृङ्खला में डा० शिवसहाय पाठक का योगदान अप्रतिम है। डा० पाठक ने मरजीवा बनकर जायसी कृत महाकाव्य 'कन्हावत' का उद्धार किया है और बड़े अध्यवसाय और परिश्रम से उसका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन भी किया है। यह एक चामत्कारिक घटना है। यह भगीरथ प्रयास श्रम साध्य तो है ही अर्थ साध्य भी है। डा० पाठक ने जिस विद्वत्ता, अथक परिश्रम और शुद्ध त्याग-भावना से 'कन्हावत' का सम्पादन किया है, वह महनीय तो है ही अनुकरणीय और वन्दनीय भी है।

इस प्रकाशन से अवधी क्षेत्र में प्रचलित तत्कालीन लोक-परम्पराओं और भाषा-रूपों का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही एक ऐसी भारतीय परम्परा का भी उद्घाटन होता है जिसका उल्लेख पुराणों में भी दुर्लभ है।

सूफी प्रेमाख्यानों का सम्पादन एक बहुत ही दुस्तर कार्य है। सबसे बड़ी कठिनाई लिपि की है। अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत तथा अपभ्रंश जानने वाला कोई मेधावी विद्वान् ही इस कार्य को कर सकता है। डा० पाठक में इन सभी भाषाओं और गुणों का विद्वत्तापूर्ण समाहार एक ईश्वरीय देन ही है। मैं 'कन्हावत' के पाण्डित्यपूर्ण सम्पादन के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। हिन्दी जगत को उनसे बड़ी आशाएं हैं।

—डा० हरवंश लाल शर्मा

"....आपने जायसी कृत 'कन्हावत' महाकाव्य की खोज कर ली है। मेरी खुशी का ठिकाना नहीं। निश्चय ही इस मूल्यवान सामग्री का स्वागत होगा।...इस महान् शोध के लिए...शुभ कामनाएं!...अभिनन्दन।" —डा० हरिवंश राय बच्चन

"...आचार्य शुक्ल के बाद आपने ही सूफियों और जायसी पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। कन्हावत की तीन प्रतियों की खोज और सम्पादन करके आपने हिन्दी में युगीन क्रान्तिकारी कार्य किया है...।" —पं० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

'कन्हावत हिन्दी का गौरव-ग्रंथ है। हिन्दी के वरिष्ठ समीक्षक एवं विद्वान् शोधक डा० शिव सहाय पाठक की विशिष्ट उपलब्धि है। हिन्दी में ऐसा अप्रतिम शोध-सम्पादन कार्य पहली बार हुआ है...।' —डा० महावीर अधिकारी

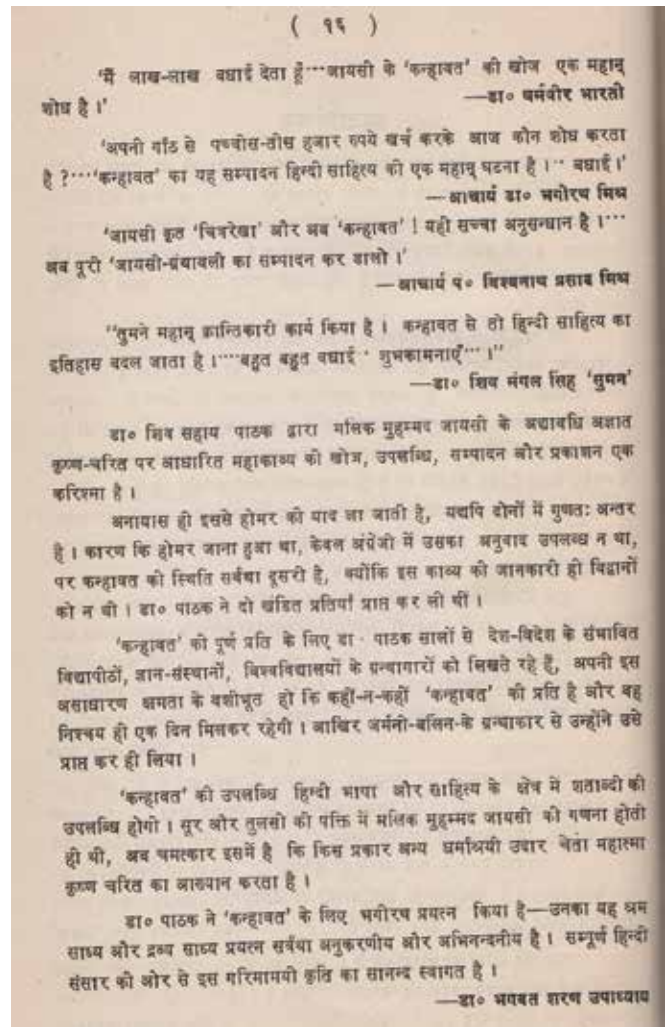

(१६)

'मैं लाख-लाख बधाई देता हूँ...जायसी के 'कन्हावत' की खोज एक महान् शोध है।' —डा० धर्मवीर भारती

'अपनी गाँठ से पच्चीस-तीस हजार रुपये खर्च करके आज कौन शोध करता है?...'कन्हावत' का यह सम्पादन हिन्दी साहित्य की एक महान् घटना है।.. बधाई।' —आचार्य डा० भगीरथ मिश्र

'जायसी कृत 'चित्ररेखा' और अब 'कन्हावत'! यही सच्चा अनुसन्धान है।... अब पूरी 'जायसी-ग्रंथावली का सम्पादन कर डालो।' —आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

"तुमने महान् क्रान्तिकारी कार्य किया है। कन्हावत से तो हिन्दी साहित्य का इतिहास बदल जाता है।....बहुत बहुत बधाई। शुभकामनाएँ...।" —डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन'

डा० शिव सहाय पाठक द्वारा मलिक मुहम्मद जायसी के अद्यावधि अज्ञात कृष्ण-चरित पर आधारित महाकाव्य की खोज, उपलब्धि, सम्पादन और प्रकाशन एक करिश्मा है।

अनायास ही इससे होमर की याद आ जाती है, यद्यपि दोनों में गुणतः अन्तर है। कारण कि होमर जाना हुआ था, केवल अंग्रेजी में उसका अनुवाद उपलब्ध न था, पर कन्हावत की स्थिति सर्वथा दूसरी है, क्योंकि इस काव्य की जानकारी ही विद्वानों को न थी। डा० पाठक ने दो खंडित प्रतियाँ प्राप्त कर ली थीं।

'कन्हावत' की पूर्ण प्रति के लिए डा० पाठक सालों से देश-विदेश के संभावित विद्यापीठों, ज्ञान-संस्थानों, विश्वविद्यालयों के ग्रन्थागारों को लिखते रहे हैं, अपनी इस असाधारण क्षमता के वशीभूत हो कि कहीं-न-कहीं 'कन्हावत' की प्रति है और वह निश्चय ही एक दिन मिलकर रहेगी। आखिर जर्मनी-बर्लिन-के ग्रन्थागार से उन्होंने उसे प्राप्त कर ही लिया।

'कन्हावत' की उपलब्धि हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शताब्दी की उपलब्धि होगी। सूर और तुलसी की पंक्ति में मलिक मुहम्मद जायसी की गणना होती ही थी, अब चमत्कार इसमें है कि किस प्रकार अन्य धर्माश्रयी उदार चेता महात्मा कृष्ण चरित का आख्यान करता है।

डा० पाठक ने 'कन्हावत' के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है—उनका यह श्रम साध्य और द्रव्य साध्य प्रयत्न सर्वथा अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है। सम्पूर्ण हिन्दी संसार की ओर से इस गरिमामयी कृति का सानन्द स्वागत है।

—डा० भगवत शरण उपाध्याय

तो उनका पाठ-संपादन कैसे संभव हो पाया?

डॉ. पाठक—प्रतियां तो फारसी में हैं, इसलिए इनका पाठ-संपादन मुश्किल था। पर बचपन में मुझे एक मौलवी साहब से घर बैठे ही फारसी सीखने का अवसर मिल गया। फिर तीन वर्षों तक (कक्षा 5, 6, 7 में) उर्दू, पढ़ी थी अवधी-भोजपुरी तो मेरी बोली ही थी। मैंने अपभ्रंश और वैदिक संस्कृत में भी काम किया है। मेरी पुस्तक 'अपभ्रंश-भाषा और व्याकरण' भी प्रकाशित हुई। इसलिए थोड़ी आसानी थी। पर बात यह है कि फारसी में तो 26-28 ध्वनियां ही हैं और हिंदी में 58 के आसपास। अब इतनी ध्वनियों को फारसी की आधी ध्वनियों में समझना और उसका संगत पाठ-संपादन, पाठांतर एवं अर्थ की खोज बहुत मुश्किल काम है और लिपि की कठिनाइयों को उदाहरण के लिए कहूं कि पद्मावत की एक पंक्ति में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'उड़ंत' पाठ सही माना। उन्होंने 'ड' पढ़ा और उसे 'ड़' कर दिया—"हे प्रियतम तुम उड़ंत घोड़े पर सवार होकर आ जाओ।" रामचंद्र शुक्ल ने इसे उदंत ही लिखा था। दरअसल शब्द तो उदंत ही है, जो रायल एशियाटिक सोसायटी की प्रति में है, पर 'कन्हावत' का पाठ-संपादन करते हुए मुझे इसका अर्थ 'समाचार' सही लगा। संगत अर्थ था—हे प्रियतम तुम 'समाचार' लिखकर भेजो। दरअसल प्रतिलिपिकार नुक्तों को संभल-संभलकर नहीं लिखते। लिखें तो उन्हें 'नीम जबान' माना जाता है। नुक्ता जबर जेर आदि पूरे नहीं देने से पाठ-संपादन कठिन हो जाता है।

आच्छा—बंगाल में हिंदी का पहला समाचार पत्र निकला, उदंत मार्तंड। क्या उदंत....

डॉ. पाठक—हां, हां, सूरज के उगने पर जो समाचार बनता है वही तो है। जायसी में भी यह समाचार के रूप ही संगत है। डॉ. अग्रवाल ने भी स्वीकार किया है।

आच्छा—डॉक्टर पाठक, मैं 'कन्हावत' की खोज के बारे में सवाल करूं, इसके पहले क्या आप बताएंगे कि 'चित्ररेखा' किस प्रकार का काव्य है?

डॉ. पाठक—'चित्ररेखा' प्रेम कथा ही है। इसमें वियोग की अग्नि से पीड़ित नायक-नायिका दैवीय इच्छा से शोक में भी सुख भोग प्राप्त करते हैं। यह प्रीतम-कुंवर और चित्ररेखा की

प्रेमकथा है। इस काव्य में मसनवी पद्धति, पीर-परंपरा, गुरु-परंपरा का उल्लेख तो हुआ ही है। जायसी का आध्यात्मिक प्रेमपरक रहस्यवाद, प्रेम की सर्वोच्चता और बाह्याडंबर की निरर्थकता का चित्रण है। शैली भी दोहा-चौपाई वाली है। इसमें लोक-कथात्मक स्वरूप के साथ अवध के लोकजीवन और चित्ररेखा के सौंदर्य-विधान में जायसी ने अपनी क्षमता का परिचय दिया है। हां, मसलानामा के लिए ही कह ही चुका हूं। देखिए न कितनी सुंदर जीवन-सारपरक बात कही है–

''खाहु-खववाहु देहु कछु,
नैकु न करहु विचार।
अग्नि लगै ते झोंपरा,
जो निकसै सो सार।।''

आच्छा–तो अब मेरी जिज्ञासा है कि 'कन्हावत' की खोज के बारे में भी बताएं।

डॉ. पाठक–दरअसल गार्सां द तासी ने 'इस्त्वार द ल लितरैत्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी' में डॉ. ए. स्प्रेंगर ने जायसी के काव्य 'घनावत' (Ghanawat) का उल्लेख किया है। इसी तरह मेरे मित्र श्री चंद्रबली सिंह को चित्ररेखा की एक प्रति प्राप्त हुई, उसमें दो और काव्य हैं–कहरानामा और कन्हावत। पर यह खंडित है और कन्हावत का अंश महज 132 पृष्ठों में है। दूसरी प्रति काशी के पं. शोभानाथ पांडेय के माध्यम से मिली। पर तीसरी प्रति की माइक्रोफिल्म कॉपी मुझे स्टेट बिब्लिओथेक बर्लिन (जर्मनी) से प्राप्त हुई। इसमें 266 पृष्ठ हैं। यह प्रति सुलिखित है और अक्षर भी सुंदर हैं। इसमें पाठ संपादन की गड़बड़ियां भी काफी है, पर इसमें सर्वाधिक कड़बक हैं। मैंने इसे प्राप्त करने के लिए विदेशों में अस्सी से अधिक पत्र लिखे। अंत में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के परामर्श से मैंने जर्मनी के चांसलर को लिखा। उन्होंने डीटर जार्ज से संपर्क करने को कहा। मैंने अंग्रेजी में पत्र लिखा था, जर्मनी के चांसलर ने जर्मन में उत्तर भेजा। 1980 में मुझे बर्लिन (वेस्ट) के संग्रहालय से माइक्रोफिल्म प्राप्त हुई और मैंने

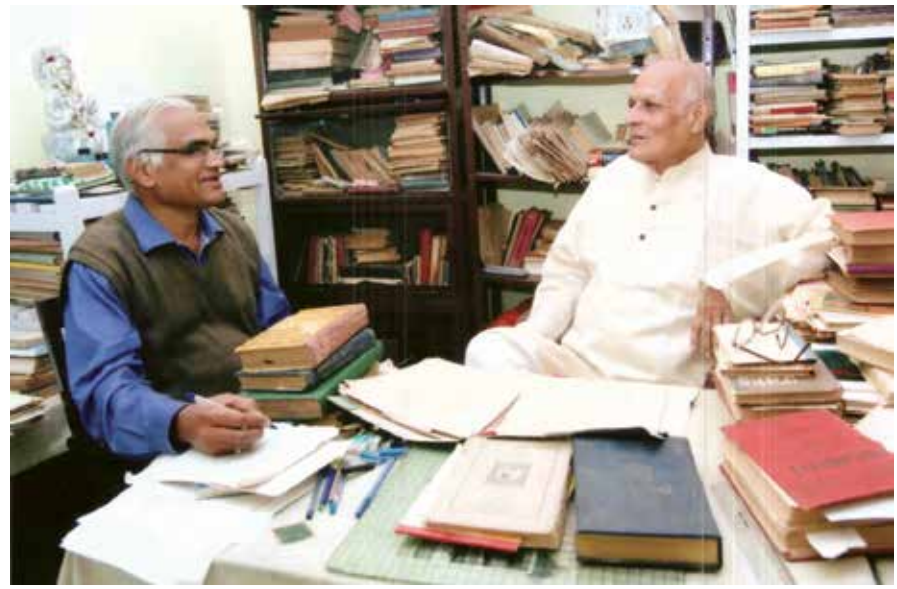

इसका प्रकाशन करवाया।

आच्छा–'कन्हावत' भी पद्मावत की तरह प्रबंध काव्य है, क्या खास बातें इसमें?

डॉ. पाठक–'कन्हावत' मसनवी शैली का दीर्घकाय प्रबंध काव्य है। निश्चय ही इससे कृष्णकाव्य परम्परा सृमद्ध तथा प्राचीन हो जाती है। दोहा-चौपाई शैली में लिखे इस महाकाव्य की रचना हुमायूं के राज्य काल में सन् 947 हिजरी में हुई। मसनवी परम्परा के अनुसार इसमें नअत (मुहम्मद साहब की प्रशंसा), मंकबत (पैगंबर के चार मित्र), महद (शाहेवक्त), तज्किराए मुर्शिद (गुरु स्मरण) का निर्वाह किया गया है।

आच्छा–क्या इसमें कृष्णकथा प्रचलित कृष्णकाव्य से भिन्न है?

डॉ. पाठक–हां, इसमें राधा 'परकीया' रूप में न होकर लक्ष्मी-सीता के अवतार के रूप में उपस्थित है। कवि ने बाकायदा राधा-कान्हा का विवाह करवाया है–महादेव ने मंडपाच्छादन किया है और ब्रह्मा ने वेदमंत्रोच्चार किया है, पार्वती ने मंगलगीत गाए हैं। राधाकृष्ण के संयोग-वियोग परक चित्रण बहुत मार्मिक है। इस महाकाव्य में भी भारतीय और सूफी काव्य परंपराओं का सुंदर मेल हुआ है। चरित काव्य की विशेषताओं के साथ लोक-जीवन की रमणीय झांकी जायसी को सच्चे अर्थ में 'पृथिवीपुत्र' के रूप में प्रतिष्ठित करती है। 'कन्हावत' में हरि की अनंत कथाओं के लोक प्रचलन की बात करते हुए कवि ने कहा है कि ऐसी प्रेम कहानी जगत् में दूसरी नहीं है–

''अहस प्रेम कहानी, दोसर जग मंह नाहिं।
तुरूकी, अरबी, फारसी-सब देखेऊँ अवगाहि।।''

विशिष्ट पुराणों के साथ कवि ने श्रीमद्भागवत का उल्लेख किया है। कवि ने इस कथा में प्रेमपंथ के साथ योग, भोग, तप, शृंगार, धर्म, सत् सभी का साक्षात्कार किया है और 'गिरहीं माहि ओदास' (गेही होकर भी अगेही) की धारणा के माध्यम से 'सांचा मानुष' बनने की जीवन आस्था को व्यक्त किया है। कन्हावत में योग और भोग के द्वंद्व की दृष्टि से गोरख-खंड महत्त्वपूर्ण हैं।

आच्छा–भारतीय शैली के महाकाव्यों एवं मसनवी शैली के महाकाव्यों में क्या अंतर है? जायसी के प्रबंध काव्य इस दृष्टि से क्या मौलिक पहचान कराते हैं?

डॉ. पाठक–भारतीय प्रबंध-काव्य शैली और मसनवी शैली में अंतर है। जायसी ने दोनों का समन्वय करते हुए अपनी मौलिक शैली

का परिचय दिया है। मसनवी शैली में इस्लाम के प्रति दृढ़ आस्था है, खासकर कुरान और पैगंबर मुहम्मद के प्रति। यद्यपि मसनवी अरबी का शब्द है, जो 'मसना' से बना है, पर अरबी में मसनवी शैली के प्रबंध नहीं हैं। वे तो फारसी में ही हैं। ये ऐतिहासिक या रोमांटिक हो सकते हैं। इस्लाम के प्रति आस्था तो व्यक्त है ही, जो एकेश्वरवाद को मानती है—संवरों आदि का करतारू'। और अल्लाह ने जब 'कुन' (हो जा) और संसार-फवाए कुन (सृष्टि हो गई) हो गया। परंतु इन साधकों में उदात्त रूप इस प्रकार है कि 'राबिया' को 'अरब की मीरा' कहा जाता है। इसमें जीवात्मा और परमात्मा के बीच अहंकार ही भेद का कारक है और अहंकार की समाप्ति एक हो जाने का। इसीलिए भारतीय अद्वैत सिद्धांत इन ग्रंथों में एकमेक गुंथा हुआ है।

''हेरत हेरत आपु हिरानां।
बूंद मनहु सब समुंद समाना।।
बुध पहिचानसि आपुहि खोई
परगट गुपुत रहा हो सोई।।''

और भी देखिए—

''मोहिं तोहिं राही अंतर नाहीं।
जइस दीख पिंड परछाहीं।।''

आच्छा—जायसी के काव्य में समन्वय की इतनी उदात्त और विराट चेष्टा दिखाई पड़ती है, तो क्या वे सृष्टि स्तर पर 'मानुष' 'भाव' का ही उत्कर्ष दिखाते हैं?

डॉ. पाठक—जायसी परम उदार सूफी कवि हैं। वे हिंदू-मुसलमान के भेद को स्वीकारते नहीं हैं—

''एक पिंड इन दुहुन को, ना अंतर रत चाम।
पै करनी नाहिन मिलै, ताते न्यारे नाम।।''

ये दोनों ही एक पिंड के जाए हैं, रक्त और चर्म में भी भेद नहीं है। अलबत्ता अपनी करनी के कारण उनके नाम अलग हैं। जायसी मजहब से ऊपर उठकर 'मानुष प्रेम' की बात करते हैं—'मानुष प्रेम भएउ बैकुंठी'। आचार्य शुक्ल ने इन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि माना है। ये कवि छोटी-छोटी कट्टरताओं से ऊपर उठकर आत्म-परिष्कार और प्रेम का प्रसार चाहते थे। प्रेम का प्रसार ही उनका काम्य था—

''तीनि लोक चौदह खंड,
सबै परै मोहि सूझि।
पेम छांड़ि किछु और न लोना,
जो देखा मन बूझि।।''

जायसी ने जहां कुरान के प्रति आस्था व्यक्त की है, पैगंबर और मौलवी के प्रति आदर व्यक्त किया है, वहीं वेदव्यास और पंडितों को नमन भी किया है।

आच्छा—मैं आपका ध्यान आचार्य शुक्ल की उस धारणा की ओर भी ले जाना चाहता हूं कि जायसी ने आध्यात्मिक पक्ष के साथ लोकपक्ष का भी व्यापक चित्रण किया है।

डॉ. पाठक—हां। कई मसनवियों में 'इश्क' के आयामों का तो चित्रण हुआ है पर 'लोकपक्ष' व्यापक नहीं है। जायसी को हिंदू आचार-पद्धतियों, ग्रंथों, रीति-रिवाजों, परंपराओं और मान्यताओं, कर्मकांडों का गहरा ज्ञान था। पद्मावत और कन्हावत तो प्रेम की ज्योति के साथ लोकपक्ष के व्यापक चित्रण से भरे पड़े हैं। वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के तो इतने नाम हैं और प्रकृति का चित्रण भी।

''देखें कान्ह कन्ह कर बासू।
देखि ठाऊं बिसरा कैलासू।।
पहुप सुगंधि अमिय रस बेली।
केवरा, केतकि, कुंद चमेली।।
सोन बरन रूप मंजरी।
बिच बिच जाही जूही घिरी।।
चहूं कोध फूली फुलवारी।
नागेसरि सदबरन नेवारी।।

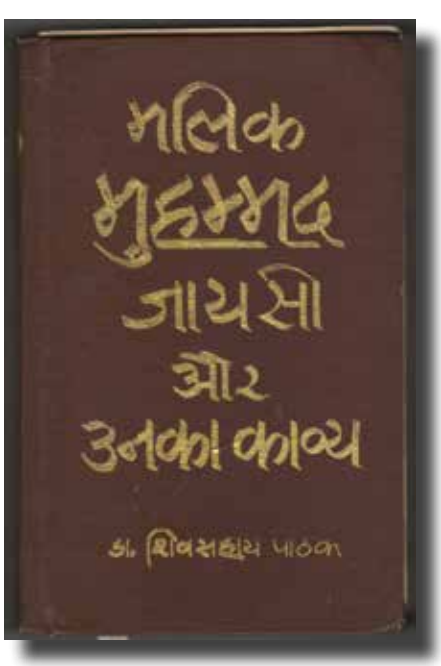

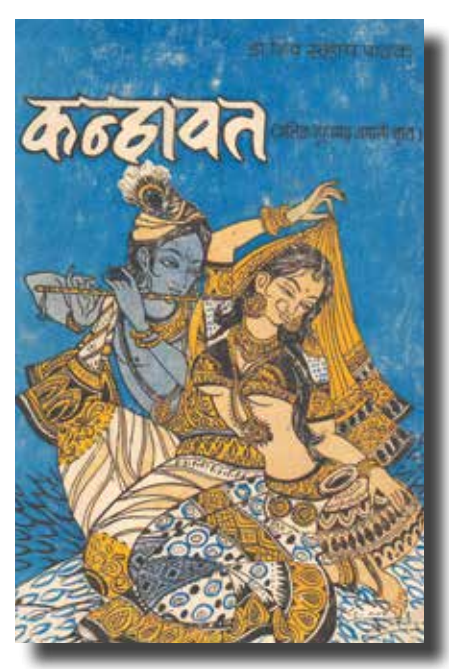

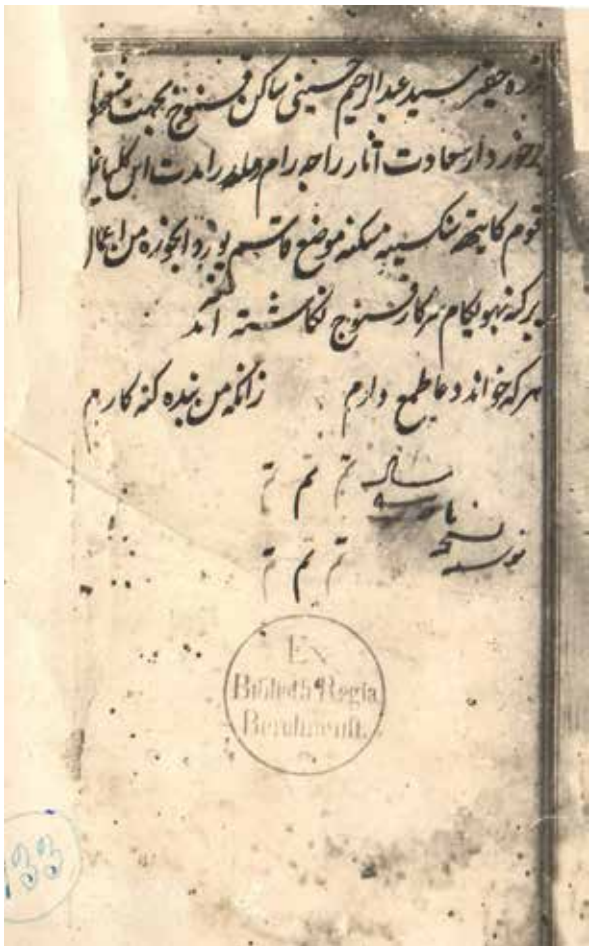

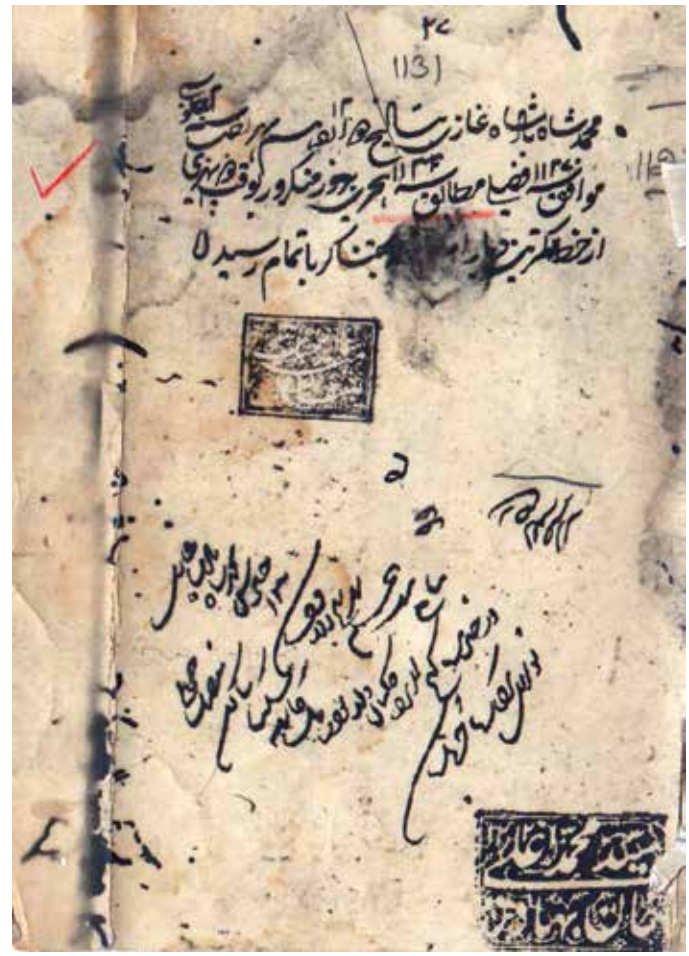

कुसुम गुलाल सघन सेवंती।
चंपा फूल सिरी मालती।।
मोल सिरी औ बगुचन लावा।
निरखि सिंगारहार मनभावा।।
सुरंग बकौरी बेली फूली।
देखि नारि सोदरसन भूली।।
देवता तरसैं कतहूं, बास होइ महकार।
और फूल को बरनै, बादर और कचनार।।''

और यह लोकपक्ष केवल प्रकृति, रीति-रिवाजों तक ही नहीं सिमटा है, बल्कि मानव के व्यवहारों उसके 'सत्-असत्' पक्ष की भी गहरी व्यंजना करता है, खासकर मुहावरों-लोकोक्तियों में। जायसी अद्वैतवाद के सभी रूपों में भी उतने ही रमे हैं, जितने प्रकृति में। वे नख-शिख चित्रण के लिए ही प्रकृति से उपमान ही नहीं लेते, बल्कि मानवीय भावनाओं के वर्णन में भी वे इन उपमानों का जमकर उपयोग करते हैं। नागमती विरह में जल रही है–

'कंवल जो बिगसा मानसर,
बिनु जल गएउ सुखाय।
अबहुं बेलि पुनि पलु है,
जौ पिउ सींचै आइ।।''

मानसरोवर में जो कमल विकसा, वह बिना जल के सूख गया। ये बेलि तो तभी पल्लवित हो सकती है, जब प्रियतम इसे सींचने आएं। यही नहीं, उपदेश, नीति, अध्यात्म, ईश्वर के वैभव का भी चित्रण हुआ है। षड्ऋतु और बारहमासा तो इनकी खासियत है।

आच्छा–आचार्य शुक्ल ने रामचरितमानस और पद्मावत को हिंदी के दो श्रेष्ठ महाकाव्य कहा है। बल्कि उनकी शास्त्रीय धारणाओं के व्यावहारिक आधार भी ये ग्रंथ हैं। पद्मावत क्यों इतना खास है?

डॉ. पाठक–देखिए, 'पद्मावत' भारत की प्रसिद्ध कथा है, जिसका लोक में व्यापक प्रसार है। मैं शुक्लजी का उद्धरण सुनाता हूं–''हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां, हिंदुओं की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का सामंजस्य दिखा दिया।'' अब आपको लगता है कि जायसी ने एक ही ईश्वर के जाए हिंदू-मुसलमानों के जीवन में प्रत्यक्ष एकता की कैसी वकालत की है? दूसरे, यह कि उन्होंने ऐतिहासिकता के साथ लोक-कथाओं को भी जोड़ दिया है। उसमें कथानक रूढ़ियां लोक-विश्वासजनित हैं। अगर रस, अलंकार की दृष्टि से देखें तो वे भारतीय प्रबंध काव्यों की शैली को आत्मसात करते हैं। यदि

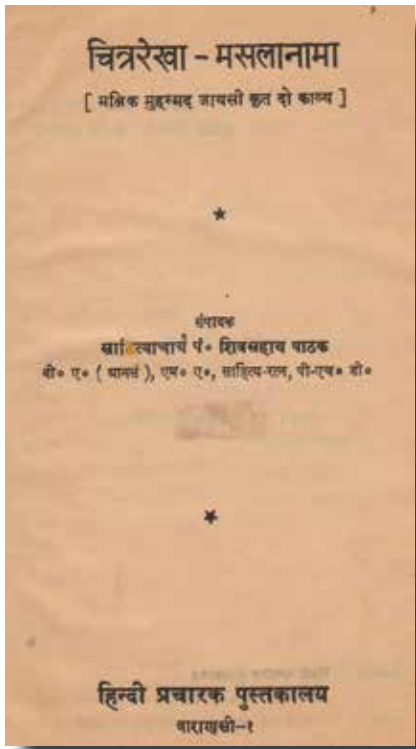

रहस्यवाद को देखें तो भारतीय अद्वैत सिद्धांत के सभी रूपों और मत-सिद्धांतों का समाहार उसमें है। फिर 'अवधी-भोजपुरी' जैसी लोक-भाषा में तो वे सिद्धहस्त हैं। उन्होंने भारत के ठेठ जीवन को ठेठ भाषा में इस तरह सिरजा है कि न तो इस्लामी एकेश्वरवाद अलग नजर आता है, न भारतीय अद्वैत सिद्धांत। वे तुकांत छंद चौपाई-दोहा शैली में प्राकृत-अपभ्रंश की छंद-परंपरा और भाषा में चित्रात्मक वर्णन से दृश्य विधान को गेय और भारतीय मानस के सन्निकट कर देते हैं। लोकोक्तियों पर तो उनका असाधारण अधिकार है, जिनमें भारतीय लोक मानस-मुखर है।

आच्छा—डॉ. पाठक, यह साक्षात्कार बहुत लंबा हो रहा है इसलिए संक्षेप में 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' की बात कर लूं?

डॉ. पाठक—अरे, यह तो जरूरी है। आखिरी कलाम को कई लोगों ने जायसी की अंतिम रचना मान लिया। दरअसल यह जलप्रलय से कयामत और उसके बाद फिर से सृष्टि की रचना की कहानी है, जिसमें इस्लामी अवधारणाओं का सन्निवेश हुआ है। 'अखरावट' में भी सृष्टि के उद्‌भव और विकास की कथा है। इसमें सूफी मत साधना की चारों अवस्थाओं शरीअत, तरीकत, मारिफत, हकीकत की साधना के सोपान हैं, जिनका अनुसरण करता हुआ जीव प्रेममय हो जाता है। परंतु भारतीय विश्वास और मान्यताएं इन दोनों ग्रंथों में भी एक होकर रची बसी हैं।

आच्छा—डॉ. पाठक, आपका धन्यवाद। अंत में कुछ कहना चाहेंगे?

डॉ. पाठक—इतना ही कि यह प्रेम-तत्व हमारी सांस्कृतिक चेतना का आधार बन जाए, जो सच्चे सद्‌भाव और मानुष भाव का चितेरा है। इसकी जरूरत हर काल में होगी। आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे रागात्मिकता शक्ति कहा है और रवींद्रनाथ ने 'महामानव समुद्र' की कल्पना से भारत की समन्वय शक्ति का आराधन किया है। जायसी और

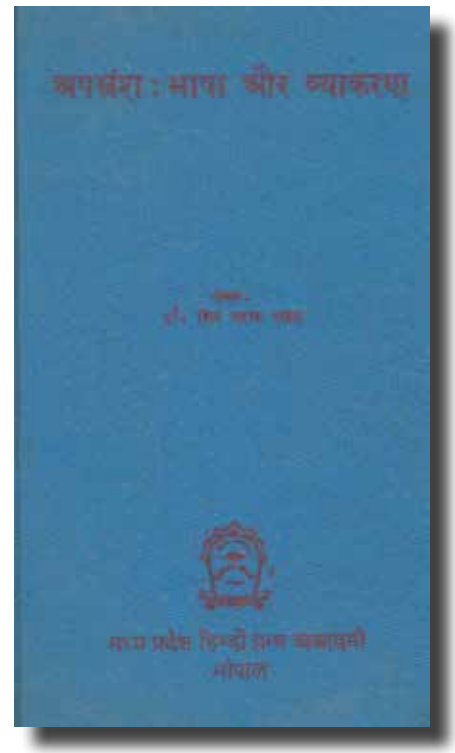

प्रेमाख्यानक काव्य-परंपरा में यही जीवनी शक्ति है, जिसका लोकपक्ष से गहरा रिश्ता है। भई, अस्सी बरस की उम्र में आपने बहुत उगलवा लिया, अब मैं भी...

आच्छा—पर आप तो अभी भी पोथी-पन्नों में लगे हैं।

डॉ. पाठक—हां, चित्ररेखा का पाठ संशोधन पूरा हो गया है। प्रकाशन के लिए भेज रहा हूं। पद्‌मावत का पाठ-संपादन जरूर जारी है।

आच्छा—डॉ. पाठक, आपका धन्यवाद।

निवास - 25, स्टेट बैंक कालोनी,
देवास रोड़, उज्जैन (म.प्र.) 456010

आधुनिक व पारंपरिक सोच के बीच की टकराहट

अमृता ठाकुर

अभी हाल ही में गीताश्री की कहानियों का संग्रह 'प्रार्थना के बाहर व अन्य कहानियां' प्रकाशित हुई हैं। इस संग्रह में शामिल लगभग हर कहानी स्त्री मन की परत दर परत को बड़ी संवेदनशीलता के साथ खोलती जाती है, जिसमें न परिवेश के फासले हैं न उम्र के। इस संग्रह की पहली कहानी 'प्रार्थना के बाहर' देखें, इस कहानी की मुख्य पात्र रचना जो समाज में तथाकथित 'अच्छी' और 'बुरी' लड़की के पूर्व निर्धारित मापदंड के खांचे में खुद को बनाए रखने के ऊहापोह में फंसी नजर आती है। कभी-कभी लगता है कि यौन शुचिता शब्द स्त्रियों के लिए ही बने हैं। समाज में शरीफ लड़की और बुरी लड़की की कसौटी का आधार भी यही है। औरत 'अच्छी लड़की' के उस खांचे में खुद को बनाए रखने के लिए हर तरह के समझौते करती है, अपनी पहचान, अपनी इच्छा-अनिच्छा सब कुछ मार देती है। इस कहानी की किरदार रचना के इसी द्वंद्वात्मक ऊहापोह को लेखिका ने कुछ इस तरह से व्यक्त भी किया है—''दोस्त परिचित उसे भली लड़की मानते रहे। वह खुद भी तो यही चाहती थी। वरना क्यों भली लड़की की इस इमेज से फेवीकोल के जोड़ की तरह चिपकी रही?... भली लड़की बन कर करिअर से लेकर परिवार तक जिंदगी के हर मोर्चे पर वह मात खाती रही, और जो बुरी लड़की थी उसने दुनिया जीत ली!'' दूसरी लड़की समाज द्वारा बनाए इसी खांचे की धज्जियां उड़ाते हुए अपनी शर्तों पर जिंदगी जीती है, और जिंदगी में सफल भी होती है। शायद लेखिका की इस कहानी को पढ़ कर ऊपरी तौर पर ये टिप्पणी की जा सकती है कि वह फ्री सैक्स की वकालत कर रही है। दरअसल ये कहानी समाज के बनाए इसी शराफत के मापदंड को चुनौती देती है, जो यौन शुचिता के इर्द-गिर्द घूम रहा है। जरूरी नहीं है कि समाज की कसौटी पर आप खरे उतर रहे हैं तो अपनी जिंदगी में भी सफल हो रहे होंगे। ऐसा ही दूसरी कहानी 'सोन मछरी' में पात्र रुम्पा का पति लापता हो जाता है। वह जिंदा है या मर गया है, इसकी खबर किसी को नहीं है। इस हालत में वह किसी से प्रेम करने लगती है, जो बात हर आते-जाते को चुभती है। रुम्पा के जीवन का फैसला समाज करता है। उसे किसके साथ रहना है, किसके साथ नहीं, यह फैसला वह खुद नहीं कर सकती। गेंद की तरह एक पाले से दूसरे पाले में उछाली जा रही है। लेकिन उसने परिस्थितियों के सामने हथियार नहीं डाला, किया वही जो उसे ठीक लगा। गीताश्री के ज्यादातर महिला किरदारों ने परिस्थितियों के आगे हथियार नहीं डाले हैं।

'चौपाल', 'रुकी हुई पृथ्वी' और 'एक रात जिंदगी में' इस संग्रह की अन्य उल्लेखनीय कहानियां हैं। गीताश्री की कहानियों में भाषा भी पात्र और परिवेश के अनुरूप ही अपना अंदाज बदल लेती है। खास बात है कि भाषा में कहीं भी क्लीष्टता नहीं है। वे माहौल और मनोभाव दोनों को अभिव्यक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इन दिनों स्त्री विमर्श के मुद्दे पर खासी बहस चल रही है। महिला रचनाकारों की अधिकतर रचनाओं को केवल स्त्री विमर्श की कसौटी पर ही कस कर देखा जा रहा है। लेकिन एक रचनाकार केवल स्त्री या पुरुष नहीं होता, वह

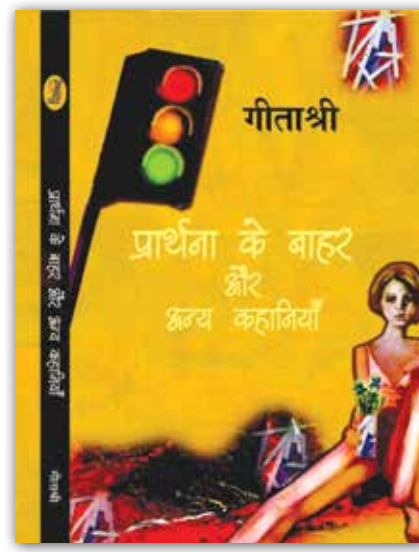

पुस्तक : प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियां (कहानी-संग्रह)

लेखिका : गीताश्री

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

मूल्य (सजिल्द) : 250 रुपए

(पेपरबैक) 150 रुपए

समय, परिस्थिति, देश काल सभी से प्रभावित एक सामाजिक प्राणी भी होता है और उसकी रचनाएं इन सब का ही प्रतिबिंब होती हैं। गीताश्री की कहानियों को केवल स्त्री विमर्श की कसौटी पर ही कस कर उसकी आलोचना किया जाना सही नहीं है। कहानियों में रिश्तों के बदलते आयाम, घर और बाहर के दो पाटों में पिसती औरत का संघर्ष आधुनिक व पारंपरिक सोच के बीच की टकराहट को बखूबी बयां किया गया है।

दो दिवसीय कथक समारोह का आयोजन

अश्विनी कुमार

पिछले दिनों त्रिवेणी सभागार में 'राग-विराग' संस्था द्वारा दो दिवसीय कथक समारोह का आयोजन किया गया। समारोह का आरंभ राग-विराग की वरिष्ठ छात्राओं—दिव्या गुप्ता, अनुष्का, शैली, कृतिका, नुपुर, पुलोमा और मन्नत की प्रस्तुति से हुआ। इसके पश्चात चर्चित कथक नृत्यांगना पुनीता शर्मा और योन जंग किम की मनोहारी प्रस्तुति ने समा बांध दिया। इन्होंने रूपक ताल में भगवान शंकर की स्तुति से शुरुआत करते हुए सूफी बंदिश—'ए सखि मोरे पिया घर आए' की मनभावन प्रस्तुति की। इसमें तीन ताल में तोड़े, टुकड़े, परण, उपज आदि शामिल थे। वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध कथक नृत्यांगना उमा शर्मा की कोरियोग्राफी से कार्यक्रम का समापन हुआ।

समारोह में मुख्य अतिथि आई.सी.सी.आर. के वरिष्ठ प्रोग्राम डायरेक्टर विजय कपूर थे। कार्यक्रम की विशिष्ट अतिथि शंभु महाराज और सुंदर प्रसाद की शिष्या कथक नृत्यांगना मंजुश्री चटर्जी थीं। मंच संचालन सरिता गुप्ता ने किया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.....
दिनांक.....
रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (प्रकाशन)
कमरा संख्या-34
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379158, 23370229

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पाँच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनाञ्चल (हिन्दी), तीन त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), अफ्रीका क्वार्टरली (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोन्त्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरु व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गये हैं।

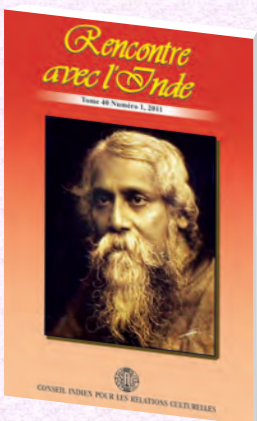

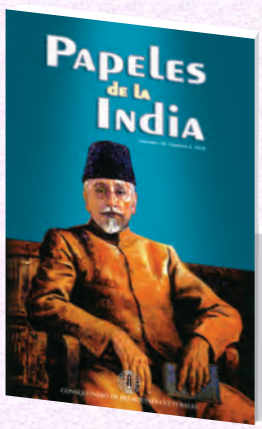

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

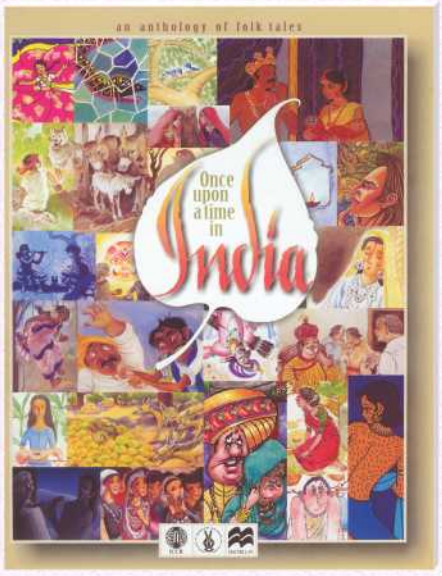

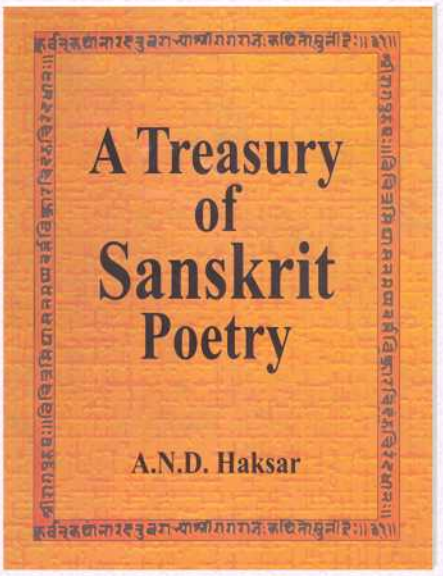

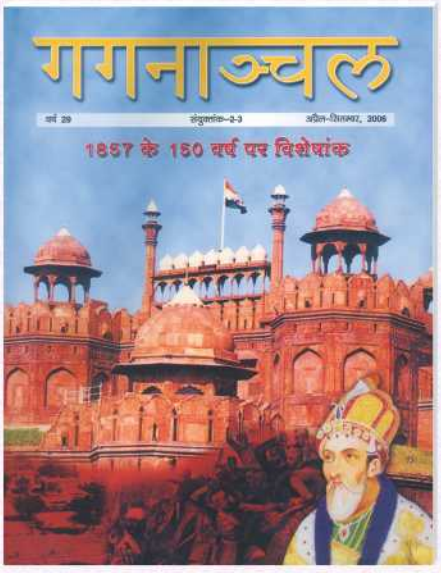

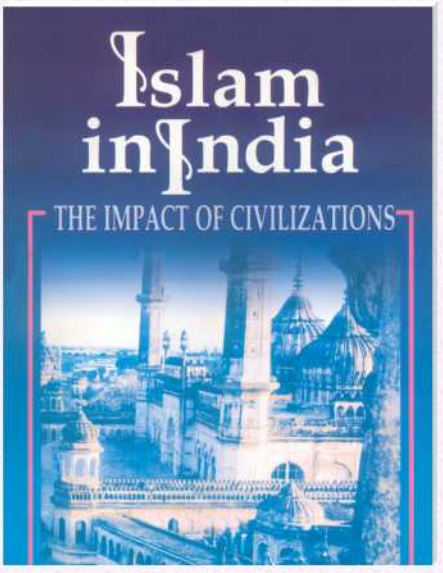

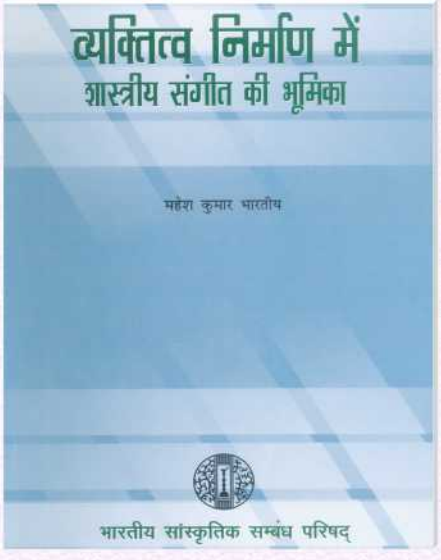

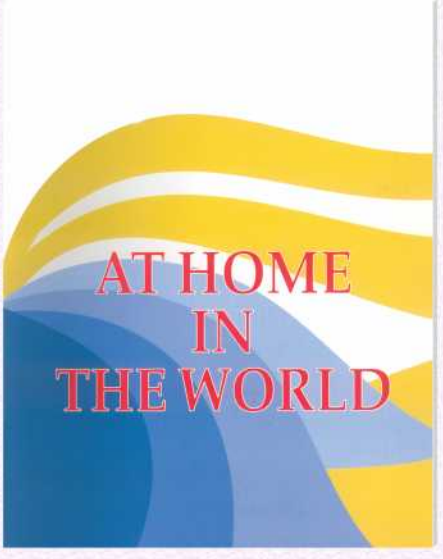

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

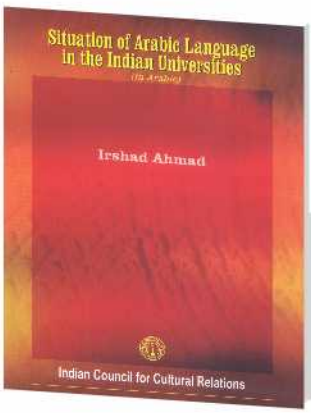

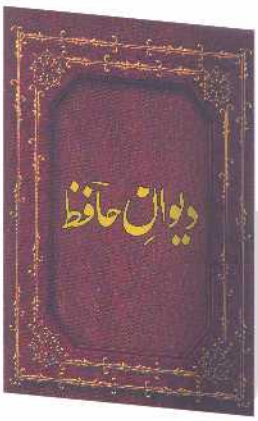

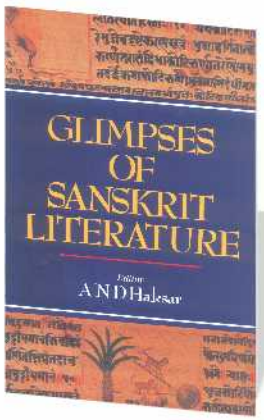

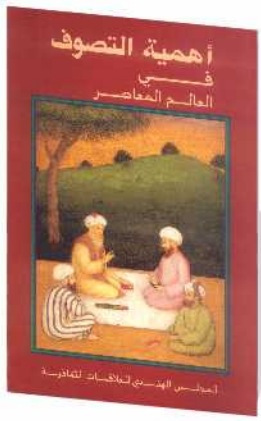

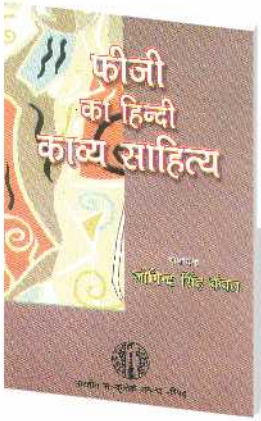

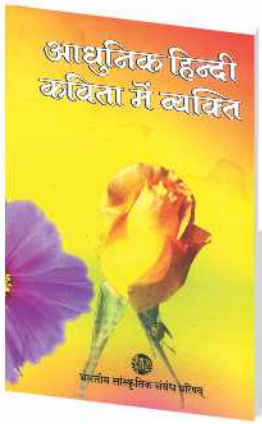

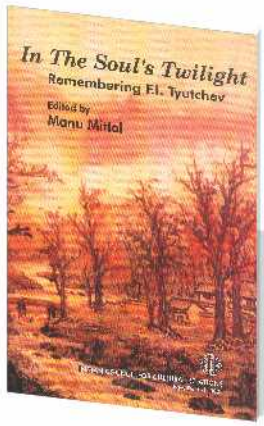

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccrindia.net